आप्तमीमांसा प्रवचन

[३, ४ भाग]

प्रवक्ता :

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक

श्री मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' जी महाराज

प्रबन्ध-सम्पादक :

बैजनाथ जैन, ट्रस्टी सदस्य सहजानन्द शास्त्रमाला

मादगार मुहल्ला, सहारनपुर

प्रकाशक :

मंत्री, सहजानन्द शास्त्रमाला

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

मुद्रक :

पं० काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'

शाक्ति प्रेस सहारनपुर

सन् १९८०]

[न्यौछावर ५ रु.

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभाव —

१	श्रीमान् लाला लालचन्द जी जैन सर्राफ	
२	"	सेठ भंवरीलाल जी जैन पाण्ड्या
३	"	कृष्णचन्द जी रईस
४	"	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या
५	"	श्रीमती सोवती देवी जैन
६	"	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन
७	"	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन प्रेमपुरी
८	"	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन
९	"	दीपचन्द जी जैन रईस
१०	"	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन
११	"	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन
१२	"	केवलराम उग्रसैन जी जैन
१३	"	गेंदामल दगडू साह जी जैन
१४	"	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी जैन नई मण्डी
१५	"	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन
१६	"	जयकुमार वीरसैन जी जैन सर्राफ
१७	"	मंत्री दिगम्बर जैन समाज
१८	"	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन
१९	"	विशालचन्द जी जैन रईस
२०	"	हरीचन्द ज्योतिप्रसाद जी जैन ओवरसियर
२१	"	सौ० प्रेम देवी शाह सु० बा० फतहलाल जी जैन ह
२२	"	मंत्राणी दिगम्बर जैन महिला समाज
२३	"	सागरमल जी जैन पाण्ड्या
२४	"	गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी जैन
२५	"	राधेलाल कालूराम जी जैन मोदी
२६	"	फूलचन्द बैजनाथ जी जैन नई मण्डी
२७	"	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी जैन सर्राफ
२८	"	गोकुलचन्द हरकचन्द जी जैन गोधा
२९	"	दीपचन्द जी जैन सुपरिन्टेन्डेण्ट इन्जीनियर
३०	"	मंत्री दि० जैन समाज नाई की मण्डी

३१	श्रीमान् लाला	सचालिका दि० जैन महिला मण्डल नमककी मण्डी	आगरा
३२	,,	नेमिचन्द जी जैन रुड़की प्रेस	रुड़की
३३	,,	झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन चिलकाना वाले	सहारनपुर
३४	,,	रोशनलाल के० सी० जैन	सहारनपुर
३५	,,	मोल्हडमय श्रीपाल जी जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,,	शीतलप्रसाद जी जैन	सदर, मेरठ
३७	,,	बनवारीलाल निरञ्जनलाल जी जैन	शिमला
३८	,,	❀ जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबड़ा	झूमरीतिलैया
३९	,,	❀ इन्द्रजीत जी जैन वकील स्वरूप नगर	कानपुर
४०	,,	❀ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बड़जात्या	जयपुर
४१	,,	❀ दयाराम जी जैन आर ए डी ओ	सदर मेरठ
४२	,,	❀ मुन्नालाल यादवराम जी जैन	सदर मेरठ
४३	,,	+ जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन	सहारनपुर
४४	,,	+ जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन	शिमला

नोट:—जिन नामोंके पहिले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आये हैं, शेष बाकी हैं। तथा जिनके पहिले + ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नहीं आया सभी बाकी है।

आमुख

तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) की गन्धहस्तिमहाभाष्य नामक टीका करनेके प्रारम्भ में मोक्षमार्गके नेता आप्तको वंदन करनेके प्रसङ्गकी व्याख्यामें सर्वप्रथम श्री तार्किकशिरोमणि समन्तभद्राचार्यने ये आप्त सर्वज्ञ ही क्यों वंदन करनेके योग्य हैं इसपर मीमांसा (सयुक्तिक विचारणा) की। किसीके पास देव आते हैं, कोई आकाशमें चलते हैं, किसीपर चमर ढुलते हैं, इन कारणोंसे वे आप्त नहीं हैं, पूज्य नहीं हैं। ये बातें तो मायावी पुरुषोंमें भी संभव हो सकते हैं। संसारी देवोंमें संभव होनेसे दिव्य शरीर भी पूज्यत्वका हेतु नहीं है। तीर्थप्रवृत्ति भी अनेकोंने की है उनमें परस्पर विरोध भी है अत. तीर्थप्रवर्तन सबकी आप्तताका हेतु नहीं बन सकता, किन्तु जिसके परस्पर विरुद्ध वचन नहीं हों, युक्तिशास्त्रसे अविरुद्ध वचन हो, प्रमाणसे प्रसिद्ध व अबाधित वचन हो वही निर्दोष हो सकता है। इस चर्चापर वस्तुस्वरूपके अभिमतोंपर पाण्डित्यपूर्ण सयुक्तिक विचार किया गया है। जैसे किन्हीं दार्शनिकोंका सिद्धान्त है कि तत्त्व एकान्ततः भावस्वरूप है किसी भी प्रकार अभावस्वरूप नहीं है। इस सम्बन्धमें संक्षिप्तरूपमें यह जानकारी दी है कि यदि कोई पदार्थ सर्वथा भावरूप है तो कोई भी पदार्थ सर्व पदार्थोंके सद्भावरूप हो जायगा तब द्रव्य क्षेत्र कालभावकी कुछ भी व्यवस्था नहीं हो सकती। भावैकान्तको अनेक विधियोंसे अनेक दोषदूषित दर्शाया है। किन्हीं दार्शनिकोंका अभिमत है। किन्हीं दार्शनिकोंका मन्तव्य है कि तत्त्व अभावस्वरूप ही है इस विषयमें बताया गया है कि पदार्थ यदि अभावैकान्तमय है तो ज्ञान, वाक्य, प्रमाण

आदि कुछ भी न रहा फिर सिद्ध ही क्या किया जा सकेगा। यों पदार्थ न केवल भाव स्वरूप ही है और न केवल अभावस्वरूप ही है किन्तु प्रत्येक पदार्थ स्व द्रव्य क्षेत्रकाल भाव से भावस्वरूप है और पर द्रव्य क्षेत्रकाल भावसे अभावस्वरूप है। तथा दोनों स्वरूपोंका एक साथ कहा जाना अशक्य होनेसे अवक्तव्यरूप है। यों तीन स्वतन्त्र धर्म सिद्ध होनेपर इनके द्विसंयोगी तीन भङ्ग और त्रिसंयोगी एक भङ्ग और सिद्ध होता है। यों सप्त भङ्गोंमें भावस्वरूप व अभावस्वरूपका वर्णन करके सम्यक् प्रकाश दिया है।

पूर्वोक्त स्याद्वाद विधिसे निम्नाङ्कित इन सब विषयोंके सम्बन्धमें भी यथार्थ प्रकाश दिया गया है (१) पदार्थ एक है या अनेक है, (२) वस्तु अद्वैतरूप है या द्वैतरूप अर्थात् एकान्तः सभी ज्ञेय अथवा पृथक् पृथक् है, (३) वस्तु नित्य है या अनित्य, (४) वस्तु वक्तव्य है या अवक्तव्य, (५) कार्यकारणमें, गुण गुणीमें सामान्य सामान्यवान्में भिन्नता है, या अभिन्नता है, (६) धर्म धर्मीकी सिद्धि आपेक्षिक है या अनापेक्षिक है, (७) क्या हेतुसे ही सब कुछ सिद्ध होता है या आगमसे ही सब कुछ सिद्ध होता है (८) क्या प्रतिभासमात्र अन्तरङ्ग अर्थ ही है या बहिरङ्ग प्रमेय पदार्थ ही है, (९) क्या भाग्यसे ही अर्थसिद्धि है या पुरुषार्थसे ही अर्थसिद्धि है, (१०) क्या अन्य प्राणियोंमें दुःखके उत्पादसे पाप बंधता है, (११) क्या अन्य प्राणियोंमें सुखका उत्पाद होनेसे पुण्य बंधता है, (१२) क्या स्वयंके क्लेशसे क्या पुण्य बंधता है (१३) क्या स्वयंके सुखसे पाप बंधता है, (१४) क्या अज्ञानसे याने ज्ञानकी कमीसे बन्ध ही होता है, (१५) क्या अल्प ज्ञानसे मोक्ष होता है। उक्त सभी विषयोंकी सयुक्तिक मीमांसा करके स्याद्वाद विधिसे सभी विषयोंका यथार्थ परिचय कराया गया है, जिसका अति संक्षेपमें वर्णन किया जाय तो वह भी बहुत अधिक विवरण हो जाता है। इस सबको पाठकगण स्वयं इन प्रवचनोंका अध्ययन करके परिज्ञात करें। अन्तमें वस्तुस्वरूपको सिद्ध करने वाले तत्त्वज्ञानकी प्रमाणरूपता व स्याद्वाद नयसंस्कृतता व तत्त्वज्ञानका फल, स्याद्वादका विवरण, केवल प्रत्यक्ष परोक्षके अन्तमें स्याद्वादकी केवल ज्ञानवत् सर्वतत्त्वप्रकाशकताका वर्णन करके वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेष्टाको ही आप्त होना सिद्ध किया है तथा आत्मकल्याणार्थी पुरुषोंको सम्यक् उपदेश और मिथ्योपदेशकी विशेष जानकारी हो एतदर्थ इस आप्तमीमांसाको रचनेका आशय तार्किक चूडामणि श्री समन्तभद्राचार्यने बताया है।

इस महान ग्रन्थके गूढतम महत्त्वको सरलतासे सर्वसाधारणोपयोगी प्रवचन द्वारा प्रकट करना अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी जी महाराजके प्रकाण्ड पाण्डित्यका सुमधुर फल है जिसे जैन मीमांसकोंकी उच्चतम कोटिमें विराजमान करनेका महाराज श्री ने प्रयास किया है। आशा है जैन समाज ही नहीं, विश्व समाज इस प्रयाससे लाभान्वित होगा।

तत्त्वज्ञान-प्रभावित

व्याकरणरत्न, काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित'

सहारनपुर

आप्तमीमांसा-प्रवचन

[तृतीय भाग]

[प्रवक्ता – अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्यश्री १०५ मनोहर जी वर्णी महाराज]

आप्तकी मीमांसामें देवागम नभोयान देहातिशय व तीर्थकृत्व मात्रसे आप्तताके अनिर्णयका कथन—यह आप्तमीमांसा ग्रन्थ है जो कि तत्त्वार्थशास्त्रपर रचित गंधहस्तिमहाभाष्य टीकाका मंगलाचरण रूप है। वहाँ प्रथम ही आप्तदेवको नमस्कार किया गया है। उससे पहिले आप्तके निर्णय करनेमें इस ग्रन्थकी रचना हुई है। आप्त कौन हो सकता है? इसका निर्णय करना इस ग्रन्थका मूल प्रयोजन है, पूज्य श्री आचार्य समन्तभद्रने अब तक यह बताया कि कोई भगवान आप्त इसलिए नहीं है कि उसके देवागम या आकाश-विहार आदिक विभूतियाँ हैं क्योंकि देवोंका आना आकाश मे विहार होना ये सब बातें तो मायावी पुरुषोंमें भी पाई जाती हैं। अतः देवागम व गगनविहारके कारणसे हे प्रभो! आप महान नहीं हो तथा आपका देह मलमूत्र आदिक से रहित है तथा बाहरमें देवतालोग पुष्पवृष्टियाँ करते हैं इस कारणसे आप महान हो यह बात नहीं है, क्योंकि मलमूत्र स्वेद रहित शरीर रागादिमान देवोंके भी पाया जाता है जो देवगतिके जीव हैं, उनका वैक्रियक शरीर है, उस शरीरमें मलमूत्रादिक नहीं हैं। तो दिव्य सत्य शारीरिक महान अतिशय है इस कारण भी प्रभु आप हमारे लिए महान नहीं हो। तब इस बीचमें मानो आप्तकी ओरसे किसीने पूछा कि प्रभुने तीर्थ चलाया है इस कारण तो प्रभु महान हैं ना, तो उसके उत्तरमें अभी तीसरी कारिकामें विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है कि तीर्थ चलाने मात्रसे भी प्रभु हम लोगोंके महान नहीं हैं प्रमाणभूत नहीं हैं। यह बात सुनकर जो तीर्थपरम्परा नहीं मानते, केवल एक वेद और श्रुतिवाक्यमें ही विश्वास रखते हैं वे बोल उठे कि धन्य हो समन्तभद्र! आपने बहुत ही उत्तम कहा है नित्यवाद, अनित्यवाद, सुगत, कपिल आदिक जितने भी ये तीर्थ चलाने वाले सम्प्रदाय हैं, इनमें कोई भी आप्त नहीं हो सकता, पुरुष कोई आप्त नहीं हुआ करता, एक श्रुतिवाक्य अपौरुषेय आगम ही प्रमाणभूत है उसके उत्तरमें बहुत विस्तारसे कहा गया है कि तीर्थकृत (तीर्थच्छेद) सम्प्रदाय भी चाहे वह नियोगवादी या विधिवादी हों वे सब प्रमाणभूत नहीं हैं क्योंकि उनके भाषणमें भी परस्परविरोध पाया जाता है।

लोकायतिकत्व, शून्यवाद व सर्वाप्तिवादकी भी अप्रमाणता होनेसे वीतराग सर्वज्ञ परमपुरुषमें आप्तपनेकी उत्थानिका—प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण

मानने वाले चार्वाकोंका सम्प्रदाय जो कि प्राय इस मानव लोकमें बहुतायतसे फैला हुआ है और जिसके सिखानेकी भी आवश्यकता नहीं है। भले ही लोग चार्वाकके नामसे न समझते हों लेकिन जो आँखों दिखे वही मात्र तत्त्व है। स्वर्ग, नरक, परमात्मा, आत्मा आदि जो आँखों नहीं दिख सकते हैं वे कुछ नहीं हैं। इस बातको मानने वाला प्राय सारा ही मानव जगत है। तो ऐसे एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण माननेवालोंका सम्प्रदाय भी प्रमाणभूत नहीं है। इस बातको सुनकर शून्यवादीने भी अपनी बात रखी कि ये सब प्रमाणभूत नहीं हैं। न तीर्थ चलाने वालेके सम्प्रदाय प्रमाणभूत हैं, न अपौरुषेय आगम प्रमाणभूत है, न प्रत्यक्ष मात्र प्रमाण मानने वालोंका सम्प्रदाय प्रमाणभूत है। प्रमाण नामक कोई तत्त्व ही नहीं है। न प्रमाण तत्त्व है न प्रमेयतत्त्व है। यों शून्यवादको सिद्ध करने वालोंके प्रति भी युक्त बताया गया है कि शून्यवादका मन्तव्य भी प्रमाणभूत नहीं है, इसी प्रकार जो सभीको आप्त मानने वाले हैं, ऐसे वैनयिक भी प्रमाणभूत नहीं हैं। जब उक्त तृतीय कारिकामें इन सब परस्पर विरुद्ध कथन करने वाले सम्प्रदायोंके प्रमाणभूत पनेका निराकरण किया गया तो उससे यह सिद्ध है कि जिसका वचन परस्पर विरुद्ध नहीं है और जिसकी सिद्धिमें बाधक प्रमाण भी कोई नहीं है ऐसे हे देव ! हे वर्द्धमान देव ! आप ही संसारी प्राणियोंके प्रभु हैं, क्योंकि दोष और आवरणमें हानि जहाँ अत्यन्त पायी जाती है अर्थात् दोष और आवरणोंका जहाँ रंच भी सद्भाव नहीं है ऐसी स्थिति आपकी है और साक्षात् समस्त तत्त्वार्थोंका परिज्ञान हुआ है इस कारण हे वीतराग सर्वज्ञ वर्द्धमान स्वामी ! आप ही संसारी प्राणियोंके प्रभु हो। इस ही प्रकार अनेक मुनिजनोंने, सूत्रकार आदिकने भी स्तवन किया है। इस तरह समन्तभद्राचार्यके द्वारा आप्तकी प्रमाणताके परीक्षणकी भूमिका निरूपण करनेके बाद अब मानो प्रभुने ही पूछा हो, प्रभुकी ओरसे प्रभुभक्तोंने ही पूछा हो कि तुममें (प्रभुमें) दोष और आवरणोंकी हानि सम्पूर्णतया आपने कैसे निर्णीत की है? इस तरह पूछे गये हुए ही मानो आचार्य कहते हैं कि

> दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात्।
> क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय॥ ४ ॥

दोषों और आवरणोंकी पूर्ण हानि सिद्ध करने वाले अनुमानप्रयोगमें धर्मित्वकी प्रसिद्धिका कथन — कहींपर अर्थात् किसी परम पुरुषमें दोष और आवरणकी हानि निःशेष होती है अर्थात् दोष और आवरण पूर्णतया नष्ट होते हैं अर्थात् कोई परम पुरुष दोष और आवरणोंसे सर्वथा रहित है, क्योंकि दोष और आवरण ये दोनों तारतमभावरूपसे हीन होते हुए देखे जाते हैं। जो चीज तारतमभावसे कम कम होती हुई नजर आती है उसका कहीं सम्पूर्णतया भी अभाव हो जाता है, जैसे कि किसी स्वर्णमें अंतरङ्ग और बहिरङ्ग मलका अभाव अपने कारणोंसे हो जाता है। स्वर्णमें किट्ट और कालिमा दोष हो जाया करते हैं। तो जब अनेक स्वर्णोंमें यह नजर आता है कि किसीमें किट्टकालिमा कम है, किसीमें और कम है तो कहीं किट्टकालिमाका पूर्णतया भी क्षय है यह बात सिद्ध होती है और प्रत्यक्ष भी देखनेमें आती है। तो

यहाँ इस अनुमान प्रयोगसे यह सिद्ध किया है कि किसी परम पुरुषमें दोष और आवरणकी हानि सम्पूर्णतया हो जाती है क्योंकि दोष और आवरणकी हानिका अतिशायन पाया जाता है याने दोष और आवरणोंका तारतम्यभावमें हीयमानपना देखा जाता है, इस अनुमान प्रयोगमें धर्मी है दोष और आवरणकी हानि। धर्मीका लक्षण कहा गया है "प्रसिद्धोधर्मी" जो प्रसिद्ध हो वह धर्मी है। जैसे अनुमान बनाया कि इस पर्वतमें अग्नि होनी चाहिए धूम होनेसे, तो इसमें धर्मी है पर्वत। जो साध्यका आधार हो उसे धर्मी कहते हैं। साध्यका आधार बनाया जा रहा है पर्वतको। पर्वतमें अग्नि है तो पर्वत वादी और प्रतिवादी दोनोंको सिद्ध होना चाहिए, सो सिद्ध है ही सबको स्पष्ट दिखता है कि यह पर्वत है। जिस पक्षमें साध्य सिद्ध किया जाता है वह पक्ष वादी-प्रतिवादी दोनोंको अबाधित प्रसिद्ध होना चाहिए। सो इस अनुमान प्रयोगमें दोषावरणोंकी हानि अर्थात् दोष सामान्य और आवरण सामान्यकी हानि बराबर प्रसिद्ध है, इस कारण यह पक्ष है धर्मी है, इसमें कोई विरोध नहीं है, कैसे समझा लोगोंने कि दोष सामान्य और आवरण सामान्यकी हानि प्रसिद्ध है? यह समझा है यह निरखकर कि लोगोंमें एक देशरूपसे निर्दोषता पायी जाती है और ज्ञानादिक पाये जाते हैं। दोष न रहनेका ही फल है निर्दोषता आनी। और आवरण न होनेका ही फल है ज्ञानादिक होना। तो जब हम लोगोंमें एक देशरूपसे निर्दोषता पायी जा रही है, ज्ञानादिक पाये जा रहे हैं तो इस निश्चयसे यह प्रसिद्ध हो ही जाता है कि दोष सामान्य और आवरण सामान्यकी हानि वास्तविक होती है, क्योंकि कारणके अभावमें कार्य नहीं होता है। निर्दोषपना और ज्ञानादिक होना यह इस बातको सिद्ध करता है कि वहाँ दोष और आवरण नहीं हैं। थोड़ी निर्दोषता होना, थोड़ा ज्ञान होना यह सिद्ध करता है कि कुछ अंशोंमें दोष और आवरण नहीं है। तो इस प्रकार "दोष और आवरण सामान्य की हानि होना" यह इस अनुमान प्रयोगमें पक्ष बनाया गया है।

दोषों और आवरणोंकी हानिकी निःशेषताकी साधना—इस अनुमानमें सिद्ध यह किया जा रहा है कि दोषावरणकी हानि किसी पुरुषमें निःशेषरूपसे होती है अर्थात् किसी आत्मामें दोषों व आवरणोंकी पूर्णतया हानि है, बिल्कुल अभाव है। यह यहाँ सिद्ध किया जा रहा है। जो वादीको इष्ट हो, वादी प्रतिवादी दोनोंको अबाधित हो, किन्तु प्रतिवादीको जो असिद्ध हो वह साध्य कहलाता है। तो दोष व आवरणकी सामान्य हानि वादी भी मान रहा है, प्रतिवादी भी मान रहा है किन्तु किसी जगह पूर्णतया हानि हो जाती है, दोष और आवरणोंका अभाव हो जाता है, यह यहाँ सिद्ध किया जा रहा है, क्योंकि प्रतिवादीको समग्ररूपसे दोषों व आवरणोंका अभाव होनेके सम्बन्धमें विवाद है। तो इस अनुमान प्रयोगमें दोषावरणकी हानि यह तो पक्ष है और कहीं सम्पूर्णतया (हानि) है यह साध्य है और हेतु दिया गया है यह कि क्योंकि इसका अतिशायन पाया जाता है। अर्थात् हानिकी अधिकता पायी जाती है। कहीं हानि कम है, किसी पुरुषमें हानि अधिक है, किसी पुरुषमें उससे भी अधिक है तो

यह सिद्ध है कि कहीं हानि पूरेरूपसे भी है। इस अनुमान प्रयोगमें दृष्टान्त दिया गया है कि जैसे किसी स्वर्ण पाषाण आदिकमें किट्टकालिमा आदिक बहिरङ्ग अन्तरङ्ग दोनों का क्षय पूर्णतया है, सो यह दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है। अनुमान प्रयोगमें दृष्टान्त वह दिया जाता है जो वादी और प्रतिवादी दोनोंके द्वारा सम्मत हो। दृष्टान्त एक असिद्ध बात को सिद्ध करनेके लिए माध्यम होता है। सो ये दृष्टान्त वादी प्रतिवादी दोनोंके प्रसिद्ध है। तो जैसे स्वर्ण पाषाण आदिकमें किट्टकालिमाकी हानि बढ़ती हुई देखी गई है तो कहीं सम्पूर्णरूपसे भी हानि है यह बात भी देखी जाती है, इसी कारण दोष और आवरणोंकी हानि भी बढ़-बढ़कर जब हम लोगोंमें दोष आवरणकी हानि अधिक प्रतीत हो रही है तो यह किस परम पुरुषमें सम्पूर्णतया है, इस बातको सिद्ध करती है। इसका अर्थ यह है कि रागादिक भाव होना और पदार्थोंका ज्ञान न होना याने अज्ञानादि होना दोष है? ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय ये आवरण हैं तो अब जीवोंमें यह बात देखी जा रही है कि रागादिक दोष और ज्ञानावरणादि आवरण ये किसीमें कम हैं किसीमें और कम हैं। अब कमतीका अतिशय देखा जा रहा तो उससे यह सिद्ध होता कि कोई परम पुरुष, कोई आत्मा ऐसा भी होता कि जिसमें रागादिक दोष रंचमात्र भी नहीं होते और ज्ञानावरणादि भी रंचमात्र नहीं रहते। इस कारिकामें यह सिद्ध किया जा रहा है कि कोई पुरुष होता है, ऐसा जो वीतराग और सर्वज्ञ हो, इसकी सिद्धि इस कारिकामें करनेके बाद अगली कारिकामें यह बताया जायगा कि हे वर्द्धमान प्रभु सकल परमात्मन् हे अरहंत देव! ऐसा आप्तपना आपमें ही होता अतः आप ही आप्त हो और इसकी कारण पूर्वक सिद्धि की जायगी। यहाँ सामान्यतया सिद्ध किया जा रहा है कि कोई आत्मा ऐसा अवश्य है जिसमें अज्ञान रागादिक दोष रंचमात्र भी नहीं रहते।

दोष और आवरण दोनोंकी भिन्नस्वभावताका वर्णन—अब यहाँ कोई शंका करता है कि इस अनुमान प्रयोगमें जो यह कहा जा रहा है कि दोष और आवरणकी हानि कहीं सम्पूर्णतया है तो वह दोष नाम किसका है? जो आवरणसे भिन्न स्वभाव रखता हो। हम तो ऐसा ही समझते हैं कि इस जीवमें जो रागादिक दोष हैं वे ही सब आवरणका काम करते हैं। इस दोषके कारण ज्ञान आनन्द पूर्णतया प्रकट नहीं हो पाते हैं। तो आवरणसे भिन्न कोई स्वभाव रखता हो, ऐसा दोष नामक क्या पदार्थ है? इस शंकापर कहते हैं कि पहिले तो शब्दरचनापरसे ही उत्तर लीजिए। सिद्धान्तकी बात भी आगे कहेंगे। इस कारिकामें दोषावरणयो. यह शब्द देकर द्विवचनसे सिद्ध किया है कि दोष और आवरण ये दोनों भिन्न स्वभाव वाले भाव हैं। द्विवचन देनेकी सामर्थ्यसे यह जानना चाहिए कि अज्ञान आदिकको दोष कहते हैं। अज्ञान रागद्वेष कषाय ये जो जीवके विभाव हैं उनको दोष कहते हैं और यह दोष स्वपरपरिणाम हेतुक है याने अपने और परपदार्थके परिणमनके हेतुसे है। अर्थात् अज्ञानादि दोष अपने उपादानसे और अज्ञानावरणादि कर्मके उदयके निमित्तसे होते हैं,

तथा रागादिक भावोंके कारण स्वयं जीवमें भी विचित्र विषय परिणमन होता है और अज्ञान रागादिक दोषके कारण पर पदार्थमें, कर्ममें भी परिणमन होता है रागादिक दोष अपने व परके परिणमनका हेतुभूत भी है। यदि यह अभिमत होता कि दोष ही आवरण है, ऐसा प्रतिपादन करनेकी इच्छा होती या प्रतिपादन किया होता तो दोषावरणयो: ऐसा जो शब्द दिया है यह द्विवचन न दिया जाता। यह द्विवचन प्रयोग जो कि द्वन्द्व समास करनेपर सप्तमीके द्विवचनमें प्रयोग हुआ है, यह द्विवचनका प्रयोग ही सिद्ध करता है कि दोष और और आवरण ये दोनो भिन्न-भिन्न भाव हैं। तो दोषावरणयो. इसमें दए गए द्विवचनको सामर्थ्यसे यह सिद्ध होता है कि आवरणसे भिन्न स्वभाव है दोषका। आवरण है ज्ञानावरण कर्म और दोष कहलाते हैं रागद्वेष मोह आदिक अज्ञानभाव। अज्ञानभाव तो जीवके विभावपरिणमन हैं, और आवरण कार्माणवर्गणाका विभाव परिणमन है। आवरण अचेतन हैं, वे अचेतनके परिणमन हैं और दोष वे चेतनके परिणमन हैं। दोष स्वयं चेतना स्वरूप नहीं है क्योंकि उसमें स्वयं ज्ञान नहीं पड़ा है लेकिन हैं चेतनके परिणमन। तो द्विवचनकी सामर्थ्यसे यह निश्चित हुआ कि पौद्गलिक ज्ञानावरण आदिक कर्मोंसे, आवरणोंसे भिन्न स्वभाव वाले ही अज्ञान आदिक दोष हैं। उन अज्ञान आदिक दोषोंका कारण है आवरण कर्म और जीवका पूर्व अपना परिणमन। यहाँ उपादान और निमित्त दोनों कारणोंके सम्बन्धमें प्रकाश दिया गया है। वर्तमानमें जीवमें जो रागादिक अज्ञान आदिक दोष हो रहे हैं, इन दोषोंकी उत्पत्तिका कारण निमित्त दृष्टिसे ज्ञानावरण आदिक कर्म हैं। उपादान दृष्टिसे उस जीवका उस ही जातिका अपना पहिला परिणमन है। रागद्वेष आदिक संयुक्त जीवके रागद्वेषादिककी उत्पत्ति हो रही है, सो इन रागादिक दोषोंका कारण अपना परिणाम है। यह उपादान रूपसे बात कही गई है, और चूँकि रागादिक दोष आत्माके स्वभावमें नहीं हैं और फिर हो रहे हैं तो उनका निमित्त कारण कोई अन्य है, वे हैं ज्ञानवरण आदिक कर्म।

रागादिक दोषकी केवल स्वपरिणाम हेतुकताकी असिद्धि—यहाँ कोई शंका करता है अथवा क्षणिकवादियोंका यह मतव्य हो रहा है कि अज्ञान आदिकभाव केवल अपने आत्माके कारणसे होते हैं, उसमें परपदार्थोंका कारण नहीं है। ऐसा मतव्य रखनेका प्रयोजन यह है कि यदि रागादिक दोषोंकी उत्पत्ति होनेका कारण आवरणको, ज्ञानावरण आदिक कर्मोंको मान लिया जाय तो इसमें एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें कार्य कारण सम्बन्ध जुट जायगा, किन्तु क्षणिकवादियोंके कार्य कारण भाव नहीं माना गया है। जहाँ वस्तु क्षण-क्षणमें अपना उत्पाद व्यय कर रहे हैं वहाँ एक दूसरेके निमित्तको बात कहाँ है? अतएव यह शंका की जा रही है कि जीवमें जो रागद्वेष अज्ञान आदिक भाव होते हैं वे अपने ही परिणामके हेतुसे होते हैं। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी शंका रखना अयुक्त है क्योंकि यदि अज्ञान आदिक दोष अपने ही परिणामके कारण होते हो तो यह फिर अनित्य नहीं रह सकता जो बात अपने ही स्वरूपके

कारण होती हो वह कदाचित् रहे, कदाचित् न रहे, ऐसा कैसे हो सकता है ? जो अपना स्वरूप है वह तो सदा ही रहेगा, लेकिन ये रागादिक भाव कादाचित्क हैं, कभी हुए कभी मिट गए, नये-नये होते हैं। ये रागादिक दोष होते हैं और होकर मिट जाते हैं। इससे सिद्ध है कि रागादिक भाव निज आधारभूत वस्तुके स्वके परिणमन मात्र हेतुसे नहीं है। जो अपने ही परिणामके हेतुसे होता है वह कादाचित्क नहीं हो सकता। जैसे जीवका जीवत्व आदिक स्वरूप। जीवका जीवत्व कादाचित्क नहीं है, क्योंकि जीवका वह स्वरूप है, नित्य है। तो इस प्रकार रागादिक भाव जीवका स्वरूप नहीं। अतः सिद्ध है कि रागादिक दोष जीवके मात्र अपने परिणामके कारण नहीं हुआ करते, उनके होनेमें स्व और पर दोनोंका परिणाम कारण है।

अज्ञानादि दोषमें केवल परपरिणामहेतुकताका अभाव—अब यहाँ सांख्यके अनुयायी शंका करते हैं कि अज्ञान आदिक दोष पर पदार्थोंके परिणमनके कारणसे ही होते हैं, ऐसा मान लीजिए। जो रागद्वेषादिक विकार होते हैं है आवरण कर्मके कारणसे होते हैं, ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है ? ऐसा माननेपर वे विकार कादाचित्क हैं, इससे भी विरोध नहीं आता, क्योंकि विवरणके हेतुसे हुये हैं। औपाधिक हैं, अतएव वे रागादिक दोष कादाचित्क रहेंगे। इस शंकाका उत्तर देते हैं कि अज्ञान आदिक दोषोंसे मात्र परपरिणाम हेतुक कहना भी युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि यदि रागादिक दोष अपने योग्य उपादानसे न हों और केवल कर्मके परिणमनोंके कारणसे ही हों तो मुक्त आत्माओंके भी रागादिक दोषोंका प्रसंग हो जायगा, क्योंकि कर्म तो सर्वत्र भरे पड़े हैं और कर्म ही जीवके रागादिक दोषोंको उत्पन्न करते हैं, तब कर्म मुक्त आत्माओंके भी रागादिक दोष उत्पन्न करदें, लेकिन ऐसा तो नहीं है। निर्णीत बात यही है कि समस्त कार्य उपादान और सहकारी कारणकी सामग्रीसे जन्य होनेके रूपसे माने गए हैं अर्थात् प्रत्येक कार्य अपने उपादान कारण और सहकारी सामग्री याने निमित्त कारण हेतुसे उत्पन्न होते हैं। इसमें उपादान कारण तो वह है जो कार्यरूप परिणमता है। कार्य होनेपर भी उपादानभूत द्रव्य उसमें रहता है अर्थात् उपादान कारणभूत पदार्थमें उस काल कार्य अभेदरूपसे है, किन्तु सहकारी सामग्रीका कार्यमें कार्यके आधारभूत पदार्थमें अत्यन्ताभाव है।

दृष्टान्त व विवरण सहित उपादान, निमित्त, निमित्तनैमित्तिक भाव व वस्तुस्वातन्त्र्यका दिग्दर्शन—जैसे मिट्टीसे घड़ा बनाया गया तो उस घड़ेका उपादान कारण तो पूर्वपर्याय संयुक्त वह मिट्टी है और निमित्त कारण, सहकारी सामग्री कुम्हार, चक्र, दण्ड आदिक अनेक हैं। अब इनमेंसे यदि सहकारी सामग्री न हो तो केवल मिट्टीसे ही स्वयं घड़ा न बन जायगा और उपादान कारण मिट्टी है लेकिन सहकारी सामग्री वहाँ न हो तो भी घड़ा न बन सकेगा, ऐसा इसमें परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव होनेपर भी वस्तुस्वरूपसे देखा जाय तो कार्यका जो उत्पाद

हुआ है वह उपादानभूत द्रव्यमेंसे हुआ है, सहकारी सामग्रीसे कार्य नहीं बना लेकिन उपादानका ऐसा परिणमन स्वभाव है कि यदि वह विभावरूप परिणमता है तो वह किसी पर उपाधिका आश्रय पाकर परिणमता है, जिसे स्पष्ट शब्दोंमें यह कहा जा सकता है कि निमित्तको पाकर उपादान अपने विभाव वाला होता है। ऐसा होना उपादानभूत द्रव्यका परिणमन स्वभाव ही है। निमित्तभूत कारण अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव कुछ भी उपादानमें सौंपता नहीं है। सहकारी सामग्रियोंका उपादानभूत द्रव्यमें अत्यन्ताभाव है, इतनेपर भी निमित्त नैमित्तिक भावकी व्यवस्था युक्तिसंगत है और इस ही तरहकी अनेक कार्योंमें प्रतीति भी हो रही है। तब यह सिद्ध हुआ कि दोष जो जीवमें उत्पन्न होते हैं वे स्व और परके परिणामके हेतुसे होते हैं। रागादिक दोष उत्पन्न हुए तो पूर्वविभाव दशायुक्त जीव तो उपादान कारण है और राग प्रकृति का उदय निमित्त कारण है। साथ ही जो विषयभूत पदार्थ उसके उपयोगमें आयें वे आश्रयभूत हैं। इस प्रकार कर्मोदयका निमित्त पाकर बाह्य विषयोंका आश्रय करके जीवमें रागादिक दोष उत्पन्न होते हैं। तो यह सिद्ध हुआ कि जीवके अज्ञान आदिक दोष स्वपर परिणामहेतुक हैं, कार्य होनेसे। जैसे दाल पकायी गई तो पाकरूप कार्य में वह दाल स्वयं उपादान कारण है। उस दालमें योग्यता थी सामग्री पाकर पकनेकी सो वह पक गयी, अन्यथा जैसे कुरडू मूंगका दाना जो कि कभी सीझता ही नहीं है उसे कितनी ही देर बटलोहीमें रखा जाय वह कंकड़ोंकी भाँति ज्योंकी त्यों रहती है। अन्तर क्या रहता है कि उस दालके दानेमें पकनेकी योग्यता ही नहीं है तो जैसे दाल पकी तो उपादान कारण तो वह स्वयं दाल है और निमित्त कारण अग्नि है। सो जैसे ये सब लौकिक कार्य स्व और परके परिणामके कारणसे होते हैं, उपादान और निमित्त दोनों हेतुवोंकी समग्रतासे होते हैं इसी प्रकार जीवके रागादिक दोष भी स्व और परके परिणामके हेतुसे होते हैं।

परस्पर कारणकार्यभावकी प्रसिद्धिके लिये दोष और आवरण दोनों की निःशेष हानिरूप साध्यका कथन—अब यहाँ कोई शंका करता है कि जब यहाँ बताया गया है कि रागादिक दोष आवरणके कार्य हैं तब समस्त आवरणोंकी हानि होनेपर अज्ञान आदिक दोषोंकी हानि तो अपने आप ही सिद्ध हो गयी, क्योंकि कारणके नाश होनेका नियम बना हुआ है। तो आवरणके दूर होनेपर दोष हानि होना सामर्थ्य सिद्ध है और दोषकी हानि होनेपर आवरणकी हानि होना भी सामर्थ्य सिद्ध है। जब रागादिक दोष नहीं रहते हैं तो आवरण भी नहीं रहते हैं। वहाँ पर भी यही हेतु लागू होता है कि कारणोंके नाश होनेपर कार्यके नाश होनेका नियम है। तब जब परस्पर यह बात है कि दोष हानिसे आवरण हानि हुई, आवरण हानिसे दोष हानि हुई तब इनमेंसे किसी एककी हानि ही निःशेषरूपसे साध्य करना चाहिये। दोनोंको साध्यमें क्यों रखा है कि दोष और आवरण दोनोंकी हानि किसी जगह सम्पूर्णरूपसे हो जाती है। इनमेंसे यदि एक हीको साध्य बनानेको कहा जाय कि किसी परमपुरुषमें

अज्ञान आदिक दोषोंकी हानि सम्पूर्णतया है तो उससे दूसरी बात अपने आप ही सिद्ध हो जाती या यह कहते कि किसी जीवमें आवरणकी हानि निःशेषरूपसे है तो इसमें भी दूसरी बात स्वयं सिद्ध हो जाती । फिर दोनोंको साध्यरूपमें यहाँ क्यों रखा गया है ? इस शंकापर उत्तर देते हैं कि यहाँ एकके कहनेपर दूसरेकी सिद्धि सामर्थ्यसे हो ही जाती है फिर भी दोनोंको साध्यमें रखनेका कारण यह है कि यह भी प्रसिद्ध हो जाय कि दोष और आवरण याने जीवके परिणाम और पुद्गलके परिणाम इन दोनोंमें परस्पर कार्य कारण भाव है यह बात प्रसिद्ध करनेके लिए यहाँ दोष आवरण दोनोंके सम्पूर्णरूपसे अभावका साधन किया गया है ।

आवरणकी कारणरूपता व दोषकी कार्यरूपताका वर्णन—अज्ञान दोष तो ज्ञानावरणके उदय होनेपर होता है । जब जीवका पूर्वबद्ध ज्ञानावरण कर्म विपाक अवस्थामें होता है तो जीवमें अज्ञानभाव होता है । जीवका दूसरा दोष है अदर्शन, वह दर्शनावरण कर्मके उदय होनेपर होता है । जीवका दोष है मिथ्यात्व, वह दर्शन मोहके उदय होनेपर होता है । मिथ्यात्व नाम है मिथ्याभावका । जैसा वस्तुस्वरूप है उसके विपरीत अभिप्राय बने तो उसे मिथ्यात्व कहते हैं । मिथ्या शब्दका सही अर्थ तो है सम्बन्ध । सम्बन्धबुद्धिको मिथ्यात्व कहते हैं । प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे स्वतन्त्र है, किसीका किसीमें कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी एक दूसरेके साथ सम्बन्ध मानना यह है मिथ्यात्व भाव । तो दर्शन-मोह नामका जो मोहनीय कर्म है उसका उदय होनेपर जीवके मिथ्यात्व दोष होता है । नाना प्रकारका अचारित्र भी जीवका दोष है । अपने स्वभावमें न ठहरकर परवस्तुमें उपयोगके रमानेको अचारित्र कहते हैं । चूँकि परवस्तुवें अनेक हैं और उनमें उपयोग रमानेकी पद्धतियाँ भी अनेक हैं । अत: अचारित्र नाना प्रकारके हैं । वे सब नाना प्रकारके अचारित्र विविध चारित्र मोहके उदय होनेपर होते हैं । इन अचारित्रोंको संक्षेपमें बाँधा जाय तो चूँकि उपयोगका ज्ञान स्वभावमें रमनेकी कमी शिथिलता अनेक अंशोंमें होती है और उनकी पद्धतियाँ भी विविध हैं । अत: चार प्रकारोंमें उन्हें बाँटिये । प्रथम तो ऐसा पूर्ण अचारित्र जिसमें चारित्रके आधारका उपयोग भी नहीं हो सकता । दूसरा असंयम जो अप्रत्याख्यानावरण नामक चारित्र मोहनीयके उदयसे होता है । अनन्तानुबंधी कषाय चारित्र और सम्यक्त्व दोनोंके विघातका कारण है, पर अणुव्रतरूप परिणाम न होना, पापसे एकदेश भी विरक्तिका भाव न होना यह अप्रत्याख्यानावरणके उदयसे होता है । प्रत्याख्यानावरणके उदयमें महाव्रतरूप परिणाम नहीं होते और संज्वलन कषायके उदयमें विशुद्ध वीतराग भाव यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं होता । तो अनेक प्रकारके चारित्र मोहके उदय होनेपर नाना प्रकारके अचारित्र प्रकट होते हैं । अंतराय कर्मका उदय होनेपर दानका भाव न होना, शील न होना ये सब दोष उत्पन्न होते हैं । इस तरह ये चार घातिया कर्म गुणोंमें विकार, गुणोंका आवरण करनेसे आवरणरूप हैं । ये जीवके गुणोंका घात करनेमें निमित्त होनेसे घातिया कर्म कहलाते हैं ।

दोषकी कारणरूपता व आवरणकी कार्यरूपताका वर्णन उक्त विवरण तो हुआ दोषको कार्यरूप बतानेका अब आवरणके कार्यत्वकी बात सुनिये । कि यह बताया गया कि इन इन कर्मोंके उदय होनेपर जीवमे इस इस प्रकारके दोष उत्पन्न होते हैं इस कथनमे यह सिद्ध हुआ कि जीवके दोष उत्पन्न होनेका कारण आवरण कर्म का उदय है । अब इस ही प्रकार यहाँ भी देखिये कि कर्म जो बँधते हैं वे भी जीवके दोषका निमित्त पाकर बँधते हैं, जैसे कि ज्ञान दर्शनके सम्बन्धमें प्रद्वेष जगे, ज्ञान दर्शन का कोई आच्छादन करे अथवा मात्सर्य निन्दा, तिरस्कार करे ज्ञान दर्शनमें विघ्न डाले, ज्ञानदर्शनके साधनभूत शास्त्र आदिकको छुपायें, मिटाये तो इस प्रकारके भावोंसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण जीवके साथ बँध जाते हैं । यहाँ बताया जा रहा कि जीवके दोषका निमित्त पाकर ज्ञानावरण आदिक कर्मोंका परिणमन होता है । केवली भगवान, विशुद्ध वस्तु स्वरूपका प्रतिपादक शास्त्र, निर्ग्रन्थ गुरुजनोंका सघ, दयामयी धर्म और देवगतिके जीव इनका अवर्णवाद करनेसे दर्शन मोहनीय कर्म बनता है, जीवके साथ बँधता है । किन-किन दोषोंसे दर्शन मोहनीयकर्म उत्पन्न होते हैं यह बात यहाँ कही जा रही है । भगवान अरहंत सकल परमात्मा परमौदारिक दिव्य देहमें विराजमान हैं उनके क्षुधा, तृषा, व्याधियाँ आदिक किसी भी प्रकारका दोष नहीं है, लेकिन कोई पुरुष, केवली भगवानका ऐसा स्वरूप कहने लगे कि वे तो आहार करते हैं, तो यह उनका अवर्णवाद है । अवर्णवाद कहते हैं उसे—जैसा वर्णन नहीं है स्वरूप नहीं है उस प्रकारसे बोलना, सो इस दोषके कारण दर्शनमोहनीय कर्म जीवके साथ बँधते हैं । शास्त्रोंमे संसारसे छुटकारा पानेका उपाय लिखा है लेकिन कोई यह कहे कि शास्त्रोंमे लिखा है कि पशु यज्ञ करो, पशु बलि दो, इस शास्त्रका अवर्णवाद करनेसे दर्शन मोहनीय कर्म जीवके साथ बँधते हैं । ये दर्शन मोहनीयकर्म वे हैं जिनके उदयमे जीवके मिथ्यात्वभाव जगता है, संसारके समस्त दुःखोंका कारण मिथ्यात्वभाव है निर्ग्रन्थ गुरुजनोंका, सघका अवर्णवाद करना - ये मलिन होते हैं । निर्लज्ज होते हैं आदिक रूपसे गुरुजनोका अवर्णवाद करनेसे दर्शन मोहनीयकर्मका जीवके साथ बंध होता है । देवगतिके जीव वैक्रियक शरीर वाले हैं । इनके हजारों वर्षोंमें कुछ थोड़ी सी क्षुधा जगती है और उनके ही कठसे अमृत झरता है, उनकी तृप्ति हो जाती है है । देवगतिके जीवोंका स्वरूप तो है इस प्रकार लेकिन यह कहना कि ये देव बलि चाहते हैं पशुकी बली देनेसे ये देव प्रसन्न होते हैं और वे देव उसका स्वाद लेते हैं यह उनका अवर्णवाद है । इस तरह केवली आदिक के विषयमे अवर्णवाद करनेसे दर्शन मोहनीयकर्मका आस्रव होता है, मोहनीयका दूसरा भेद है चारित्रमोह । जब जीव कषायके वेगमें आता है तो कषायके तीव्र उदयके परिणामसे चारित्र मोहनीयकर्म जीवके साथ बँध जाते हैं इसी प्रकार अन्तरायकर्म किस दोषसे बँधता है ? तो कोई जीव दूसरेके दान लाभ भोग उपभोग बल प्रकाशनमें विघ्न डाले तो उसके अन्तरायकर्म बँधते हैं । तो जैसे पहिले बताया गया था कि भिन्न- भिन्न कर्मोंके उदयसे जीवमें भिन्न-भिन्न प्रकारके दोष उत्पन्न होते हैं इसीप्रकार

यहाँ समझिये कि भिन्न-भिन्न प्रकारके कर्म जीवके साथ बँधते हैं। यह सब बतानेका प्रयोजन यह है कि दोष और आवरण दोनोंमें परस्पर कार्य कारण भाव है। आवरण के निमित्तसे दोष उत्पन्न होते हैं, दोषके निमित्तसे आवरणका निर्माण होता है। यों दोष और आवरणमें परस्पर कार्यकारण भाव दिखानेके लिये इस कारिकामें दोनो साध्य बताये गए हैं कि अज्ञानादिक दोषकी हानि किसी परम पुरुषमें सम्पूर्णतया होती है और आवरणकी हानि भी किसी परम पुरुषमें पूर्णतया होती है। इनका परस्परमें कार्यकारण भाव है।

दोष और आवरणमें परस्पर निमित्त नैमित्तिकभावका युक्ति द्वारा समर्थन—रागादि दोष व ज्ञानावरणादिकर्मका परस्पर 'निमित्तनैमित्तिक भावमें सम्बन्धमें विवरण स्वयं आगे एक स्वतन्त्र कारिकामें किया जायगा। यहाँ केवल इतना ही अवधारण करते हैं कि जीवमें जो रागादिक दोष होते हैं वे अपने उपादान और आवरणभूत कर्मके निमित्तसे होते हैं। इन दो बातोंमेंसे यदि किसी एकको न माना जाय तो कार्यव्यवस्था नहीं बन सकती। यदि यह कहा जाय कि केवल जीवके परिणामसे ही जीवमें दोष उत्पन्न होते हैं तो जीव तो सदा है, जीवका वह परिणाम भी सदा रहेगा। और वे रागादिक दोष भी सदा रहेंगे। उनका कभी क्षय न हो सकेगा, फिर मुक्ति कभी हो ही न सकेगी। यदि यह मान लिया जाय कि जीवके दोष ज्ञानावरणादिक कर्मके ही कारण होते हैं, उसमें स्व आत्माके हेतुपनेकी जरूरत नहीं है। तो जब किसी पुरुषकी भाँति कर्म स्वतन्त्र कार्यकर्ता हो गया, जैसे कि लोकमें किसी पुरुषको स्वतन्त्ररूपसे कार्यकर्ता निहारते हैं इस तरह ये कर्म जीवमें रागादिक दोषोंको उत्पन्न करने वाले हो गए तब तो मुक्त आत्माओंके भी वह दोष आ देगा, फिर मुक्त अवस्था ही क्या रही? तो कार्य व्यवस्था उपादान और निमित्त कारण दोनोंसे बनती है। जिसमें अन्तर यह है कि निमित्तभूत कारण तो दूर ही रहता है, उसका कार्यमें प्रवेश नहीं है, लेकिन उसके न होनेपर कार्य होता नहीं देखा गया अतएव वह निमित्तभूत है। उपादान कारण कार्यके समयमें भी रहता है। यों स्वपरपरिणाम-हेतुक अज्ञान आदिक दोष हैं, यह प्रमाणसे सिद्ध होता है।

पौद्‌गलिक ज्ञानावरणादि कर्मकी संसारहेतुताकी सिद्धि—यहाँ क्षणिकवादी शंका करते हैं कि अविद्या और तृष्णारूप दोष ही संसारका हेतु है। कोई पौद्‌गलिक आवरण कर्म संसारका कारण नहीं है, क्योंकि अनादिकालसे अविद्या और तृष्णाकी वासनासे इस चित्तका, आत्माका यह संसरण चल रहा है। तो जब पौद्‌गलिक आवरण कर्म संसारके कारण नहीं हैं तब केवल इस कारिकामें दोषकी ही बात कहनी चाहिये थी। पौद्‌गलिक आवरण संसारका हेतु हो नहीं सकता, क्योंकि पौद्‌गलिक मूर्तिमान कर्मके द्वारा अमूर्त चेतनपर आवरण नहीं लग सकता है, ऐसी शंका करते हुए उन क्षणिकवादियोंको समाधान दिया जाता है कि कारिकामें जो

आवरण शब्द ग्रहण किया है वह बिल्कुल युक्तिसगत है। पौद्गलिककर्म जो मूर्तिमान हैं वे जीवके ज्ञानादिक भावके आवरण बन सकते हैं। ये जीवके अज्ञाना दोषकी उपपत्तिमें निमित्त कारण हैं अत आवरण कर्म न माननेपर केवल अविद्या व तृष्णा रूप दोष ही ससारका हेतु है, ऐसा कथन निराकृत हो जाता है, देखो मद्य, शराब मूर्तिमान ही तो, उसके द्वारा अमूर्त चेतनका आवरण किया गया है यह तो प्रत्यक्ष ही देखा गया है। यह तो प्रत्यक्ष ही देखा जाता है कि कोई पुरुष मदिरा पी लेता है तो उसके सम्बधसे उस पुरुषको विभ्रम पैदा होता है। उसका ज्ञान भी भ्रम भरा होता है। अटपट बकता है। उसे होश नही रहता। तो देखिये! मूर्तिमान मदिराने उस पुरुषके ज्ञानपर आवरण कर दिया ना, इसी प्रकार मूर्तिमान पौद्गलिक ज्ञानावरण आदिक कर्मके निमित्तसे जीवके रागादिक दोष उत्पन्न होते हैं और वे ससारकी परम्परा बढाते हैं। यदि मूर्तमान पदार्थ चित्तका आवरण करनेमें समर्थ न हो तब तो मदिरा पीनेके बाद भी पुरुषके ज्ञानमें दोष न आना चाहिए।

मूर्तिमान पौद्गलिक कर्मके द्वारा चेतन गुणकी आवृतताकी सिद्धि— यहाँपर शकाकार कहता है कि कि मदिराके सम्बन्धमें तो बात यह है कि मदिरा आदिक पदार्थोंके द्वारा इन्द्रिय ही भ्रमकी गई है, चेतन आत्माका आवरण नहीं हुआ है, इसके समाधानमे कहते हैं कि यह बात असगत है। अच्छा बतलावो कि जिन इन्द्रियोंका मदिराके द्वारा आवरण मानते हैं वे इन्द्रियाँ क्या अचेतन हैं? इन्द्रियका अचेतन माननेपर मदिरा आदिकके द्वारा उसका आवरण होना सम्भव नहीं है, यदि अचेतन मदिरा अचेतन इन्द्रियका आवरण करे, विकार करे, तो वह मदिरा जिस बर्तनमे रखी है उससे तो घना सम्बन्ध है ना? मदिरा भी अचेतन है और वे थाली कटोरा बोतल आदिक भी अचेतन हैं यदि अचेतन मदिरा भी अचेतन इन्द्रियपर विकार करता है तो थाली, कटोरा, बोतल आदिक पदार्थोंमें भी विकार क्यों नहीं करता? तो जैसे अचेतन मदिरा अचेतन थाली, कटोरा, बोतल आदिकमें विभ्रम पैदा नहीं कर सकता है इसी प्रकार अचेतन मदिरा इन्द्रियपर भी आवरण नही कर सकता। जिस मदिराके द्वारा इन्द्रियाँ आवृत की गई, वे इन्द्रियाँ यदि चेतन हैं तो फिर यही बात तो सिद्ध हुई कि जो चेतन होता है निश्चयतः वह अमूर्त होता है। इन्द्रियाँ हैं चेतन तो साथ ही वे हो गयी अमूर्त तो मदिरा मूर्तिमानके द्वारा चेतन अमूर्तका ही आवरण सिद्ध हो गया। यही बात प्रकरणमें सिद्ध कर रहे थे। तो यह बात सिद्ध हो जाती है कि ज्ञानावरण आदिक पौद्गलिक कर्म हैं और वे ससारके कारणभूत हैं। तब दोष की हानिकी तरह आवरणकी हानि भी कहींपर विशेष रूपसे होती है अर्थात् दोष समाप्त होनेकी तरह आवरण भी कही समाप्त हो जाता है, तब दोष हानि कही समस्त है जैसे यह साध्य बताया इसी तरह आवरण हानि भी कही समस्त है यह भी साध्य बनता है। दोषसे भिन्न ज्ञानावरण आदिक मूर्तिमान कर्म प्रमाणसे सिद्ध हैं, रागादिक दोष ये तो चेतनके परिणमन हैं और ज्ञानावरण आदिक ये कार्माणस्कंध पौद्गलिक

परिणमन हैं। रागादि दोष चेतनकी परिणति है, है विभाव परिणति, और आवरण कर्म अचेतनकी परिणति है। ये दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, उन दोनोंके नष्ट होनेपर प्रभुता प्रकट होती है। सो इस कारिकामें जो साध्य बताया गया कि कहीं दोषकी हानि सम्पूर्णतया होती है व कहीं आवरणकी हानि सम्पूर्णतया होती है। इस तरह का साध्य बनाना बिल्कुल युक्तिसंगत है।

अतिशायन हेतु द्वारा लोष्ठादिमें दोष हानिकी निःशेषतासे सिद्ध साध्यताकी शंकापर विचार—अब यहाँ कोई शंका करता है कि आपके इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है कि जिसका अतिशायन है तो वह कहीं प्रकृष्ट रूपसे बन जाता है। दोषकी हानि हो रही तो यह हानि किसी परम पुरुषमें सम्पूर्णतया हो जाती है, इसी तरह आवरणकी हानि हो रही है तो यह आवरणकी हानि किसी जीवमें सम्पूर्णतया हो जाती है। ठीक है, और तब काष्ठ लोह पत्थर आदिकमें सम्पूर्णरूपसे दोषकी निवृत्ति और आवरणकी भी निवृत्ति है तो यह अनुमान तो बहुत अच्छा कहा, कहीं दोष नहीं है और आवरण नहीं है। सो पत्थर ढेला आदिकमें न दोष है, न आवरण है, दोनोंकी सम्पूर्णतया निवृत्ति है, इस कारण यहाँ सिद्धसाध्यता है। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा कहना बिना विचारे हुआ है, क्योंकि इस शंकाकारने साध्यका ज्ञान नहीं किया। इस अनुमानमें साध्य क्या कहा जा रहा है? इसपर दृष्टि नहीं दी। यहाँ साध्य है दोष और और आवरणका प्रध्वंसाभाव। अत्यन्ताभाव साध्य नहीं है। जैसे कि लोष्ठ, पत्थर आदिकमें दोष और आवरणका अत्यन्ताभाव है, है ही नहीं, न था न है, न होगा। तो ऐसा अत्यन्ताभाव यहाँ साध्य नहीं बनाया गया, किन्तु दोष और आवरणका प्रध्वंसाभाव साध्य बनाया गया है। प्रध्वंसाभावका यह अर्थ है कि ये दोष और आवरण लेकिन उनका ध्वंस किया गया। पहिले थे और फिर न रहे उसे प्रध्वंस कहते हैं। ऐसे प्रध्वंसके साथ जो अभाव हुआ है वह यहाँ साध्य है। अत्यन्ताभाव साध्य नहीं है, क्योंकि अत्यन्ताभावका साध्यपना अनिष्ट है, साध्य होता है इष्ट और अबाधित। जो वादीको इष्ट नहीं है वह साध्य हो ही नहीं सकता और इस तरह भी परख लीजिए कि यदि दोष और आवरणका अत्यन्ताभाव साध्य होवे तब तो आत्माकी सदा मुक्ति रहना चाहिये। क्योंकि वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे आवरणका, अचेतनका आत्मामें अत्यन्ताभाव है, एक द्रव्यमें दूसरे द्रव्यका त्रैकालिक अभाव है। कभी भी किसी द्रव्यमें किसी दूसरे द्रव्यका प्रवेश नहीं हो सकता। तब तो सो आत्माकी सदा ही मुक्ति कहलायगी। सो यहाँ अत्यन्ताभाव साध्य नहीं है, किन्तु दोषका और आवरणका प्रध्वंसाभाव ही साध्य है।

अतिशायन हेतु द्वारा दोषावरणके अत्यन्ताभावकी साध्यता न होने की तरह इतरेतराभावकी साध्यता न होनेका कथन—अभाव चार प्रकारके माने गए हैं—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव (इतरेतराभाव) और अत्यन्ता-

भाव। इन चार प्रकारके अभावोंमेसे इस अनुमानमे केवल प्रध्वसाभाव साध्य है। अज्ञान आदिक दोषोका और ज्ञानावरण आदिक कर्मोंका प्रध्वस हो जाना, प्रध्वस होकर अभाव होना यह यहाँ साध्यरूपसे माना गया है। जैसे यहाँ अत्यन्ताभाव साध्य नहीं हो सकता इसी तरह इतरेतराभाव भी यहाँ साध्य नही माना गया है। इतरेतराका अर्थ है कि एकमे दूसरेका न होना, एक दूसरे रूप नही होना आत्मा दोषावरणरूप नही है और दोषावरण आत्मा नहीं है, इस तरहका इतरेतराभाव इस अनुमानमें साध्य नहीं माना गया, क्योंकि इतरेतराभाव इस अनुमानमे साध्य नहीं माना गया ? क्योंकि इतरेतराभाव तो आत्मामे कर्म आदिककी अपेक्षासे प्रसिद्ध ही है। आत्मामें कर्म नही हैं। कर्मोंमे आत्मा नहीं है दोष और आवरण ये अनात्मस्वरूप हैं। ये आत्माके स्वरूप नही हैं। आवरण तो प्रकट पौद्गलिक अचेतन पदार्थका परिणमन है और दोष उन अचेतन आवरणोके निमित्तसे उत्पन्न हुआ विकार है, सो दोष आत्माका स्वरूप नही है। आत्मा दोषावरण स्वभाव वाला नहीं है। तो यह बात अपने आप सिद्ध है। उस इतरेतराभावको साध्य बनानेका अर्थ क्या हुआ और यदि यहाँ इतरेतराभावको साध्य बनाया जाय तो जैसा दोष अत्यन्ताभाव साध्य बनानेपर कहा गया है वही दोष यहाँपर भी घटित होता है। अब प्रागभावकी बात सुनिये। जिस प्रकार अत्यन्ताभाव और इतरेतराभाव साध्य नही है इस अनुमानमे उसी प्रकार प्रागभाव भी साध्य नहीं है। प्रागभाव कहते हैं पहिले अविद्यमान पर्यायोका स्वकारणसे भाव होनेको। सो यहाँ पहिले अविद्यमान दोष और आवरणका अपने कारणसे आत्मामें प्रादुर्भाव माना है। इस प्रागभावको यहाँ अतिशायन हेतु देकर साध्य नही बनाया जा रहा है। प्रकृत शकामे जो लोष्ठ पत्थर आदिकमे उपालम्भ दिया है, कि दोष आवरणकी नि शेष हानि (निवृत्ति) लोष्ठ आदिकमे पायी जा रही है सो यह सिद्धसाध्य है, ऐसा तो सारी दुनिया मान रही है। सो यह बात यहाँ साध्यरूपसे नही है। लोष्ठ आदिकमे दोष और आवरणका प्रध्वसाभाव नही है प्रध्वसाभावका लक्षण है—हो करके होना। पहिले कुछ पर्याय हो, उस पर्यायके होनेके बाद वहाँ दूसरी पर्याय होना वह है प्रध्वसाभाव। या सीधा यह समझिये कि जो पर्याय हो वह पर्याय न रहे, उसका नाम है प्रध्वसाभाव। सो लोष्ठ आदिकमे दोष और आवरणका अत्यन्ताभाव चल रहा है, वहाँ प्रध्वसाभाव नही है। लोष्ठमे पहिले तो रागादिक दोष हो, आवरण लगे हुए हो और फिर दोष आवरण हटें तो उसे प्रध्वसाभाव कहा जायगा। इस कारण दोष और आवरणको निवृत्तिसे लोष्ठ आदिकमे मानकर सिद्ध साध्यताका कथन करना युक्त नहीं है।

बुद्धिकी हानिका भी अतिशायन देखा जानेसे बुद्धिके परिक्षयका प्रसग होनेसे हेतुमें अनैकान्तिक दोष आनेकी आशङ्का— अब शकाकार कहता है कि इस अनुमानमे दोष और आवरणकी हानिका अतिशायन देखा जाता है। अर्थात् तारतमभावसे हीनाधिकता देखी जाती है और उससे फिर यह साध्य बनाया जा रहा

है कि दोष और आवरणकी हानि कहींपर पूर्णरूपसे है क्योंकि अनेक जीवोंमें दोषकी और आवरणकी हानि अधिकाधिकरूपसे देखा जा रही है। किसीमे दोष हानी जितनी है उससे अधिक दोष हानि दूसरेमे है। उससे अधिक किसी अन्य परम पुरुषमें है। तो जब दोषकी कमी विशेषता देखी जा रही है तो कोई पुरुष ऐसा है कि जहाँ दोषकी पूर्णतया हानि है और आवरणकी पूर्णतया हानि है। तो यहाँ आतिशयन हेतु देखकर दोष और आवरणकी हानि पूर्णतया सिद्ध की जा रही है सो करिये, परन्तु साथ ही साथ यह भी बात मान लीजिए कि किसीमे बुद्धिका भी पूर्णरूपसे क्षय हो जाता है। क्योंकि यह भी तो ससारी जीवोंमें देखा जा रहा है कि किसीमें जितना ज्ञान है उससे कम ज्ञान अन्य जीवमे है, उससे भी कम ज्ञान अन्य जीवमे है। तो जब यों ज्ञानकी हानिमे तारतमता, हानिकी अधिकता देखी जा रही है तो उससे यह भी सिद्धकर डाले कि किसी जीवमें बुद्धिका पूरा क्षय है और इस तरह मान लेनेमे फिर हेतु अनेकान्तिक दोषसे दूषित हो जाता है, क्योंकि ज्ञानका सर्वथा परिक्षय होना यह माना नहीं गया। बुद्धिका समस्तरूपसे अभाव होना यह तो विपक्षकी बात है और उसकी भी सिद्धि हो जाती है, तब आपका यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित हो जाता है।

बुद्धि परिक्षयवाले प्रसगकी आशंकाका समाधान—उक्त शकाके समाधान में कहते हैं कि यह कहना भी मालूम होता है कि अशिक्षित पुरुषके ही द्वारा कहा गया है। सर्वप्रथम बात यह है कि दोष और आवरण ये विकार विकाररूप हैं। विकारकी जहाँ हानि देखी जाती है वहाँ यह निर्णय होता है कि किसी जगह यह विकार सर्वथा भी नष्ट हो जाता है, किन्तु जहाँ स्वभावकी बात हो और उपाधि कारणवश उस स्वभावकी हानि देखी जा रही हो तो उससे यह निर्णय न किया जा सकेगा कि किसीमें यह स्वभाव बिल्कुल भी समाप्त हो जायगा। बुद्धि, ज्ञान यह है आत्माका स्वभाव। दोष और आवरणके कारण आत्माके ज्ञानमें कमी आ रही है। किसी जीवमें जितना ज्ञान है उससे कम अन्य जीवमें है, उससे कम अन्य जीवमें है। यहाँ तक कि कम होते होते सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य पर्याप्तक जीवका ज्ञान बहुत सूक्ष्मरूपसे रह गया है लेकिन ज्ञान जीवका स्वभाव होनेसे ऐसा कहीं भी नहीं हो सकता कि इस ज्ञानका सर्वथा अभाव बन जाय। तो अतिशायन हेतुसे विकार हानिकी निःशेषताकी सिद्धि होती है, स्वभाव हानिकी निःशेषताकी सिद्धि नहीं होती। मुख्य बात तो यह है और मोटेरूप अबसे बुद्धिकी हानि कहीं निःशेष होती है, यह समझना है तो इसे भी परख लीजिये।

पृथ्वी आदि चैतन्य गुणके सर्वथा निवृत्त होनेसे भी हेतुमे अनैकांतिक दोषका अनवसर—चैतन्य आदिक गुणोंकी व्यावृत्ति अर्थात् निवृत्ति, अभाव, प्रध्वंसाभाव सर्वरूपसे पृथ्वी आदिकके माना गया है। लोष्ठ, पत्थर, शरीर आदिकमें चेतना आदिक गुण रंच भी नहीं हैं। तो लो है ना, कोई ऐसा पदार्थ कि जहाँ बुद्धि

की पूर्णतया व्यावृत्ति हो। शंकाकार कहता है कि पृथ्वी आदिकमें समस्त रूपसे चैतन्य आदिक गुणोंका अत्यन्ताभाव है, फिर तो बुद्धिकी हानिमें अतिशयीपना पाया जा रहा है। किसीमें बुद्धि जितनी है उससे कम दूसरेमें है और उससे भी कम तीसरेमें है। तो बुद्धिकी हानिमें अतिशायिता पाई जाती है फिर भी सर्वात्मक रूपसे पृथ्वी आदिक पदार्थोंमें चैतन्य आदिक गुणोंका प्रध्वंसाभाव नहीं है। इस तरह अनेकान्तक दोष तो ज्योंका त्यों ही रहा। उत्तरमें कहते हैं कि यह भी बिना समझे बड़ी हुई बात कही गई है। पृथ्वी आदिक पुद्गलमें पृथ्वी कायिक आदिक जीव थे। जब पृथ्वी कायिक आदिक जीवोंके द्वारा पृथ्वी आदिक पुद्गल शरीररूपसे ग्रहण किए गए और फिर अपनी आयुकी क्षयसे वे पृथ्वी आदिक पुद्गल छूट गये अर्थात् पृथ्वी कायिक जीवोंका सद्भूत मरण हो गया और वे पृथ्वी आदिक शरीरोंको छोड़कर चल बसे तो अब जो शरीर पड़ा रहा उसमें चेतन आदिक गुणोंकी व्यावृत्ति सर्वरूपसे पाई जा रही है। और, वही प्रध्वंसाभावका रूप है। ऐसा तो माना ही गया है, उपदेशमें कहा भी है कि लोकमें ऐसा कोई पुद्गल नहीं है कि जो जीवोंके द्वारा बारबार भोग-भोग करके छोड़ा न गया है पृथ्वी आदिकमें चेतना आदिक गुणका अभाव प्रसिद्ध है अन्यथा याने चैतन्य आदिक गुणोंका सद्भाव होनेपर चैतन्य आदिकके अभावका अभाव बन जायगा, सो तो नहीं है। पृथ्वी आदिकमें चैतन्य आदिक गुणोंका बराबर अभाव है

अदृश्यानुपलम्भसे अभावकी असिद्धिका निश्चय माननेकी अयुक्तता—उक्त समाधानपर शंकाकार कहता है कि यह तो अदृश्यानुपलम्भकी बात है अर्थात् वह चेतनागुण, बुद्धिगुण अदृश्य है। किसी भी इन्द्रियके द्वारा ग्रहणमें नहीं आ रहा। तो अदृश्यका यदि अनुपलम्भ है अदृश्य चीज मिल नहीं रही है तो इससे कहीं उसका अभाव सिद्ध न हो जायगा। अभाव सिद्ध हुआ करता है, दृश्य पदार्थोंका अनुपलम्भ होनेसे जो दृश्य हैं और फिर वे न पाये जायें तो उनका अभाव मानना चाहिए, पर चेतन तो अदृश्य तत्त्व है। वह न पाया जाय तो इससे उसका अभाव न बन जायगा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि इस बहर अदृश्यके अनुपलम्भ होने मात्रसे अभावकी सिद्धि मानेंगे तो दूसरोंके चेतनकी निवृत्तिमें भी शंका आ पड़ेगी। जैसे कोई रोगी पुरुष मर गया है तो उसका अर्थ यही है ना, कि इस शरीरसे चेतन निकल गया। अब चेतन है अदृश्य और अदृश्यके न पाये जानेसे उसके अभावको असिद्ध कर रहे हो, तो मरे हुए पुरुषमें भी यह शंका रहेगी कि इसमें जीव है या नहीं? इसमें जीव नहीं है ऐसा जो लोग दृढ़ताका निर्णय रखते हैं वह निर्णय न बन सकेगा। तो चेतनके निवृत्तिकी शंका हो जानेसे फिर जो उस मृतक शरीरका लोग संस्कार करते हैं, अग्निमें दाह करते हैं तो जितने लोग संस्कार करने वाले हैं वे सब पातकी बन बैठेंगे, क्योंकि अदृश्यानुपलम्भसे अभावकी असिद्धि ही मानते हो। उस मृतक शरीरमें चेतना नहीं है इसका निर्णय तो अब हुआ नहीं, हो भी सके, न भी हो सके। अभावका निश्चय न रहा। फिर ऐसे मृतक शरीरको आगमें जला देने वाले लोग पापी बन

बैठेंगे। इससे अदृश्यके अनुपलम्भ होनेसे अभावकी असिद्धि बताना युक्त नहीं है, और बहुत करके यह सब देखा ही जा रहा है कि जो रोगादिक अप्रत्यक्ष हैं उनकी भी निवृत्तिका निर्णय होता है। जैसे रोगीके शरीरमें क्या रखा है उसका प्रत्यक्ष तो नहीं है। भले ही किसी चेष्टासे अनुमान किया जाय पर रोगका प्रत्यक्ष नहीं होता। किसी को शिर दर्दकी वेदना है तो क्या वेदना किसीको दिख रहा है? अथवा किसीका दर्द नजर आता है क्या? तो राग अप्रत्यक्ष है, फिर भी अब इसके सिर दर्द नहीं रहा, अब इसके तकलीफ नहीं है। इस प्रकारका निर्णय दूसरे लोग करने ही लगते हैं। इस कारण यह कहना कि चेतन अदृश्य है, उसकी अनुपलब्धिसे अभावकी सिद्धि नहीं की जा सकती, यह कथन असंगत है।

पृथिव्यादिमे अदृश्य चेतनके अनुपलम्भसे चेतनादिके अभावकी सिद्धि न होनेका प्रतिपादन करने वाले शंकाकार द्वारा अपनी शंकाका पोषण—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि व्यापर, वचनालाप, आकार विशेषकी व्यावृत्तिके संकेतसे लोग जान जाते हैं कि इसमें चैतन्य नहीं रहा और इसी संकेतसे लोग विवेचन करते हैं कि यह चैतन्यरहित हो गया, अतः देहसंस्कर्ताओंको नमका पातक नहीं लगता। पूर्व शंका के समाधानमें जो यह कहा गया कि अप्रत्यक्ष होकर भी रोग आदिककी निवृत्तिका निर्णय हुआ करता है सो वात वहाँ भी यह है कि इन रोगादिकोंकी निवृत्ति यद्यपि अप्रत्यक्ष है फिर भी उसमें रोगादि निवृत्तिसूचक संकेत पाये जाते हैं जैसे कि साफ शुद्ध आवाज निकलना, देहका स्फुरित होना आदि उनसे रोगादिक निवृत्तिका निर्णय है इसी तरह जिस पुरुषमें चैतन्य न रहा, याने जो मृतक हो गया तो कैसे जान लिया कि इसमें चैतन्यका अभाव हुआ है? चैतन्यके सद्भावमें जैसा व्यवहार व आकारविशेष रहता है वैसा व्यापार न निरखकर वचनालाप न देखकर और कान्तिमान आकारविशेष न समझकर जान लिया जाता है कि इसमें चैतन्यका अभाव हुआ है। अनुमान प्रयोग भी इस हीका समर्थन करता है। इस मृतक शरीरमें चैतन्य नहीं है, क्योंकि व्यापार वचनालाप व आकार विशेषकी अनुपलब्धि होनेसे। तो यहाँ कार्य विशेषकी अनुपलब्धि बताया है, वह कारण विशेषके अभावका अविनाभावी है। जहाँ कार्य विशेष नहीं पाया जाता वहाँ उसका कारण विशेष भी नहीं पाया जाता। जैसे कि चंदन वाले धूम की अनुपलब्धि चंदन वाले धूमको उत्पन्न करनेमें समर्थ चन्दन वाली अग्निके अभावका सूचक है। चंदनकी आगमें जिस तरहका धुवाँ निकलता है उस प्रकारका धूम न पाया जाय तो उससे यह सिद्ध होता कि यहाँ चन्दन वाली अग्नि नहीं है। और, भी दृष्टान्त में सुनो! इस प्राणीमें रोग नहीं है क्योंकि स्पर्श आदिक विशेषकी अनुपलब्धि है। किसी पुरुषको ज्वरका रोग था, पश्चात् ज्वर रोग मिटनेपर सभीका यह निर्णय हो जाता है कि इसके अब रोग नहीं रहा। तो यह निर्णय किस बलपर होता है कि ज्वर में जैसे स्पर्श आदिक अब नहीं पाये जा रहे हैं तो कार्य विशेषकी अनुपलब्धिसे कारण विशेषका अभाव निर्णीत हो जाता है। तथा और भी दृष्टान्त देखिये! जैसे किसी पुरुष

किसी भूतग्रहकी बाधा रहती हो और जब न रहती हो तब वह साफ व्यवहार, व काय करता है तो उस समय यह अनुमान बनता है कि अब यहाँ भूतग्रह आदिक नहीं है क्योंकि चेष्टा विशेषकी अनुपलब्धि है। समीचीन वैद्यशास्त्र भूत तंत्र आदिकके जो सकेत हैं उस सकेतसे जिसका रोग आदिक काय विशेषका अभ्यास बन चुका है ऐसे पुरुषोको उसके विवेककी उत्पत्ति होती ही है। अर्थात् रोग है अब नहीं है इसमे भूत ग्रह आदिक है अब नहीं हैं, यह सब निःसन्देह निर्णय हो जाता है। तो इस तरहसे जब पृथ्वी आदिकमे मनुष्य देहमे जब चैतन्य नहीं रहता है तो स्पष्ट समझमें आता है कि अब यहाँ चैतन्य नहीं रहा। तब किसी मृत मानव शरीरको जलानेमे दाहसंस्कार करने वालेको उस मानवीय आत्माको हिंसाका पाप नहीं लगता है वह आत्मा वहाँ है, हो नहीं। तब फिर परचैतन्य निवृत्तिमे सदेह बताकर दाहसंस्कार करने वालेको पाप लगेगा ऐसा प्रसग देकर जो अदृश्यानुपलम्भसे अभावको असिद्ध करनेमें बाधा डाल रहे हो वह बाधा युक्त नहीं है।

चैतन्यके अदृश्य होनेपर भी व्यापारादि विशेषकी अनुपलब्धि होनेसे मृत कायमे चेतनके अभावके निर्णयका-प्रतिपादन करते हुए उक्त शकाका समाधान। उक्त शकाकार अब समाधान करते हैं कि जो कुछ अभी कहा है वह बात तो पृथ्वी आदिकमें भी सवरूपसे चेतना आदिक गुणोकी व्यावृत्ति माननेमे समान है। कहा जा सकता है कि इन राख आदिमें या पृथ्वी लोष्टमे पृथ्वी चेतनादि गुण नहीं है। जैसे ऊपर निकले दुढ़कते हुए पत्थरके सम्बन्धमे यह निर्णय है कि इस पत्थरमे जो कि पृथ्वीकाय है इसमे जीव तो था और उस पृथ्वीकायिक जीवके सम्बन्धसे उस लोष्ट पृथ्वीका बढावा चल रहा था, लेकिन अब नहीं है, यह बात बिल्कुल निर्णीत होती है। उसका अनुमान प्रयोग है कि भस्म आदिकमें पृथ्वी चेतनादि गुण नहीं है, क्योंकि व्यापार, व्यवहार आकार विशेष उस तरहका रहा नहीं। यो सकेतके वशसे सिद्धान्तको समझने वाले लोग बराबर ऐसा विवेचन कर सकते हैं। अब यहाँ मीमासक शका करते हैं कि व्यापार व्यवहार आदिक विशेषकी अनुपलब्धिसे यद्यपि कहीं व्यापार व्यवहार आदिक उत्पन्न करनेमे समर्थ चेतन आदिक गुणकी व्यावृत्ति सिद्ध हो जाती है, तिसपर भी कहीं उस व्यापार आदिकको जाननेमे असमर्थ चेतनादिककी व्यावृत्ति असिद्ध होनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि सर्वरूपसे वहाँ चेतनकी व्यावृत्ति हुई है। समाधानमे कहते है कि यह बात युक्त नहीं है, क्योंकि प्राणियोमें व्यापार आदिक समस्त कार्यों को उत्पन्न करनेमे असमर्थ चेतनका असम्भवपना है, अर्थात् चेतन हो और उस चेतनके सद्भावका सूचक व्यापार आकार विशेष न पाया जाय यह बात नहीं बन सकती। यदि ऐसा हो कि व्यापारादिक समस्त कार्योंको उत्पन्न करनेमें असमर्थ चेतन हो तो वहाँ यह कहा जायगा कि यह शरीरी (देहवाला प्राणी) ही नहीं है मुक्त आत्माकी तरह। जैसे मुक्त आत्मा सिद्ध भगवानके व्यापार व्यवहार आदिक नहीं हैं तो वह शरीरी तो नहीं, शरीररहित है, केवल आत्मा ही आत्मा है। इससे यह बात सि-

कार्यविशेषकी अनुपलब्धि होनेसे सर्वरूपसे पृथ्वी आदिकमें चेतन आदिक गुणकी व्यावृत्ति हो है। जैसे कि मृत शरीरमें पर संस्पर्श व्यापारादिककी निवृत्ति निर्णीत है ना इसी तरह व्यापारादि कार्यविशेष न पाये जानेसे यह सिद्ध हो ही जाता है कि इस पृथिवी आदिकमें सर्वरूपसे चेतनादिक गुणकी व्यावृत्त है।

अदृश्यानुपलम्भ अभावकी असिद्धिका नियम बनानेमें शंकाकारके मतव्योंमें विडम्बना —यदि यह बात आप (मीमांसक) सब जगह मान लेंगे कि हम अदृश्यानुपलम्भसे सर्वरूपसे चेतनादि गुणकी निवृत्ति सिद्ध नहीं होती तो इस तरह यदि मानते हैं तो अब इस समय यहाँ राम, रावण वेदके कर्ता आदिक पुरुषका अनुपलम्भ है और यह है अदृश्यका अनुपलम्भ। तो देश काल और स्वभावकी अपेक्षा दूरवर्ती पुरुषोंका अभाव सिद्ध हो जायगा और यह प्रसंग मीमांसकोंके विरुद्ध हो जायगा और तब देखिये! इस तरह अदृश्यके अनुपलम्भसे अभावकी सिद्धि न मानने पर तो व्याप्ति भी सिद्ध नहीं हो सकती। कोई अनुमान बनाया गया जैसे कि शब्द अनित्य है कृतक होनेसे। जो जो कृतक होता है वे वे अनित्य होते हैं। तो ऐसी व्याप्ति बनानेमें विश्वभरके सारे कृतक और सारे अनित्य पदार्थ सामान्यतया ज्ञानमें लेने पड़े हैं ना, तो विश्वभरके सारे कृतक और अनित्य पदार्थ कहाँ दृश्य हो रहे हैं? और, जब वे दृश्य नहीं हो रहे तो उनकी व्यतिरेक व्याप्ति नहीं बनाई जा सकती। और जैसे इस पर्वतमें अग्नि है धूम होनेसे, इस अनुमानमें जो व्याप्ति बनाई जा रही है कि जहाँ जहाँ धूम होता है वहाँ वहाँ अग्नि होती है। तो सारे धूम और सारी अग्निका सामान्यरूपसे यहाँ बोध किया जा रहा है। लेकिन देखा कहाँ सारे धूमोंको और विश्वभरकी अग्निको। तो उसकी भी व्यतिरेक व्याप्ति ही सिद्ध न हो सकेगी। क्योंकि इस अनुमान प्रयोगमें जब व्यतिरेक व्याप्ति लगाई जाती है कि जो जो अनित्य नहीं होता वह कृतक नहीं होता या जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ धूम भी नहीं होता, तो सारे विश्वको अनित्य कृतक अग्नि धूम ये कहाँ उपलब्ध हैं? वे सब अदृश्य हैं और अनुपलम्भके अभावकी सिद्धि करनेमें समर्थ माना नहीं। फिर साध्यके अभावमें साधनका अभाव बताकर व्यतिरेक व्याप्ति जो बनाई जाती है वह बन ही न सकेगी। तब तो कोई भी हेतु नहीं बन सकता है। बौद्ध सिद्धान्तमें अदृश्यानुपलम्भसे अभाव सिद्ध नहीं है तब परस्पर न छूने वाले परमाणुओंका विकल्प बुद्धिमें ही प्रतिभास नहीं हो रहा है तो उनके अभावकी असिद्धि हो जायगी, माने असस्पृष्ट परमाणुओंका अभाव सिद्ध नहीं होगा। किसी भी साध्यके लिए कुछ भी हेतु बना किसी भी हेतुकी सिद्धि नहीं हो सकती। तो इस तरह मीमांसकोंका यह सिद्धान्त उनके ही सिद्धान्तका विरोधक हो गया। अदृश्यानुपलम्भसे अभावकी असिद्धिका सिद्धान्त माननेमें अनुमानका उच्छेद हो जाता है। देखिये! मीमांसक मतका अनुसरण करने वाले पुरुष दूरवर्ती पदार्थोंके अभाव की असिद्धि नहीं मानते। वे भी विप्रकर्षी पदार्थोंके अभावकी सिद्धि समझ रहे हैं, अन्यथा वेदमें अकर्ताके अभावकी सिद्धिका प्रसंग हो जायगा, वेदमें सकर्तृपन सिद्ध

हो जायगा अर्थात् उसका कर्तृत्व सिद्ध हो जायगा और सर्वज्ञ आदिकके अभावका साधन करने वाले वचनोंका विरोध हो जायगा सो वे मीमांसक यों अदृश्यानुपलम्भ होनेपर कर्ताके अभावकी सिद्धिको मानते हुए अब कहाँ मीमांसक रहे ? यह इनका निजी प्रतिपादन नहीं है। अनुमानका उच्छेद हो जाना इसमे दुर्निवार है अर्थात् अनुमान नष्ट हो जायगा। उसका किसी भी प्रकार निवारण नहीं किया जा सकता, क्यों कि साध्य और साधनमें व्याप्ति ही सिद्ध नहीं होती।

तर्कनामक प्रमाण न माननेपर अनुमानके उच्छेदका प्रसग - देखिये ! कोई भी प्रमाणवादी तर्क नामक प्रमाणको नहीं मान रहे हैं एक जैन शासनमें ही तर्क नामक प्रमाणकी व्यवस्था बताया गई है, जो एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण मानते वे तो अनुमान तक आदिक अन्य कुछ मानते ही नहीं। जो प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण मानते, उन्होंने भी तर्क माना नहीं। जो ६ प्रमाण तक भी मानते हैं ऐसे मीमांसक जनोंने भी तर्क नामका कोई प्रमाण नहीं माना। और, जब तर्क प्रमाण नहीं रहता तो व्याप्ति सिद्ध न होनेसे अनुमान भी नहीं बनाया जा सकता। और, जहाँ अनुमान ही न बन सका वहाँ कुछ सिद्ध ही नहीं किया जा सकता। जो लोग अनुमान को नहीं मानते, केवल प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं, या प्रत्यक्षको भी नहीं मानते, केवल शून्यवाद ही मानते उनको भी अपना मतव्य सिद्ध करनेके लिए प्रमाण देना ही पडेगा, और फिर जो प्रमाण देंगे उससे ही अनुमानकी सिद्धि बनती है। तो अनुमान बिना कोई अपने सिद्धान्तको सिद्ध भी नहीं कर सकता और तर्क बिना अनुमानकी सिद्धि नहीं होती। अत तर्क नामका प्रमाण मानना तो अति आवश्यक है, लेकिन अदृश्यानुपलम्भसे अभावकी असिद्धि कहने वाला पुरुष व्याप्तिको मान ही नहीं रहा। तब फिर अनुमानका उच्छेद दुर्निवार हो गया।

परोगममात्रसे सिद्ध तर्कसे व्याप्ति व्यवस्था बनाकर अनुमान सिद्धि करनेमे आपत्ति यहाँ शकाकार कहता है कि हम लोग तर्कनामक प्रमाणको नहीं मानते तो न सही लेकिन दूसरे लोग तो मानते हैं। जैन शासनने तो माना है, उनके माने गए तर्क प्रमाणसे व्याप्तिकी सिद्धि कर लेगें तब अनुमानका उच्छेद न हो सकेगा। इस शकाके समाधानमे कहते है कि यह बात सगत नहीं हैं, क्योंकि यहाँ व्याप्तिकी सिद्धि मानते हैं परोपगमसे, तो वह परोपगम भी कैसे सिद्ध है ? उसको भी ये कहेंगे कि परोपगमसे सिद्ध होगा। तो इस तरह अनवस्था दोष आ जायगा। व्याप्तिको सिद्ध करनेके लिए यदि परोपगमका माध्यम लेते हो तो उस पद्धतिमें अनवस्था दोष आयगा। यदि कहो कि परोपगम अनुमानसे सिद्ध हो जायगा तो इसमें अन्योन्याश्रय दोष आ जायगा। किस प्रकार ? कि जब अनुमान प्रसिद्ध बने तब तो उससे परोपगमकी सिद्धि होगी और जब परोपगमकी सिद्धि बने तो उससे व्याप्तिकी सिद्धि होगी, तब अनुमान की सिद्धि बनेगी। तो जब व्याप्ति सिद्ध न हो सकी तो कोई अनुमान भी न बन

सकेगा इस कारणसे यह प्रतिपादन श्रेयस्कर नहीं है कि सर्वात्मक रूपसे चेतना आदि गुणोंकी निवृत्ति पृथ्वी आदिकमें सिद्ध नहीं होती।

रागादि हानिका अतिशायन देखा जानेसे किसी आत्मामें रागादि परिक्षयके निर्णयके कथनकी अकलङ्कता—देखो भैया ! पृथ्वी आदिकमें व्यापार आकारनिवृत्ति सर्वात्मकरूपसे चैतन्य आदिक गुणोंकी निवृत्ति सिद्ध होती ही है। जैसे कभी आपने किसी चूहा आदिक मरे जीवको देखा तो वहाँ हर एक कोई यह समझ जाता है कि अब इस शरीरमें जीव न रहा तो इस तरह मृत शरीरमें चैतन्य आदिक गुणकी व्यावृत्ति प्रसिद्ध हो गई तब बुद्धिहानिसे हेतुका व्यभिचार देना ठीक न रहा, क्योंकि बुद्धिहानि भी अब सपक्ष बन गयी। इस प्रसंगका मूल कथन यह है कि जब यह कहा गया कि जितनी हानिमें तारतमता देखी जाती है उसकी कहीं सम्पूर्ण तया हानि भी सिद्ध होती है। रागादिक दोषोंकी हानि अनेक जीवोंमें तारतमरूपसे देखी जाती है तो उससे सिद्ध होता है कि किसी पुरुषमें रागादिककी हानि पूर्णतया भी है। इस बातपर शंकाकारने हेतुमें यह व्यभिचार दोष दिया था कि बताओ बुद्धिकी हानिमें भी तो तारतमता देखी जाती है। किसीमें बुद्धि कम है किसीमें उससे भी अधिक कम है, तो इस कमीके देखनेसे फिर यह भी कहना पड़ेगा कि किसीमें बुद्धि बिल्कुल नहीं है। तो इनके उत्तर दो प्रकारसे दिए गए हैं एक तो यह कि विकारकी हानिके सम्बन्धमें ही यह अनुमान बनाया गया। जो उपाधिके सन्निधानमें विकाररूप भाव है उसकी हानि होनेपर हानिकी तारतमता देखी जानेपर सिद्ध होता है कि किसी जगह ये विकार बिल्कुल भी नहीं हैं। दूसरा उत्तर यह दिया गया है कि जो मृत शरीर हैं उनमें बुद्धिकी हानि सम्पूर्णरूपसे है, इसलिये यह सपक्ष बन जाता है हेतुमें फिर दोष नहीं आता। और इस तरह यह व्याप्ति बन गई कि जिसकी हानि अतिशय वाली देखी जाती है अर्थात् अधिकाधिक रूपसे देखी जाती है, उसकी कहींपर सर्वरूप से व्यावृत्ति हो जाती है। जैसे बुद्धि आदिक गुण निर्जीव पत्थर आदिकमें बिल्कुल भी नहीं रहे, सो सर्वरूपसे बुद्धि आदिक गुणका अभाव हो गया तो इसी प्रकार रागादिक दोषकी हानि अतिशयवाली देखी गई है। कहीं दोषकी हानि जितनी है उससे अधिक कहीं औरमें पाई जाती है। किसीमें और अधिक हानि है। तो यों होते-होते कोई पुरुष ऐसा भी है कि जहाँ दोष आदिककी हानि पूर्णरूपसे है तब उस अकलंक वचनकी व प्रभुकी सिद्धि कैसे न बनेगी ? याने इस कारिकाका कथन निर्दोष है।

रागादि हानि होते होते कहीं रागादिके पूर्ण क्षयकी साध्यता—मुख्य रूपसे तो यहाँ अनुमानमें यह समझना चाहिए कि यहाँ साध्य बनाया गया है रागादि दोषोंका प्रध्वंसाभाव। रागादि दोष हुए हैं फिर उनका प्रध्वंस हुआ, इस तरहसे अभाव हुआ, वह यहाँ साध्य है। जो पुद्गल जीवरहित पदार्थ हैं उनमें रागादिककी निवृत्ति होनेको साध्य नहीं कहा जा रहा। सिद्ध तो करना है जीवमें। जीवमें राग-

दिक दोष होते हैं तो रागादिक दोष जहाँ कभी हो ही नहीं वहाँ प्रध्वंस नहीं होता, ऐसे रागादिक रहित आत्माको आप्त सिद्ध किया जा रहा है। तब यह विधान पूर्णतया युक्तिसंगत हुआ कि दोष और आवरणकी हानि किसी परम पुरुषमें निःशेषरूपसे होती है, क्योंकि यह हानि अतिशय वाली देखी गई है। गुणस्थानके अनुसार जब तक सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता तब तक तो दोष और आवरणकी हानिके सम्बन्धमें कुछ कहा ही नहीं जाता। सम्यग्दर्शन होनेके बाद जैसे चारित्रगुणके स्थान बढ़ते जाते हैं उसी प्रकार रागादिक दोषकी हानि भी बढ़ती जाती है। जैसे चतुर्थ गुणस्थानसे पञ्चम गुणस्थानमें रागादिक हानि विशेष है। चतुर्थ गुणस्थानमें अविरत सम्यग्दृष्टि था अब पञ्चम गुणस्थानमें अणुव्रती सम्यग्दृष्टि हुआ। एकदेश संयम होनेसे रागादिक कम हो गए फिर छठे सातवें गुणस्थानमें महाव्रत हो जाता है। वहाँ प्रत्याख्यानावरण कषायजनित राग भी नहीं रहता। श्रेणियोंमें और भी राग कम हो जाता और यों होते-होते १०वें गुणस्थानमें रागका मूल भी नहीं रहता। तो रागकी निःशेष हानि यहाँ हुई और ज्ञानके आवरण करने वाले ज्ञानावरण कर्मकी निःशेष हानि १२वें गुणस्थानके अन्तमें हुई। १३वें गुणस्थानमें सकल परमात्मा रागादिक दोषोंसे रहित ज्ञानगुणसे पूर्ण सम्पन्न हो जाता है। उन्हीं सकल परमात्माको आप्त कहते हैं। इनके प्रणीत वचनोंमें, आगममें परस्पर कहीं विरोध नहीं पाया जाता है इस कारण ये अरहंत परमात्मा ही आप्त हैं। उनकी सिद्धिके लिए यहाँ सामान्यरूपसे आप्तपने की सिद्धि की जा रही है कि कोई होता है परम पुरुष ऐसा कि जिसके दोष और आवरणकी पूर्णरूपसे हानि होती है।

आवरणहानिकी कर्मत्वपर्याय व्यावृत्तिलक्षणरूपता—अब यहाँ कोई तटस्थ पुरुष शंका करता है कि यदि प्रध्वंसाभावका नाम हानि है अर्थात् कुछ होकर फिर कुछ अन्यका नाम हानि कहते हो तो ऐसी हानि पौद्‌गलिक ज्ञानावरण कर्म द्रव्यके सम्भव ही नहीं है, क्योंकि द्रव्य नित्य हुआ करता है और उस कर्म द्रव्यकी पर्यायकी हानि भी हो जाय तो भी किसी कारणसे फिर कर्म पर्यायकी उत्पत्ति हो जाती है, क्योंकि यह एक पौद्‌गलिक द्रव्य है ना। अभी कर्मपर्यायमें थे अब नहीं रहे ऐसी पर्याय मिट जाय तो भी कुछ कालके बाद उसमें कर्मपर्याय आ सकती सब समस्त रूपसे हानि तो नहीं हुई। यदि समस्त रूपसे कर्म पर्यायकी हानि हो जाय तो कर्मद्रव्यकी भी हानि होनेका प्रसंग है। समस्त रूपमें कर्मपर्याय त्रिकाल न रहे तो कर्मद्रव्य भी फिर कुछ न रहेगा क्योंकि द्रव्य पर्यायोंका अविनाभावी है। जब उसमें कोई पर्याय न रही तो द्रव्य ही क्या रहा? और, इस तरह जैसे कर्मद्रव्यकी बात कही जा रही है वहाँ यदि निरन्वय विनाश मान लेते हैं तो निरन्वय विनाश फिर आत्माका भी मान लिया जायगा। आत्मामें भी पर्यायें होती हैं और उन पर्यायोंका हो जाय विनाश तो आत्मा द्रव्य ही क्या रहा? इस प्रकार शंका करने वालेके प्रति समाधान करते हैं कि शंकाकारने अभी सिद्धान्तका ठीक परिज्ञान नहीं किया है क्योंकि क्षय, प्रध्वंसाभाव, हानि

का अर्थ यहां व्यावृत्तिरूप किया है। जैसे कि मणिसे, रत्नसे मल आदिककी निवृत्ति हो जाय तो यह कहलाता है रत्नके मलकी हानि, क्योंकि जो पदार्थ सत् है उसका अत्यन्त विनाश कभी नहीं हो सकता। इसी प्रकार आत्मामें कर्म बँधे हुए थे उन कर्मोंकी निवृत्ति हो गई तो इसके मायने यह हुआ कि आत्माकी भी शुद्धि हो गई। तो आत्मामेंसे कर्मोंके व्यावृत्त हो जानेका नाम यहाँ आवरणका क्षय है। यहांपर प्रध्वंसाभावरूप क्षयको हानि कहा गया है और वह हानि व्यावृत्तिरूप ही है। आत्मामें आवरणकी हानि हो गई इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि आत्मामेंसे आवरण निकल गए। अब वे कर्मद्रव्य हैं निकलकर कहीं भी पुन: कर्मरूप पर्यायको प्राप्त हो जायें, हाँ, लेकिन इस आत्मामें कर्मरूप पर्यायको लाकर बाँध नहीं सकते। तो यह प्रध्वंसाभावरूप हानि व्यावृत्तिरूप ही है। जैसे स्वर्ण पाषाणसे मलकिट्ट आदिककी निवृत्ति हो जाय तो यह कहलायगा स्वर्णकी शुद्धि, पर किट्ट आदिकका अत्यन्त विनाश नहीं होता। उसे निकाल कर फेंक दिया। अब जिन अणुस्कंधोंसे उसका निर्माण है वे तो रहेगा ही उनका अत्यन्त अभाव नहीं बनता।

वस्तुके द्रव्यत्वरूपसे ध्रौव्य होनेपर पर्यायरूपसे प्रध्वंसके कथनकी युक्तता—यदि अत्यन्त विनाशका नाम प्रध्वंसभाव कहोगे तो यह बतलावो कि वह अत्यन्त विनाश द्रव्यका होता है या पर्यायका। द्रव्यका तो कह नहीं सकते क्योंकि द्रव्य शाश्वत नित्य है पर्यायका भी अत्यन्त विनाश नहीं कह सकते क्योंकि पदार्थ द्रव्यरूपसे ध्रौव्य रहता ही है, इस विषयमें इस तरह अनुमान प्रयोग किया गया है कि विवादापन्न मणि आदिकमें मल आदिक पर्यायार्थिक दृष्टिसे विनश्वर हैं तो भी द्रव्यार्थिक-दृष्टिसे वे ध्रुव हैं, अन्यथा उनका सत्त्व नहीं रह सकता है। यदि ध्रौव्य न माना जाय तो फिर सत्ता ही क्या रही ? फिर किसमें पर्यायकी बात कही जाय? पर्यायका उत्पाद होना, व्यय होना यह तो किसी आधारमें ही कहा जायगा। और, यह जो आधार है वह ध्रुव है और द्रव्यार्थिक नयसे परिज्ञात होता है। इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है कि अन्यथा सत्त्वानुत्पत्ति है इस हेतुका शब्दके साथ व्यभिचार नहीं बता सकते। यदि शंकाकार यह मनमें शका रखे कि देखो शब्दमें पर्याय नष्ट हो जाती है और फिर उसका द्रव्य ही नहीं रहता है सो ऐसी बात नहीं है। शब्द पर्यायके नष्ट होनेपर भी शब्दवर्गणाको द्रव्यरूपसे ध्रौव्य माना ही गया है। वे शब्द वर्गणायें इस समयमें शब्द-रूप व्यक्त नहीं हैं लेकिन वे अणुस्कंध जिनका परिणमन शब्द पर्याय हुई है वे बराबर स्कंध मौजूद हैं इस कारण अन्यथा सत्त्व नहीं हो सकता, इस हेतुमें व्यभिचार नहीं आता। शंकाकार कहता है कि बिजली और दीपक आदिकके साथ इस हेतुका अनैकान्तिकता स्पष्ट ही है। बिजली चमकी कि चमकनेके बाद बिजलीका नाम निशान भी नहीं रहता। दीपक बुझ जाता है तो उसके बुझनेके बाद दीपकका नाम निशान भी नहीं रहता, तब तो उक्त अनुमानमें दिए गए हेतुमें अनैकान्तिक दोष आता ही है। समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी अयुक्त है। बिजली दीपक आदिकके स्कंध भी

द्रव्य होनेके कारण ध्रुव हैं। जिन पौद्गलिक स्कंधोंका इस समय बिजलीरूप परिणमन हुआ, बिजली रूप परिणमन मिट जानेके बाद उनका अन्यरूप परिणमन है। अंधकाररूप परिणमन है, पर जिनमें विद्युत् परिणमन हुआ है वे स्कंध कहीं नष्ट नहीं हो गए। इसी प्रकार जिन परमाणुस्कंधोंका दीपकरूपमें परिणमन हुआ है, दीपकके बुझ जानेपर उन स्कंधोंका विनाश नहीं होता। वह अंधकार पर्यायको लिए हुए स्कंध फिर भी मौजूद हैं और यह सम्भव है कि उन स्कंधोंका फिरसे दीपकरूप परिणमन हो सके। विद्युत्रूप परिणमन हो सकेगा। तो पदार्थ किसी पर्यायरूपसे नष्ट होते हैं फिर भी सर्वथा नष्ट नहीं होते। यदि पदार्थोंके क्षणिकपनेका एकान्त मान लिया जाय कि प्रत्येक पदार्थ क्षण क्षणमें नष्ट होते, दूसरे क्षणमें उस पदार्थका कुछ नहीं रहता तो इस एकान्तके अर्थक्रियाका सर्वथा विरोध है। फिर उस पदार्थमें अर्थक्रियाका परिणमन नहीं हो सकता।

कार्माणद्रव्यमें कर्मत्वपर्यायके अभाव होनेमें आवरणहानिका व्यवहार—जब कि वस्तु द्रव्यरूपसे ध्रुव है व पर्यायरूपसे अध्रुव है तब यह सिद्ध हुआ मान लेना चाहिए कि जिस प्रकार मणिमें मल आदिकके निवृत्त होनेका नाम हानि है स्वर्णपाषाणसे किट्टकालिमा नष्ट (अलग) हो जानेका नाम उस मणिकी हानि है और वही मणि, स्वर्ण ही शुद्ध कहलाती है इसी प्रकार जीवमें कर्मकी निवृत्ति होनेका नाम हानि है। जीवमें जो ज्ञानावरण आदिक कर्म बँधे हुए थे उन कर्मोंकी निवृत्ति होनेका नाम हानि है और ऐसे कर्मोंकी हानि होनेपर जीवकी आत्यन्तिकी शुद्धि कहलाती है। तत्त्वतः कर्मत्व पर्यायके विनाश होनेपर भी द्रव्यकर्मका विनाश नहीं होता। जैसे योगीके कर्मपर्याय नष्ट होते हैं तो हुआ क्या वहाँ कि जो कार्माण वर्गणा स्कंध कर्मरूप, पर्यायरूपसे उस योगीमें बँधे हुए थे वे कार्माणवर्गणायें अब अकर्म पर्यायरूपसे परिणमन गए। वर्गणायें वही रहीं पर पहिले उनमें कर्मत्वका परिणमन था अब कर्मत्व परिणमन न रहा। जहाँ भी यह वर्णन आता है कि कर्मका क्षय किया गया तो उसका अर्थ यह नहीं है कि कर्म द्रव्यका अत्यन्त विनाश कर दिया गया, किन्तु उस कर्म द्रव्यमें अब कर्मत्व पर्याय न रही, कर्मत्व पर्यायके निवृत्त होनेका नाम कर्मका क्षय कहलाता है। जैसे कि स्वर्णमें जो मलद्रव्य पड़ा हुआ है जिससे कि स्वर्ण मलिन कहलाता है जब मलद्रव्यकी असारभूत पर्याय अब दूर हो जाती है उस स्वर्णसे जो मलका संयोग था वह दूर हो जाता है तो हुआ क्या वहाँ? निर्मल पर्यायके प्रगट होनेरूपसे स्वर्ण परिणमन गया। द्रव्यका अत्यन्ताभाव नहीं किया गया। इस कथनसे यह भी सिद्ध हो गया कि मुक्त अवस्थामें आत्माका तो निराकरण ही है। प्रध्वंसाभाव क्या वस्तु है? उत्तर पर्यायकी उत्पत्ति होनेका ही नाम पूर्व पर्यायका प्रध्वंस कहलाता है। प्रत्येक पदार्थमें यह बात नियत होती ही रहती है कि नवीन समयमें नवीन पर्यायरूपसे यह द्रव्य बना तो पूर्व आकारसे नष्ट हो जाता है। इस बातका समर्थन इसी आप्तमीमांसामें आये "कार्योत्पादः क्षयो हेतोर्नियमाल्लक्षणात् पृथक्, न तौ

जात्याद्यवस्थान दनपेक्षा खपुष्पवत्" इस कारिकामें किया जायगा।

आत्माकी केवलता व दोषविकलताकी सिद्धिका निर्णय—उक्त कथनसे यह निश्चय बनाना चाहिए कि मणिकी केवलता रहनेका नाम ही मल आदिककी विकलता कहलाती है। मणिके मल पड़ा हुआ था, उस समय मणि केवल न था। जब मणिसे मल निकाल लिया गया तो वहाँ चाहे यह कहो कि मलकी विकलता हो गयी या यह कहो कि मणिकी केवलता प्रकट हो गई। दोनोंका भाव एक है, इसी प्रकार जब आत्मासे कर्मकी कर्म पर्यायसे अविष्टता हट जाती है कार्माण द्रव्यका सम्बन्ध भी हट जाता है तो उस समय चाहे यो कह लीजिये कि कर्मकी विकलता हो गई। अब उस आत्मामें कर्म नही रहे चाहे यह कह लीजिये कि आत्माकी केवलता प्रकट हो गई। कर्मोंकी विकलताका ही नाम आत्माकी केवलता कहलाती है इस कारण यह प्रसग दोष नहीं दिया जा सकता कि समस्तरूपसे पर्यायरूपकी हानि होने पर कर्मद्रव्यका ही विनाश हो जायगा। जैसे कर्मकी विकलता होनेपर भी आत्माकी केवलता रहती है उसी प्रकार बुद्धिकी विकलता होनेपर भी आत्माकी केवलता रही आये। यह भी प्रसग दोष नहीं दिया जा सकता। कारण उसका स्पष्ट है कि द्रव्यार्थिक दृष्टिसे बुद्धिका आत्मामें भी विनाश नहीं होता अतएव सर्वात्मकरूपमें बुद्धिके क्षय होनेका प्रसग नहीं आता। तो जब बुद्धिका सर्वात्मकरूपसे क्षय न बना तो पर्यायार्थिक दृष्टिका क्षय होनेपर भी सिद्धान्तका विरोध नही होता।

आत्माके ज्ञानगुणकी सर्वथा निवृत्तिकी एव आत्माका अज्ञानरूपसे रहनेकी असभवता—अब यहाँ क्षणिकवादी बौद्ध शका करते हैं कि जैसे कर्मस्वभाव पर्यायकी निवृत्ति होनेपर भी कर्म द्रव्यका अकर्म पर्यायरूपसे अवस्थान मान लिया गया उसी प्रकार बुद्धि पर्यायरूपसे निवृत्ति होनेपर भी आत्माका अबुद्धि पर्यायरूपसे अवस्थान मान लेना चाहिए और तब सिद्धान्तका स्पष्ट विरोध है। शंकाकारका यहाँ यह मतव्य है कि जैसे कर्म द्रव्यसे कर्मपर्याय निकल जाती है कर्म पर्याय निकलने पर वह द्रव्य अकर्मपर्याय रूपसे रह जाता है तो ऐसे ही बुद्धि पर्यायरूपसे निवृत्ति हो जाय आत्मा तो आत्माका फिर अबुद्धिपर्याय रूपसे रहना बन बन जायगा अर्थात् आत्मा बुद्धिहीन, ज्ञान हीन हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि यह अतिप्रसग दोष यहां नही होता, क्योंकि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तमें विषमता है दृष्टान्त है कर्मद्रव्य, वह है पुद्गल द्रव्य तो कर्मद्रव्य आत्मामें परतन्त्रताको करते हुएमें उसका कर्मत्व परिणाम कहलाता है। और, जब परतन्त्रता नही कर रहा तब उस कर्मद्रव्यका अकर्म पर्यायरूपसे अवस्थान कहलाता है। तो कर्मका तो सामान्य लक्षण रूप रस गध स्पर्शमय होता है, पौद्गलिकताके नाते उस कार्माण स्कधके रूप, रस, गध स्पर्शकी बात लक्षमें बनती है, सो किसी भी समय रूप रस, गध, स्पर्शका विनाश नहीं होता। कर्मत्व तो एक आनुषगिक परिणमन है। कर्मरूप परिणमन हो तब भी वहाँ रूपादिक है अकर्मरूप परिणमन हो तब भी वहाँ

रूपादि है। पुद्गल द्रव्यका कर्मत्व लक्षण नहीं किया गया। पुद्गलका तो रूपादिमान होना लक्षण बताया है। इस कारण इस दृष्टान्तसे दृष्टान्तमें कोई विरोधकी बात नहीं कही जा सकती। अब यहाँ जीव द्रव्यमें भी निरखिये कि बुद्धिद्रव्य जीव है अर्थात् ज्ञानमात्र जीवको ग्रा[illegible] है। पर उसका सामान्य लक्षण उपयोग कहा गया, ज्ञान कहा गया। तो बुद्धिका अभाव बिल्कुल हो जाय और बुद्धिरहित जीव रहे तो इसका अर्थ यह हुआ कि लक्षण मिटा तो लक्ष्य भी मिट गया। लक्षणके अभावमें लक्ष्य कभी नहीं ठहर सकता। आत्माका स्वरूप ही ज्ञान है। तो लक्षणके अभावमें लक्ष्य नहीं ठहर सकता, तब तो लक्षणमें लक्ष्यके अलक्षणपनेका प्रसिद्धि होनेसे यह बताया जाय कि जीव का अबुद्धि पर्याय आदिकरूपसे अवस्थान हो जायगा या पसन्द नहीं आता याने जीवके भी निःशेषरूपसे बुद्धिका विनाश हो जायगा यह नहीं कहा जा सकता।

अज्ञानादि दोषोंकी सर्वथा निवृत्ति संभव होनेके सम्बन्धमें शंका समाधान—यहाँ शंकाकार कहता है कि सत् पदार्थका अत्यन्त विनाश नहीं होता, ऐसा अभी स्वीकार किया गया है तो जब असत्का अत्यन्त विनाश नहीं होता तब अज्ञान आदिक दोषोंकी पर्यायार्थिक दृष्टिसे हानि निःशेषरूपसे सिद्ध न हो सकेगी, आवरणकी तरह। अर्थात् जो सत् है उसका तो विनाश माना नहीं गया। तो अज्ञान आदिक दोष पर्याय दृष्टिसे नष्ट हो जायें तो भी उसमें अव्यक्तरूपसे अज्ञान आदिकपना रहेगा ही और उसका सत्त्व रहेगा और इस प्रकार दो सामान्यका आत्मामें रहना बन गया है इस कारण आत्माके निर्दोषपनेकी सिद्धि नहीं हो सकती है, भले ही व्यक्तरूपसे दोष न रहे लेकिन अव्यक्तरूपसे द्रव्यरूपसे उसमें दोष रहेंगे तो आत्मा कभी दोषोंसे रहित सिद्ध हो ही नहीं सकता। दोषोंका सत्त्व मानने वाले मीमांसकोंके प्रति अब समाधान दिया जाता है कि इस प्रकारका कहना तत्त्वज्ञानके अभावसे बना है क्योंकि आत्मामें जो आगन्तुक मल है वही तो प्रतिपक्ष है और उसीका विनाश होता है। अपने विनाश का कारण जब बढ़ता है तब तो परिक्षय हो ही जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि आत्माका परिणमन दो प्रकारसे होता है एक स्वाभाविक परिणमन, दूसरा आगन्तुक परिणमन। जो परिणमन किसी परद्रव्यके निमित्त बिना अपने आप अपने ही सत्त्व से होता हो, वह तो है स्वाभाविक परिणमन। जैसे अनन्तज्ञान, अनन्त आनन्द आदिक ये परिणमन स्वाभाविक हैं क्योंकि ये आत्माके स्वरूप हैं, स्वभाव ही आत्मामें ज्ञानानन्दका है और उस ज्ञानानन्दका विकास हुआ है तो यह स्वाभाविक परिणमन है, किन्तु आत्मामें जो अज्ञान रागद्वेषादिक परिणमन होते हैं वे आगन्तुक परिणमन हैं, क्योंकि ये परिणमन होते हैं वे आगन्तुक परिणमन हैं, क्योंकि ये परिणमन कर्मोदयका निमित्त पाकर हुए हैं। तो आत्माके प्रतिपक्षी अज्ञान रागद्वेषादिक मल हुए और जो आत्माका प्रतिपक्षी है, आगन्तुक है, उसके मुकाबलेमें अन्य कुछ आया हुआ है उसका क्षय होना प्रसिद्ध है, पर जो आत्मामें स्वभावरूप परिणमन है उसका क्षय नहीं किया जा सकता। इसका अनुमान प्रयोग है कि जो जहाँ आगन्तुक है वह वहाँ पर अपनी

अपनी हानिके कारणके बढनेसे नष्ट हो जाया करता है। जैसे स्वर्ण ताम्र आदिकके मिश्रण होने वाले जो कालिमा आदिक दोष हैं वे आगतुक हैं। आगतुक हैं तब वे अपनी हानिके निमित्त बढ से अर्थात् मल शोधनेकी विधिसे अग्निमें तपाते हैं तो अग्नि में तपानेकी वृद्धि करने स उस मलका अत्यन्त विनाश हो जाता है इसी प्रकार अज्ञान आदिक मल आत्मामें आगतुक (आये हुए) हैं, अतएव उन आगतुक मलोंका अत्यन्त अभाव हो जाता है। इस अनुमानमें जो यह हेतु दिया गया है वह स्वभाव नाम का हेतु है। यह हेतु असिद्ध नहीं है। कैसे असिद्ध नहीं है कि यह बात बिल्कुल निर्णीत है कि जो बात जहाँ कादाचित्क पायी जाय वहाँ उस आगतुक समझना चाहिए। जैसे स्फटिक पाषाणमें लालिमा आदिक आकार आ जाये तो वे किसी उपाधिके सम्बन्धसे ही तो आये हैं अत. उस उपाधिके विनाश होनेपर स्फटिक पाषाणमें वे कालिमा आदिक नहीं रह सकते। सो सर्वथा व्यावृत्ति आगतुक मलकी हुआ करती है, स्वभावकी नहीं हुआ करती।

आत्मामें आगत आगन्तुक मलोंकी नि शेष हानि सम्भव होनेका सयुक्तिक वर्णन—इस कारिकामें मूल बात यह बतायी गई है कि दोष और आवरणकी हानि कहीं समस्तरूपसे हो जाती है क्योंकि इसकी हानिका अतिशयपन देखा जाता है। कहीं रागादिक कम हैं कहीं और कम हैं यों रागादिक कहीं बिल्कुल न रहें सिद्ध होता है। तो इस तरह कोई यह कह कि ज्ञानकी हानि भी किसी पुरुषमें जितनी देखी जाती है उससे अधिक ज्ञान हानि अन्य जीवमें पायी जाती है उससे अधिक ज्ञान हानि अन्य जीवमें है। तो कोई जीव ऐसा होगा कि जिसमें ज्ञानकी हानि नि शेषरूपसे हो जायगी। यह बात यों नहीं कही जा सकती कि ज्ञानकी हानि भी देखी जा रही है, फिर भी ज्ञान आत्माका स्वरूप है। आत्माके प्रतिपक्षी आवरण आदिककी अधिकता होनेपर ज्ञानकी कमी हो गई लेकिन कमी हो जावे भले ही पर आत्म का स्वरूप है, इस कारण इसका किसी आत्मामें सर्वथा अभाव नहीं किया जा सकता है लेकिन रागादिक मल आत्माके स्वभावभूत नहीं हैं। वे आगतुक मल हैं। माया, लोभ प्रकृतिका उदय होनेपर रागद्वेष बनते हैं और क्रोध मान प्रकृतिका उदय होनेपर द्वेष बनता है। तो ये रागद्वेषादिक मल आगतुक हैं। तो आगतुकोंमें तो यह नियम है कि आगन्तुक मल अपनी हानिके कारणोंके बढनेपर कहीं उसकी पूरेरूपसे हानि हो जाती है, लेकिन स्वभावभूत वस्तुमें यह नियम नहीं किया जा सकता कि ज्ञानहानिके कारणोंके बढ़नेपर याने प्रतिपक्ष आवरणके उदय होनेपर भी उसकी कहीं नि शेषरूपसे हानि हो जाय। याने वृद्धि हानिकी तारतमताके कारण ज्ञानका कहीं सर्वथा अभाव हो जाय यह नहीं हो सकता। सर्वथा अभाव होगा तो आगतुक मलका ही होगा। आत्मामें रागादि दोष आगतुक और कादाचित्क हैं इस कारण उसका अभाव प्रसिद्ध होगा किन्तु स्वभावका कुछ अंशोंमें आवरण होनेपर भी स्वभावका अभाव न होगा। रागादिक दोषोंकी हानि की तरह ज्ञान आदिकी सर्वथा हानि नहीं कही जा सकती। और, कमत्व पर्याय नष्ट

होनेपर कमका असमंजसे रहनेका उदाहरण देकर अज्ञान आदिक दोषोके मिटनेपर किसी न किसी रूपमें अज्ञान आदिक दोष रहे आये यह भी नही कहा जा सकता।

रागादिदोषोमे आगन्तुकता व कादाचित्कताकी सिद्धि—यहाँ यह बताया जा रहा है कि आत्मामें जो रागादिक दोष होते हैं वे तो निर्मूल हो जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं, पर जो ज्ञान हानि है वह ज्ञान हानि होते होते किसी आत्मामे ज्ञान पूरे तौरसे नष्ट हो जाय यह नही हो सकता। इसका कारण बताया है कि रागादिक दोष तो है आगन्तुक और ज्ञान परिणति है स्वाभाविक। जो दूसरे कारणसे आयी हुई बात है वह तो मिट सकती है और जो अपने स्वभावसे उठी हुई बात है वह कही नष्ट नही हो सकती। तो ये रागादिक दोष आगन्तुक हैं, क्योंकि कर्मके उदयके निमित्त से हुए है। इनकी आगन्तुकता कादाचित्क होनेसे अर्थात् आये और नष्ट हो गए ऐसी अनित्यता होनेसे भली भाँति सिद्ध है। तो आत्मा मे ये दोष अज्ञान रागादिक ये कादाचित्क हैं। कभी हुए और मिट गए ये आत्माके स्वभावरूप नही हैं। कादाचित्कका अर्थ मात्र अध्रुव नही किन्तु निमित्तके होनेपर बढ़ना व निमित्तके कम होनेपर घटना और निमित्तके बिल्कुल न रहनेपर इनका मूल नाश होना ऐसी वृत्ति जहाँ पायी जा सकती है उसे कादाचित्क कहते हैं। तो देखो! ये रागद्वेष कादाचित्क है। जब सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंका आविर्भाव होता है तो आत्मामें वे दोष नही ठहरते, इससे जाना जाता है कि ये अज्ञान आदिक दोष कादाचित्क हैं।

आत्मामे दोषोके सतत रहनेकी शका व उसका समाधान—अब यहाँ शकाकार कहता है कि देखिये! गुणोंके प्रकट होनेसे पहिले दोषका सद्भाव था तो गुणोंके प्रकट होनेकी दशामें भी तिरोहितरूपसे दोषका सद्भाव रहेगा इसलिए ये दोष कादाचित्क नही किंतु आत्मामे निरन्तर रहते हैं यहशका मीमासकसिद्धान्तकी मीमासक लोग यह मानते हैं कि आत्मा दोषका पिण्ड है। क्रोध, मान, माया, लोभ, रागद्वेष, इन्हीका समूह तो आत्मा है और जब ये दोष कम होते है तो आत्मामे कुछ गुण नजर आते हैं। तो आत्मामें स्वभाव तो दोषका पड़ा है, पर दोष कुछ कम रहे, दोषोका कही अभाव हो तो प्रकट होते हैं। इस तरह मीमासक सिद्धान्तानुयायी आत्माको दो स्वभावी मानते हैं। इसीके अनुसार यह शकाकी गई है कि जब आत्मामें गुण प्रकट न हुए तब तो बराबर अनादि काल दोष चले आ रहे थे, तो गुण प्रकट होनेकी हालतमें भी वे दोष तिरोहितरूपसे है, कही दोष मूलसे नहीं उखडे हैं। दोषोको कादाचित्क कहना, कभी होना कभी न होना ऐसी कभी कभी की सी बात कहना यह युक्त नहीं है। दोष तो निरन्तर आत्मामे रहते हैं। मीमांसककी इस शकाका समाधान करते हैं कि दोषोंको आगन्तुक न बताकर गुणोंको ही आगन्तुक बताना और दोषोको आत्माका स्वभाव कहना यह कहना युक्त नही है कि जिस युक्ति से तुम यह कह रहे हो उस युक्तिसे तुम्हारे यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि गुण भी

सतत हैं। दोषोंके होनेसे पहिले गुणोंका सद्भाव था तो दोषोंके प्रकट होनेके समय भी वे गुण तिरोहित रूपसे हैं। ऐसा यहाँ भी कहा जा सकता है। यह भी कहा जा सकता कि दोष न रहनेके बाद जब गुणोंका सद्भाव है तो जब तक दोष रहे थे उस कालमें भी गुणोंका तिरोहित रूपसे सद्भाव है यों गुणोंमें भी निरन्तर रहनेकी बात सिद्ध होती है। और फिर ऐसा माननेपर कि गुणके सद्भावके समयमें भी तिरोहित दवे हुए रूपसे दोष रहा करते हैं, ऐसा कथन स्वीकार करनेपर जो आपके यहाँ हिरण्यगर्भ आदिक बड़े संत हुए हैं, जो वेदके अर्थज्ञानके बड़े अधिकारी माने गए हैं। तो जब आत्माका स्वभाव दोषका रहा तो जब हिरण्यगर्भ आदिकने जब वेदका अर्थज्ञान किया उस समयमें भी वेदके अर्थके अज्ञानका प्रसंग आता है हिरण्यगर्भादिक महर्षियोंके, क्योंकि आत्माको तो तुमने दोष स्वभाव वाला माना। तो हिरण्यगर्भादिक भी तो जीव थे। दोष स्वभाव उनके भी था। तो जिस समयमें उन्होंने वेदका अर्थज्ञान किया उस काल में वेदके अर्थका अज्ञान भी रहा आया है, यह बात बन जायगी।

आत्माको दोषस्वभाव सिद्ध करनेमें दिये गये आक्षेपके बचाव व उनके समाधान—यहाँ मीमांसक कहते हैं कि हिरण्यगर्भ आदिक संतोंके वेदके अर्थ का ज्ञान था, उस समय उन्हें वेदके अर्थका अज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि ज्ञान और अज्ञानमें परस्पर विरोध है। जहाँ ज्ञान है वहाँ अज्ञान कैसे ठहर सकता ? तो उन संतोंने जिनको वेदका ज्ञान था उनके वेदका अज्ञान नहीं रह सकता। एक आत्मामें एक ही समयमें ज्ञान और अज्ञान बना रहे यह बात नहीं बनती। तो उत्तरमें कहते हैं कि इस ही कारणसे तो समस्त गुण और दोषोंका एक ही आत्मामें एक ही समयमें ठहरना नहीं बन सकता। जो जीव शुद्ध है, जिसके विशुद्ध ज्ञान प्रकट हुआ है उसके दोष भी रहा आये यह बात न बनेगी। क्योंकि दोष जब था तब गुण विकास नहीं जब गुण विकास हुआ तब दोष नहीं, इसलिए गुणके सद्भावके समयमें तिरोभूतरूपसे भी दोषका सद्भाव नहीं माना जा सकता। अब यहाँ मीमांसक फिर शंका करता है कि जिस आत्मामें रागद्वेष नहीं रहा उसमें फिर भी तो दोषोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। जैसे कोई पुरुष अपनी जीवनमें बड़ा क्षमावान रहा। क्रोध उसे आता ही न था, लेकिन कुछ बुढ़ापा आनेपर उसका चिड़चिड़ा स्वभाव हो गया, तो देखिये ! पहिले तो दोष न थे अब दोष आ गए। तो इससे सिद्ध होता है कि जब क्षमा रखते थे उस समय में भी इसके दोषका स्वभाव था। तो पुनः दोषकी प्रकटता देखी जानेसे गुणके समय में भी दोषकी सत्ता मात्रकी सिद्धि होती है। उत्तरमें कहते हैं कि इसी तरह फिर गुण का भी पुनः आविर्भाव होनेसे दोषके समयमें भी सत्तामात्रकी सिद्धि रही। जिस पुरुष में अब तक गुण प्रकट न हुए थे और अब गुण प्रकट हुए हैं तो उससे यह जाना जाता है कि इस जीवमें इन ज्ञानादिक गुणोंकी सत्ता पहिलेसे थी। जैसे मीमांसक आत्माको दोष स्वभाव वाला सिद्ध करते हैं इसी प्रकार यहाँ गुणस्वभाव वाला सिद्ध होनेका कौन निवारण कर सकता है? यदि मीमांसक यह कहें कि आत्मा दोषस्वभावी है तो

गुणस्वभावी नही हो सकता। इसलिए दोनों स्वभाव होनेका एक आत्मामे विरोध है। आत्मा यदि दोष स्वभावी है तो गुणस्वभावी नही हो सकता। क्योंकि उनमे विरोध है। इस शकापर कहते हैं कि विरोध होनेके नातेसे तुम गुणस्वभावका खण्डन क्यों करते हो ? दोष स्वभावका खण्डन कर दो। आत्मामे चूंकि दोष स्वभाव होना, गुण स्वभाव होना, ये दोनो स्वभाव एक साथ नही रह सकते तो यह कहो कि आत्मा दोष स्वभावी नहीं है, गुण स्वभावी ही है।

मुक्तिकी प्रमाणसिद्धता होनेसे आत्माके गुणस्वभावताकी सिद्धि—अब मीमासक प्रश्न कहते है कि आत्मा गुण स्वभाव वाला है यह आप किस तरह सिद्ध करेंगे तो उत्तर तो सीधा यह है मुकाबलेतन कि आत्मा दोष स्वभावी है यह भी सिद्ध आप किस तरह करेंगे ? यदि मीमासक कहें कि यह आत्मा दोष स्वभावी नही होता तो यह ससारी न बनता। यह जीव जो ससारमे भटक रहा है, नाना देहोंको धारण कर रहा है, इससे ही यह सिद्ध है कि आत्मामे दोषका स्वभाव पडा हुआ है। इस कथनपर अब स्याद्वादी उत्तर देते हैं कि मीमासकोंने यह माना कि आत्मा दोषस्वभावी है, क्योंकि यदि दोषस्वभावी आत्मा न होता तो इसका ससार न बनता यह जो ससारमें भटक रहा है, यह भटकना इसी कारण सिद्ध होता है कि आत्मा दोषस्वभावी है। तो इसके उत्तरमें यह पूछा जा रहा है मीमासकोसे कि यह बतावो कि जीवका ससारपना क्या सभी जीवोका अनादि अनन्त है ? यदि कहो कि हाँ सभी आत्माओका ससारीपना अनाद्यनन्त है तो यह बात प्रतिवादीके लिए असिद्ध है। मीमासक जो यह कह रहे है कि आत्मा दोषस्वभावी है। यदि दोषस्वभावी न होता तो यह ससारी न बनता। सो यदि ससारी रहता अनादिसे अनन्तकाल तक हो ही सब जीवोका तब तो माना जा सकता है कि आत्मा दोषस्वभाव वाला है, कहा जा सकता कि तभी तो अनादिसे ससारी है और अनन्त काल तक ससारी रहेगा लेकिन ऐसा तो है नही, क्योंकि जीवकी मुक्ति प्रमाणसे सिद्ध है। यह आत्मा उपायसे, सम्यक्त्व ज्ञान चारित्रके बलसे कर्मोंसे मुक्त भी हो जाता है, इसका ससारीपना भी मिट जाता।

सदाके लिये ससारित्व निवृत्ति होना सिद्ध होनेसे आत्माके दोषस्वभावताकी असिद्धि—यदि कोई पूछे - कैसे मिट जाता है ससारीपना ? सो सुनो। किसी आत्मामे ससार बिल्कुल निवृत्त हो जाता है। ससरण, देहोंका धारण, कषायो की उत्पत्ति, आकुलता, क्षोभका होना, आत्मामे विविध तरग उठना यह ही तो सब ससार है, तो कोई आत्मा ऐसा भी होता है कि जिस आत्मामे यह ससार बिल्कुल नही रहता, क्योंकि ससारके कारणभूत जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र हैं उनकी अत्यन्त निवृत्ति अन्यथा न बन सकती थी। जब आत्मामें मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र सदाके लिए नही रहते, अत्यन्त अलग हट जाते हैं तो उससे सिद्ध है कि ससार भी नही रहता। भवोमे परिभ्रमण करना, कषायोका होना, इसका

कारण है मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र। आत्माका स्वरूप और भांति है श्रद्धान कर लेना यह और भांति है। यही मिथ्या श्रद्धान है। पदार्थोंका स्वरूप और भांति है और उसकी जानकारी और भांति है, उसका नाम है मिथ्याज्ञान जीवका शुद्ध काम था स्वरूपमें रमनेका लेकिन यह परपदार्थोंका आश्रय करके रागद्वेष भावोंमें रम रहा है, यह है इसका मिथ्याचारित्र। तो ये तीन जब आत्मासे बिल्कुल हट जाते हैं तब वहाँ संसार कैसे रह सकता है ? तो यह सिद्ध है प्रमाणसे कि किसी आत्मामें संसार बिल्कुल नहीं रहता। संसारके कारण हैं मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। सो यह बात याने जो संसारमें रुलनेका, जन्म मरण करनेका कारण है यह दोनोंको मान्य है—वादी और प्रतिवादीको। और यह भी दोनोंको प्रसिद्ध है कि मिथ्याज्ञानकी वजहसे सम्यग्ज्ञानका अभाव रहता है। जब मिथ्याज्ञान है तो सम्यग्ज्ञान भी नहीं ठहर सकता, यह भी दोनोंका मान्य है। अब यह देखिये ! जब कि संसारका कारणभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्र किसी आत्मामें सदाके लिए नहीं रहता, आत्मासे अलग जाता है तब संसार कैसे रहेगा ? और, यह बात प्रमाणसे सिद्ध है कि किसी आत्मामें ये मिथ्यादर्शन आदिक सदाके लिए नहीं रहते आत्मासे बिल्कुल हट जाते हैं, क्योंकि उन मिथ्यादर्शन आदिकका विरोधी सम्यग्दर्शन आदिक उत्पन्न हो जाते हैं। उन सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंका परम प्रकर्ष बन जाता है, उत्कृष्टरूपसे ये विकसित हो जाते हैं तो मिथ्यादर्शन आदिक फिर ठहर कैसे सकते हैं। यह व्याप्ति है कि जहाँपर जिसके विरोधीकी प्रबलता होगी वहाँ वह विकल्प हट जायगा। जैसे नेत्र में जब निर्मलता बढ़ जायगी तो तिमिर आदिक जो और रोग हैं वह दूर हो जायगा। यह उदाहरण बिल्कुल अनुरूप है। यह नहीं कह सकते कि इसमें साध्य नहीं है अथवा इसमें साधन नहीं है। किसी पुरुषकी आँखमें तिमिर रोग था, उस तिमिर रोगकी वजहसे वह अंधेरा अंधेरा प्रतीत करता था अब तिमिर रोगकी अत्यन्त निवृत्ति होगयी जैसे जिसको मोतिंगा होता है उसका आपरेशन होनेपर वह रोग बिल्कुल हट जाता है प्रतीति हुई कि उस तिमिर रोगका विरोधी कोई विशिष्ट अंजन आदिक लगाया गया उसका कारण जुटा। तो उस तिमिर रोगके विरोधी कारणका जहाँ आसन जमा वहाँ फिर वह नहीं ठहर सकता है तो मिथ्यादर्शन आदिक दोषोंके विरोधी हैं सम्यग्दर्शन आदिक। जहाँ सम्यग्दर्शन है मिथ्यादर्शन न ठहरेगा, तो इन गुणोंके होनेसे यह सिद्ध होता है कि किसी आत्मामें मिथ्यादर्शन आदिक दोष सदाके लिए नहीं रहते।

सम्यग्दर्शनादिक गुणोंमें मिथ्यादर्शनादिक दोषोंके विरोधित्वकी सिद्धि

यदि यहाँ मीमांसक आदि कोई शंकाकार पूछे कि यह बतलावो कि सम्यग्दर्शन आदिक गुण मिथ्यादर्शन आदिक दोषोंके विरोधी हैं यह निश्चय तुमने कैसे किया ? तो उसके निश्चयकी साधना सुनो ! जब यह देखते हैं कि सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंकी वृद्धि होने से मिथ्यादर्शन आदिककी हानि है तो उससे यह सिद्ध है कि मिथ्यादर्शन आदिकका विरोधी सम्यग्दर्शन है। जब हम यह देखते हैं कि प्रकाशके होनेपर अंधकार हट जाता

है, ज्यों ज्यों प्रकाश तेज होता है त्यों त्यों अंधकार भी उसी तेजीसे हटता जाता है । अंधकारका विरोधी है प्रकाश । प्रकाश हो गया तो वहाँ अंधकार नहीं ठहरता । जो चीज बढ़ती हुई जिसको घटा दे वह उसका विरोधी कहलाता है । जैसे प्रकाश बढ़ता हुआ अंधकारका विरोधी है । और, भी सुनो—जैसे उष्ण स्पर्श बढ़ते हुए शीतस्पर्श को घटाता है तो उष्णस्पर्श शीतका विरोधी है । इसी तरह जब सम्यग्दर्शन आदिक गुण बढ़ते हैं तो मिथ्यादर्शन आदिक हट जाते हैं । इससे सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन आदिक मिथ्यादर्शन आदिकके विरोधी हैं ।

सम्यग्दर्शनादिक गुणोंके परम विकासकी सिद्धि—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि सम्यग्दर्शन आदिकका किसी आत्मामें उत्कृष्ट विकास है यह बात कैसे सिद्ध करोगे ? तो उत्तरमें कहते हैं कि किसी आत्मामें 'सम्यग्दर्शन' आदिक पूर्णरूपसे विकसित हैं यह बात सिद्ध होती है इस हेतुसे कि वे सम्यग्दर्शन आदिक तारतमरूपसे बढ़ते हुए देखे जाते हैं । किसीमें ज्ञान जितना है उससे बढ़ा हुआ ज्ञान दूसरेको है, उससे बढ़ा हुआ ज्ञान किसी अन्यमें है । तो जहाँ स्वभावका विकास बढ़ता हुआ नजर आता है तो वहाँ यह मानना होगा कि कोई आत्मा ऐसा अवश्य है कि जिसमें स्वभाव का पूर्ण विकास हुआ है । जो चीज बढ़ती हुई होती है वह किसी न किसी जगहसे उत्कृष्ट विकास वाला हुआ करती है, जैसे यहाँ परिमाण बढ़ते हुए नजर आ रहे घड़ी की सूई छोटी है घड़ी उससे बड़ी है यह महल उससे बड़ा है तो जब एकसे एक बढ़कर परिमाण वाले पदार्थ नजर आते हैं तो यह सिद्ध होता है कि कोई वस्तु ऐसी भी है जो अत्यन्त विशाल परिमाण वाली है । वह क्या है ? आकाश । जब एकसे एक बढ़कर बड़े बड़े परिमाण पदार्थ दृष्टिगत हो रहे तो उससे सिद्ध है कि कि कोई है महा-परिमाण वाला । ऐसा अनुमान तो मीमांसकोंने स्वयं ही किया है । अब इस प्रकरणमें देखिये कि सम्यग्दर्शन आदिक ये बढ़ते हुए रहते हैं इस कारणसे यह सिद्ध है कि किसी आत्मामें सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंका उत्कृष्ट विकास अवश्य है ।

सम्यग्दर्शनादि गुणके परमप्रकर्ष साध्यके साधक प्रकृष्यमाणत्व हेतुकी अव्यभिचारिताकी सिद्धि—शंकाकार कहता है कि इस अनुमानमें जो हेतु दिया गया है कि जो बढ़ती हुई बात है उसका कहीं परिपूर्ण बढ़ाव अवश्य है । इस हेतुमें परत्व और अपरत्वके साथ व्यभिचार आता है । यानी दूरी और निकटता छोटे और बड़े होना, लुहरा और जेठा होना आदि परत्व और अपरत्व कहलाता है । तो देखिये परत्व और अपरत्व बढ़ते हुए तो नजर आते हैं लेकिन ऐसा कोई स्थल नहीं है जहाँ परत्वका परम विकास हो या अपरत्वका परम विकास हो, तो हेतुके होनेपर भी साध्यके न होनेसे इस हेतुमें व्यभिचार आता है । इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि प्रकृष्यमाणत्व हेतुका परत्व व अपरत्वके साथ व्यभिचार नहीं बताया जा सकता क्योंकि लोकको सपरिमाण कहने वालोंके सिद्धान्तमें परत्व व अपरत्वका भी परम

प्रकर्ष सिद्ध है। लोक अपर्यन्त है याने अन्तरहित है यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका विशिष्ट सन्निवेश याने आकार पाया जाता है। जैसे पर्वतका कोई विशिष्ट सन्निवेश है, आकार है तो पर्वत सपर्यन्त भी है। जो अपर्य है अनन्त है वह विशिष्ट सन्निवेश वाला नहीं होता जैसे कि आकाश। अपर्यन्त है और विशिष्ट सन्निवेशसे रहित है और यह लोक विशिष्ट सन्निवेश वाला है इस कारण यह लोक सब ओरसे सपर्यन्त है। तो लोकमें परत्वकी प्रकर्षता सिद्ध है तथा परमाणुमें अपरत्वकी प्रकर्षता सिद्ध है। अतः सम्यग्दर्शनादि गुणोंका परमप्रकर्ष सिद्ध करनेके लिये दिये गये प्रकृष्यमाणत्व हेतुका परत्व अपरत्वके साथ व्यभिचार नहीं कहा जा सकता। सो प्रकृष्यमाणत्व हेतुसे सम्यग्दर्शनादिक गुणोंका परमप्रकर्ष सिद्ध हो ही जाता है।

प्रकृष्यमाणत्व हेतुकी निर्दोषता—यहाँ शंकाकार कहता है कि प्रकृष्यमाणत्व हेतुका संसारके साथ अनैकान्तिक दोष हो जायगा क्योंकि संसारका परम प्रकर्ष न होनेपर भी संसारमें प्रकृष्यमाणत्व हेतु देखा जा रहा है। समाधानमें कहते हैं कि प्रकृष्यमाणत्व हेतुका संसारके साथ भी अनैकांत दोष नहीं आता क्योंकि अभव्य जीवोंमें संसार का परम प्रकर्ष सिद्ध है, अर्थात् जिसका संसार सदाके लिए हो उस ही के तो संसारका परम प्रकर्ष कहा जायगा। तो अभव्य जीव हैं ऐसे जिनको कभी मुक्ति न होगी। तो उनमें संसारकी परम प्रकर्षता सिद्ध है। और प्रकृष्यमाणत्व तो दोनोंको मान्य ही है, और साध्य भी अभव्य जीवमें सिद्ध हो गया तब हेतुका संसारके साथ अनैकांतिक दोष नहीं होता। कोई यहाँ ऐसी शंका करे कि तब फिर हेतुका मिथ्यादर्शन आदिकके साथ व्यभिचार हो जायगा, सो मिथ्यादर्शन आदिकके साथ भी व्यभिचार नहीं होता, ऐसा एकान्त नहीं है कि मिथ्यादर्शन आदिक प्रकृष्यमाण तो देखे जा रहे हैं, परन्तु किसी जीवमें मिथ्यादर्शन आदिकका परम प्रकर्ष न होता हो। अनैकान्तिक दोष तो तब बढ़ेंगे कि मिथ्यादर्शन आदिक प्रकृष्यमाण तो हो, पर उनका परम प्रकर्ष न हो तब ही तो अनैकान्तिक दोष कहा जायगा ना, लेकिन मिथ्यादर्शन आदिककी परम प्रकर्षता अभव्य जीवोंमें पायी जाती है अर्थात् अभव्य जीवोंमें सदा काल मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र रहेंगे। इस कारण प्रकृष्यमाणत्व हेतुको परम प्रकर्ष साध्य सिद्ध करनेमें दूषित नहीं कहा जा सकता। यह सब तो हुआ अनैकांतिक दोषके निवारणका प्रसंग। अब यहाँ देखिये कि प्रकर्षमाणत्व हेतुमें विरुद्ध हेत्वाभासपना भी नहीं है विरुद्ध हेतु उसे कहते हैं कि जो हेतु साध्यका विरोधी हो याने साध्यसे विपरीत अन्य बातको सिद्ध करे, लेकिन प्रकृष्यमाणत्व हेतु परम प्रकर्षरहित किसी वस्तुमें नहीं पाया जाता अर्थात् जो चीज बढ़ती तो रहे, पर खूब सीमा तक न बढ़ सके ऐसा कुछ भी नहीं है।

सम्यग्दर्शनादि गुणोंकी परमप्रकर्षता सिद्ध हो जानेसे आत्माके गुणस्वभावताकी प्रसिद्धि—उक्त प्रकारसे प्रकृष्यमाणत्व हेतुकी निर्दोषता सिद्ध हो जानेके

कारण सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन आदिक जब बढते हुए प्रवर्तते हैं तो यह निश्चय है कि कहीं मिथ्यादर्शन आदिकका बिल्कुल ही विनाश हो जाता है क्योंकि सम्यग्दर्शन आदिक गुण मिथ्यादर्शन आदिक दोषके विरोधी हैं, तो यहाँ प्रकृष्यमाणत्व हेतुसे सम्यग्दर्शन आदिक गुणोंकी परम प्रकर्षता सिद्ध हो जाती है। और जब सम्यग्दर्शन आदिक गुण ऊँचे विकासमें पहुँचते हैं तबयह बात सिद्ध हो लेती है कि किसी आत्मामें मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रकी अत्यन्त निवृत्ति होती ही है। जब कहीं रत्नत्रय का पूर्ण विकास होता है यह सिद्ध हो तो यह बात अपने आप सिद्ध होती है कि कहीं मिथ्यादर्शन आदिक दोषोंका पूर्णतया विनाश हो जाता है। और जब यह सिद्ध हो गया कि किसी आत्मामें मिथ्यादर्शन आदिकका अयन्त अभाव हुआ है तो उससे यह सिद्ध हुआ ना कि आत्मा ज्ञानादिक गुणोंके स्वभावरूप है। आत्मा दोषस्वभावी नहीं है क्योंकि एक आत्मामें एक ही समयमें गुणस्वभाव और दोषस्वभावता होनेका विरोध माना गया है।

जीवत्वान्यथानुपपत्तिसे अभव्य जीवके स्वरूपमें भी गुणस्वभावताकी सिद्धि—अब यहाँ कोई शंकाकार कहता कि सामान्यतया आत्माको गुणस्वभावी भले ही सिद्ध करलें, किंतु अभव्य जीवोंमें तो गुणस्वभावता सिद्ध नहीं होती। अभव्य जीव अनन्त काल तक कभी भी मुक्त न हो सकेंगे उनके दोष न छूट सकेंगे। उनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, गुणका अंकुर भी न बन सकेगा तो ऐसे अभव्य जीवोंमें गुणस्वभावता सिद्ध नहीं है, इसके उत्तरमें कहते हैं कि जब यह सिद्ध हो गया कि मुक्तिके पात्र किसी आत्मामें गुणस्वभावता निर्बाध है तो किसी भी आत्मामें गुणस्वभावताकी प्रसिद्धि होनेपर सभी जीवोंमें गुणस्वभावताकी सिद्धि होती है। अभव्य जीवमें भी गुणस्वभावता बराबर है। यदि अभव्य जीवोंमें गुणस्वभावता न होती तो उनमें जीवत्वकी उपपत्ति ही न बन सकती थी अर्थात् न हो कोई जीव गुणस्वभावी तो वह जीव ही नहीं है। इस प्रसंगको यों भी समझा जा सकता है कि ज्ञानावरण आदिक अष्टकर्म इन अभव्य जीवोंके साथ भी लगे हुए हैं तभी तो अन्य जीवोंकी भाँति जैसे कि अनेक भव्य जीव संसारमें परिभ्रमण कर रहे हैं कम ज्ञानी बहुत ज्ञानी बन रहे हैं इसी प्रकार अभव्य जीव भी तो भ्रमण करके नाना परिणमन करते हैं। इससे सिद्ध है कि अभव्य जीवोंके साथ भी ज्ञानावरण आदिक कर्म लगे हुए हैं। ज्ञानावरण आदिकके भेदमें एक केवल ज्ञानावरण भी है वह भी अभव्यके साथ लगा है। केवल ज्ञानावरणका अर्थ है कि ऐसी प्रकृति जो केवल ज्ञानका आवरण करे। यदि अभव्य जीवमें केवल ज्ञानस्वभावता न होती तो उसके आवरणका प्रसंग ही क्या? तो अभव्य जीवमें भी गुणस्वभावता है।

निकट भव्य दूरान्दूरभव्य व अभव्य सभी जीवोंमें गुणस्वभावता—इस प्रसंगमें जीवोंको तीन श्रेणियोंमें रखिये—निकट भव्य जीव, दूरानदूरभव्य जीव

और अभव्य जीव। अभव्य जीवके रत्नत्रय प्रकट होनेकी शक्ति नहीं है अर्थात् रत्नत्रय धर्म व्यक्त होनेकी शक्ति नही है। दूरानदूर भव्यमें ऐसा कभी योग ही न मिलेगा कि रत्नत्रय धर्म उनमें व्यक्त हो सके। ऐसे भव्य जीवोंमें रत्नत्रय व्यक्त होनेकी शक्ति है और योग मिलनेपर उनकी मुक्ति हो सकती है पर योग ही न मिलेगा इसके लिए तीन दृष्टान्त निहारिये—अभव्य जीवके लिए दृष्टान्त तो है वन्ध्यास्त्री दूरानदूरभव्यके लिए है सुशील विधवा और निकट भव्य जीवके लिए दृष्टान्त हैं साधारण महिलायें। जैसे वन्ध्यास्त्रीमे पुत्र व्यक्त करनेकी शक्ति नही है। स्त्री होनेके नाते ता शक्ति मानी जायगी, पर उसके व्यक्त होनेकी शक्ति नहीं है। यो अभव्य जीव होनेके नाते केवल ज्ञानका स्वभाव शक्ति तो मानी जायगी, परन्तु ऐसे ज्ञानस्वभावके व्यक्त होनेकी शक्ति नहीं है। दूरानदूर भव्य सुशील विधवाकी तरह है। जैसे सुशील विधवामें पुत्र प्रसव की व्यक्तिकी शक्ति है लेकिन कभी पुत्र होगा ही नहीं, सुशील होनेके कारण योग मिलेगा ही नहीं। इसी प्रकार दूरानदूर भव्यमे केवल ज्ञान व्यक्त होनेकी शक्ति तो है पर कभी ऐसा योग मिलेगा ही नही। तो इन दृष्टान्तोंसे यह बात परखना है कि अभव्य जीवमें भी केवल ज्ञानका स्वभाव है। गुण स्वभावना सब जीवोंमें होती है। इस प्रकार जब सब आत्माओंमे ज्ञानादिक गुण स्वभावना सिद्ध हो गया तो दोष स्वभावपना असिद्ध हो गया। आत्मा गुण स्वभावी है दोष स्वभावी नही है।

आत्माके गुणस्वभावताकी सिद्धि, दोषस्वभावताकी असिद्धि दोषोके आगन्तुकत्व व कादाचित्कत्वकी सिद्धि होनेसे किसी परम पुरुषमे विश्वज्ञता की सिद्धि—उक्त प्रकारसे जब दोष स्वभावीपन आत्मामें असिद्ध है तो इससे यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि दोष कादाचित्क होते हैं अर्थात् निमित्त बढनेके कारण दोष बढ़ जाते हैं, निमित्त घटनेके कारण दोष घट जाते हैं। दोषमें कादाचित्कपना है और जब यह सिद्ध हो गया कि आत्मामे रागादिक दोष कादाचित्क हैं तो यह भी स्पष्ट रूपसे सिद्ध हो जाता है कि रागादिक दोष आगतुक हैं, स्वाभाविक नहीं हैं। जीवमें जीवके स्वभावके कारण जीवके सत्त्वसे ही रागादिक दोष आये हों ऐसी बात नहीं है। सब यह सिद्ध हो जाता है कि जो आगतुक मल हैं वे ही पूर्णतया नष्ट होते हैं। ज्ञानादिक गुण निःशेषरूपसे कही भी नष्ट नहीं हो सकते, आगतुक मल ही निःशेषरूपसे नष्ट हो सकते हैं। तो इसका कारण यह है कि रागादिक दोष अपने निमित्तके बढनेसे उत्पन्न हुए हैं। तो जब रागादिक दोषके ह्रासके कारण बढते हैं तो रागादिक दोष नष्ट हो जाते हैं। रागादिक दोषो के बढने के निमित्त हैं मिथ्यादर्शन आदिक और रागादिक दोषो के ह्रासके निमित्त हैं सम्यग्दर्शन आदिक। जब सम्यग्दर्शन आदिक गुण बढ़ते हैं तो आत्मामेंसे रागादिक दोष पूर्णरूपसे निकल जाया करते हैं। यह बात स्पष्टतया प्रसिद्ध होती है, उसका कारण है कि दोषोके हटानेके निमित्त हैं सम्यग्दर्शन आदिक। जब वे आत्मावलम्बनके प्रसादसे विशिष्टरूपसे बढते हैं तो निमित्तसे दोष नष्ट हो जाते हैं। इस सब उक्त कथनका यह निष्कर्ष लेना है कि

आवरण अर्थात् ज्ञानावरण आदिक द्रव्य कर्म और दोष अर्थात् भावकर्म इन दोनोंकी किसी महान आत्मासे अत्यन्त निवृत्ति हो जाती है। तो इस प्रकार समझिये कि कोई आत्मा कर्म रूपी पहाडका भेदन करने वाला है। और जो कर्म पहाडका भेदन करदे जिसमे सम्यग्दर्शन आदिक गुण परम उत्कृष्ट बन जायें, मिथ्यादर्शन आदिक दोष पूर्णतया निकल जायें, ऐसा ही वीतराग सर्वज्ञ मोक्षमार्गका प्रणेता हो सकता है और वही यहाँ स्तुति करने योग्य है, और वही समस्त तत्त्वोंका जानकार है। यह देवागम स्तोत्र गन्धहस्तिमहाभाष्य स्वामी समन्तभद्राचार्य द्वारा तत्त्वार्थसूत्र महाग्रन्थकी टीका रूपमे लिखा गया है जिसके मगलाचरणकी सिद्धिके लिए आप्तमीमांसा की गई है उस मगलाचरणमे तीन विशेषण है मोक्षमार्गका नेता, कर्म पहाडका भेदने वाला, समस्त तत्त्वोका जानने वाला। तो यहाँ प्रयोजन है मोक्षमार्गका नेता सिद्ध करनेका। जो मोक्षमार्गका नायक है उसके ही वचन प्रमाणभूत होंगे। और उसके बताये हुए शासन का अनुसरण करके जीव मुक्ति पायेंगे। तब मोक्षमागका प्रणेता कौन हो सकता है, उसके लिए कारणभूत हैं दो विशेषण जो कर्मोका नाश करदे और समस्त तत्त्वोका जाननहार हो, अर्थात् वीतराग सर्वज्ञदेव ही आप्त हो सकता है।

मीमांसकों द्वारा आत्माकी असर्वज्ञता व दोषस्वभावता सिद्ध करनेका पुन: प्रयास— अब यहाँ मीमांसक शका करता है कि भले ही किसी आत्मामेंसे सारे उपद्रव टल गए हो, वह आत्मा निर्दोष भी हो गया हो तब भी वह दूरवर्ती विप्रकृष्ट पदार्थोंका कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा ? विप्रकृष्ट पदार्थ होते हैं तीन प्रकारके—जो देशमे दूरवर्ती हो अर्थात् किसी अगम देशके पदार्थ हों जो कालसे दूरवर्ती हो अर्थात् बहुत भूत और भविष्यकी बात हो तथा जो स्वभावसे दूरवर्ती हो, अत्यन्त सूक्ष्म हो ऐसे दूरवर्ती, अन्तरित, सूक्ष्म पदार्थोंका कोई आत्मा कितना भी निर्मल हो जाय पर, प्रत्यक्ष नहीं कर सकता है। जैसे कि नेत्रोंकी कितनी भी निर्दोषता हो, कोई रोग न रहे नेत्रमें जिसमे तिमिर आदिक दोष अथवा मोतिया बिन्दु आदिक रोग सब कलंक पटल भी दूर हो गए तो भी नेत्र दूर देशके, दूर कालके और परमाणु जैसे सूक्ष्म पदार्थोंको दृष्टि नही रख सकते। तो जैसे नेत्र दूरवर्ती पदार्थोंका प्रत्यक्ष करते हुए प्रतीत नही होता है इसी प्रकार ज्ञान कितना भी निर्दोष हो जाय फिर भी वह समस्त अर्थोंका प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ नही हो सकता। यह शका मीमांसक सिद्धान्तके अनुसार है। उनका कहना है कि नेत्र कितने ही निर्मल हो जायें मगर नेत्रोंमे जितनी योग्यता है उस माफिक ही तो योग्य पदार्थोंका नेत्र प्रत्यक्ष कर सकेंगे। अथवा और दृष्टान्त लीजिये ऐसा सूर्य जिसपर न कोई राहुकेतुका उपद्रव हो, न मेघपटल आदिक आडे आये हो, बिल्कुल स्वच्छ आकाश, पर, वस्तुके आवरणसे रहित होनेपर भी सूर्य सारे विश्वको तो प्रकाशित नही कर सकता, अपने योग्य और वर्तमान अर्थोंका ही प्रकाशित कर सकेगा। अथवा उदय होनेपर क्या दूरवर्ती देश और जितने भी क्षेत्र हैं, क्या सब क्षेत्रों में वह सूर्य पदार्थोंको प्रकाशित कर सकता है ? नही। और भूत भविष्यके पदार्थोंको

क्या आजका सूर्य प्रकाशित कर सकता है ? नहीं । इसी प्रकार किसीका ज्ञान कितना निर्मल हो गया हो फिर भी वह दूर देशके, दूर कालके और अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थोंको प्रकाशित नहीं कर सकता है । जीवमें रागादिक भावोंका उपद्रव कुछ भी न रहा हो, ज्ञानावरण आदिक द्रव्यकर्मरूप कलंक भी सब दूर हो गए हों फिर भी ज्ञान अपने योग्य पदार्थोंको ही जानेगा, भूत भविष्यके, दूर देशके और अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओंकी बातको प्रत्यक्ष नहीं कर सकता है । कोई मुक्त आत्मा भी हो गया, लेकिन मुक्त आत्मा होनेपर वह केवल कुछ पदार्थोंके जाननेमें ही प्रमाणभूत रहेगा । वेदवाक्योंमें जो लिखा है और धर्मकी जो प्रमाणता वेदवाक्योंसे आती है उस धर्म आदिकके विषयमें मुक्त आत्मा प्रमाण न होगा । तो कितना भी सूक्ष्म ज्ञान करने वाला आत्मा बन जाय तो भी देखिये ! सबको तो न जान सका । धर्मादिकमें तो वेदवाक्य ही को प्रमाणता है । तो धर्मादिकपर मुक्ति जीवोंका अधिकार तो न रहा । इससे सिद्ध है कि समस्त उपद्रव टल जानेपर भी, कर्म कलंक दूर हो जानेपर भी मुक्त आत्मा समस्त भावोंको, पदार्थोंको जाननेमें समर्थ नहीं हो सकता । इस प्रकार जब सबको जाननेका सामर्थ्य न रहा तो सबको जाननेका स्वभाव न रहा । तो यों इससे फिर दोष स्वभाव सिद्ध हो ही जायगा ।

आत्माके असर्वज्ञत्वकी आशङ्काका पञ्चम कारिका द्वारा समाधान—यहाँ मीमांसकसिद्धान्तानुयायी यह शंका रख रहे हैं कि कोई आत्मा कितना ही निर्मल हो जाय, उसके आवरण भी सारे हट जायें तो भी वह सारे विश्वको, परोक्षभूत अर्थको न जान सकेगा । मुक्त आत्मा भी हो गया लेकिन धर्म पुण्य पाप तत्त्वके बारेमें वेद का ही अधिकार है । पुण्य पाप धर्मादिको मुक्त आत्मा नहीं जान सकता सो पुण्य पाप के सम्बन्धमें मुक्त आत्मा प्रमाणभूत नहीं है । वे तो आनन्द स्वभाव वाले हैं । सो मुक्त आत्मा हो जानेका अर्थ इतना है कि वे अपने आनन्दमें डूबे रहें । पर निर्मल होनेसे कर्म कलंक दूर होनेसे मुक्त आत्माओंमें यह कला न आयगी कि वे पुण्य पाप धर्मादिक परोक्ष अर्थके भी ज्ञाता बन जायें । हाँ यह बात अवश्य है कि मुक्त आत्माओंमें आनन्द पूरा प्रकट है और आनन्द स्वभावका वहां प्रतिषेध नहीं है । श्रुतिवाक्यमें भी यह उपदेश किया है कि मुक्त आत्माके बारेमें केवल पुण्य पापकी जानकारीका निषेध है । मुक्त आत्मा जो कर्मोंसे छूट गए, जिन्हें कोई सिद्ध भगवान कहते हैं, कोई मुक्त कहते हैं, तो वे पुण्य पापकी बातको नहीं जान सकते और धर्मकी बात छोड़कर दुनियाकी सारी बातें जानें, उनका हम निषेध नहीं करते । इस प्रकार मीमांसक सिद्धान्तके अनुयायी लोग सर्वज्ञके विषयमें शंका रख रहे हैं । तो इस प्रकार शंकाशील व्यक्तियोंको यह बतानेके लिए कि वास्तवमें कोई आत्मा सर्वज्ञ ही हो जाता है । उससे फिर कोई पदार्थ जाननेसे बचे नहीं रहते, इसी बातको स्वामी समंतभद्र आचार्य कहते हैं ।

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा ।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥ ५ ॥

किसी परमपुरुषमें समस्त पदार्थोंकी प्रत्यक्ष विषयताकी सिद्धि— सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ किसी न किसीके प्रत्यक्षभूत हैं, क्योंकि अनुमेय होनेसे जो जो चीज अनुमानमें आती है वह चीज किसीके द्वारा प्रत्यक्षमें भी होती है। जैसे किसी कमरेमेंसे (रसोई घरसे) ऊपर धुवां निकल रहा है तो उस धुवांको देखकर लोग यह अनुमान करते हैं कि यहाँ आग जल रही है क्योंकि धुवां उठनेसे। तो दूरसे रहने वाले पुरुषने तो उसका अनुमान किया लेकिन जिस अग्निका किसीने अनुमान किया उस अग्निको कोई प्रत्यक्ष भी जान रहा है। जो रसोई घरमें बैठे हुए पुरुष हैं वे उसे प्रत्यक्ष भी जानते हैं। तो इसी प्रकार जब सूक्ष्म पदार्थ याने परमाणु, अन्तरित पदार्थ राम रावण आदिक महा पुरुष जो भूतकालमें हो गए, और दूरवर्ती पदार्थ हिमवान पर्वत, विदेह क्षेत्र स्वर्ग नरक आदिक पदार्थ ये किसी न किसी आत्माके द्वारा प्रत्यक्षमें आये हुए हैं इन्हें कोई साधु जानता है क्योंकि ये अनुमेय हो रहे हैं। अनुमानमें आते हैं और आगम प्रमाणसे भी प्रसिद्ध हैं। इस तरह इस प्रयोग द्वारा यह भी सिद्ध हो जाता है कि कोई आत्मा अवश्य ही सर्वज्ञ है। परोक्षभूत पदार्थ तीन प्रकारके होते हैं जो आँखों नहीं दिख रहे, जो इन्द्रिय द्वारा ज्ञानमें नहीं आ रहे ऐसे पदार्थ तीन तरह के हैं– एक तो होते हैं सूक्ष्म अर्थात् स्वभाव विप्रकर्षी। जो स्वभावसे अपने स्वरूपमें बहुत गहरे हैं वे परमाणु आदिक जो कुछ पदार्थ होते हैं दूसरे विप्रकर्षी है अन्तरित। याने कालविप्रकर्षी। जो बहुत लम्बे भूत समयमें हुए हैं, जैसे राम रावण आदिक पुरुष तथा जो भविष्यकालमें होंगे वे भी अन्तरित हैं। जो पदार्थ होते हैं दूरवर्ती याने देशसे बहुत लम्बे जाकर जो पदार्थ रहते हैं जैसे हिमवान पर्वत, मेरुपर्वत, विदेह क्षेत्रादिक ये कहलाते हैं दूरवर्ती विप्रकृष्ट, ऐसे ये तीन प्रकारके परोक्षभूत पदार्थ किसी आत्माके ज्ञानमें प्रत्यक्षभूत हुए हैं क्योंकि वे अनुमेय हैं, जैसे अग्नि आदिक अनुमेय, पदार्थ जिनका अनुमान बना है और साधन द्वारा जिनका साध्य सिद्ध करना है ऐसा पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है। इस प्रयोग द्वारा सर्वज्ञके सद्भावकी सिद्धि भली प्रकार हो जाती है।

सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंके स्वरूपके सम्बन्धमें दो विकल्प उठाकर मीमांसकों द्वारा प्रथम विकल्पमें सिद्धसाध्यताका कथन—अब यहाँ मीमांसक शंका करते हैं कि यह बतलावो कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ जैसा कि यहाँके लोगोंको प्रत्यक्षभूत नजर आता है। छोटा कण पतला धागा आदिक सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थ जैसे कि यहाँ किसीको प्रत्यक्ष हुए देखे गए हैं, क्या इस ही तरहके सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका अनुमेयपना बताकर किसीके प्रत्यक्षभूत है, यह सिद्ध कर रहे हो या सूक्ष्म आदिक पदार्थ यहाँ किसीको प्रत्यक्ष है उससे विलक्षण याने जो यहाँ किसीको भी नजर ही नहीं आ सकता ऐसा सूक्ष्म आदिक पदार्थ अनुमेयत्व हेतु देकर किसी न किसीके प्रत्यक्षभूत है, यह सिद्ध कर रहे हो? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि कहो कि जैसे सूक्ष्म पदार्थ यहाँ समझमें आते हैं इसी तरहके सूक्ष्म पदार्थोंके सम्बन्धमें अनुमेयत्व हेतु देकर सिद्ध

किया जा रहा है कि ये सूक्ष्मादिक पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत है। इस तरह यदि प्रथम विकल्पकी बात लेते हो तब तो सिद्ध साध्यता है, हम भी मानते हैं कि ऐसे सूक्ष्म पदार्थ जैसे कि केशके हजार टुकडे कर दिया तो भी ये किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं। कुछ भी मानते हैं ऐसे अन्तरित पदार्थ जैसे हमारे बाबा, हमारे बाबा कि बाबा, उनकी भी हम सिद्धि मानते हैं कि किसी न किसीके द्वारा वे प्रत्यक्षमे ज्ञात हुए हैं, और दूरवर्ती पदार्थ जैसे हिमालय अमेरिका आदिक देश ये भी किसी न किसी के प्रत्यक्ष हैं। तो जैसे सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ यहाँ हम आप लोग प्रत्यक्षमे ज्ञात हुए नजर आते हैं, इस तरहके ही सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको किसीके प्रत्यक्षभूत सिद्ध किया जा रहा है। तब तो हमें कोई आपत्ति नही। यह तो सिद्ध बात है।

सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंके स्वरूपमे उठाये गये दो विकल्पोंमे द्वितीय विकल्प माननेपर हेतुके अप्रयोजकत्वका मीमाँसकों द्वारा कथन—यदि दूसरा विकल्प लेते हो कि जैसे सूक्ष्म आदिक पदार्थ हम लोगोंको यहाँ प्रत्यक्ष हुए देखे गए हैं उनसे भिन्न प्रकारके सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं यह सिद्ध करना चाह रहे। तो इस विकल्पमें तो अनुमेयत्व हेतु अप्रयोजक हो गया याने हेतु अपने साध्यको सिद्ध करनेमे असमर्थ है। जैसे कि हम लागोंके खिलाफ प्रतिवादियोंने यह बात रखी थी कि ये पृथ्वी पर्वत आदिक किसी बुद्धिमानके कारणसे बने हुए हैं, क्योंकि इन सबकी कोई विशिष्ट रचना है, इसमें आकार हैं जो जो आकारवान पदार्थ होते हैं वे किसी न किसीके द्वारा रचे गए होते हैं, जैसे घडा कपडा आदिक पदार्थ। तो यहाँ पर्वत जमीन आदिकमें भी चूंकि आकार पाये जा रहे हैं इस कारण ये भी किसी बुद्धिमानके द्वारा याने ईश्वरके द्वारा रचे गए हैं। ऐसा जब हम मीमासकोंने अनुमान बनाया था तो उस सम्बन्धमे प्रतिवादियोंने यह कहकर खण्डन किया कि जैसे आकार वाले पदार्थ यहाँ कुम्हार जुलाहा आदिकके द्वारा बनाये गए नजर आते हैं क्या ऐसे ही आकार वालेकी बात कर रहे हो ? या भिन्न प्रकारकी बात कह रहे हो? भिन्न प्रकारकी बात कहते हो तो अप्रयोजक हेतु हो गया। ऐसा वहाँ उलाहना दिया था, वही उलाहना यहाँ है। अनुमेय होनेपर भी जाने तो जायेंगे ऐसे ही पदार्थ जैसे कि यहाँ हम आप लोगोंको प्रत्यक्ष हो रहे हैं उनसे विलक्षण सूक्ष्मादिक पदार्थ कैसे जाने जायेंगे ? तो वहाँ सन्देह होनेपर हेतु साध्य सिद्ध करनेमे असमर्थ रहता है।

सर्वज्ञसाधक प्रकृत अनुमानमे धर्मीकी अप्रसिद्धताका मीमासकों द्वारा कथन—दूसरा दोष सर्वज्ञसाधक अनुमानमें यह है कि यहाँ धर्मीकी ही सिद्धि नही है। अनुमानमें धर्मी बनाया गया है सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको कि ये पदार्थ किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत होते हैं। सो पहिले इन पदार्थोंकी सत्ता ही सिद्ध नहीं है, तो जब पक्ष ही सिद्ध नही तो उसके बारेमे कुछ साध्य सिद्ध करना यह तो अयुक्त बात है। परमाणु आदिक एक प्रदेशी सूक्ष्म पदार्थ कहाँ सिद्ध हैं ? यहाँ तो सब

कुछ स्कंध ही नजर आ रहे हैं। इसी प्रकार दूरवर्ती पुरुष राम, रावण आदिक कहाँ प्रसिद्ध हैं ? यों तो बहुतसे उपन्यास भी बना लिए जाते हैं तो क्या वे प्रसिद्ध हो गए? कोई शिक्षा ग्रहण करानेके लिए कथा बनायी जा सकती है। तो वह भी अप्रसिद्ध है। दूरवर्ती पदार्थ स्वर्ग नरक आदिक पहिले प्रसिद्ध ही कहाँ हैं ? जब वे प्रसिद्ध हो लें तब उनके बारेमें यह कहना कि ये किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं तब तो बात बने। किन्तु जब यह अप्रसिद्ध ही है तो, इसमें यह साध्य सिद्ध करना कि प्रयोजनभूत सारे पदार्थ किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं। यह बात कैसे सिद्ध की जा सकती है ? मीमांसकों को उक्त शंकापर उत्तर देते हैं कि ऐसी शंका करना अयुक्त है, क्योंकि विवादापन्न अर्थात् जिसके बारेमें अभी विवाद उठ रहा है ऐसे सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंमें यह बात अप्रसिद्ध है कि यह किसीके प्रत्यक्ष है। तो अप्रसिद्धको ही तो सिद्ध करनेकी आवश्यकता होती है क्योंकि अप्रसिद्ध ही साध्य बनता है। सिद्ध हो तो उसको साध्य बनानेकी आवश्यकता ही क्या ? पहिले यह बात बने कि जो परमाणु स्वर्ग, नरक हम लोगोंके प्रत्यक्ष हो जायें और फिर उनमें अनुमान बनायें कि ये सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ किसीके द्वारा प्रत्यक्ष अवश्य हैं तो ऐसा अनुमान बनानेकी आवश्यकता ही कहाँ है ? कोई पुरुष हाथपर अग्नि धरे हुए चल रहा हो और वहाँ यह अनुमान बनायें कि अग्नि गर्म होती है हेतु कुछ दे तो अनुमानकी वहाँ आवश्यकता क्या ? वह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है। इसी तरह सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको पहिले प्रत्यक्षभूत बताकर फिर साध्य सिद्ध करना चाहते हो कि किसीके यह प्रत्यक्ष है सो पहिले तो तुम हीने प्रत्यक्ष कर लिया। जब स्पष्ट प्रत्यक्षरूप हो गए तब उनमें किसीके द्वारा प्रत्यक्ष है ऐसा साध्य बनानेकी आवश्यकता ही क्या है ? देखो धर्म पुण्य पाप आदिक परोक्षभूत पदार्थोंके सम्बन्धमें जब विवाद उठा है कि ये किसीके प्रत्यक्ष हैं या नहीं तो मीमांसक कहते हैं कि ये किसीके प्रत्यक्ष नहीं हो सकते। और, सर्वज्ञवादी कह रहे हैं कि पुण्य पाप आदिक पदार्थ भी किसीके प्रत्यक्ष हैं। तो जिनके सम्बन्धमें वादी और प्रतिवादीको विवाद है, कोई सिद्ध मानता है कोई नहीं मानता, तो विवादापन्नको ही तो यह कहा कि प्रत्यक्ष है। यह सिद्ध किया जाना युक्तिसगत है। तो जब विवादापन्नको साध्य बनानेकी विधि है जिस बातमें विवाद उठ रहा हो उस ही को तो साध्य बनाते हो तो जब विवादापन्न पदार्थको साध्य बनानेकी पद्धति है तो धर्मी असिद्ध कहाँ रहा ? उसे साध्य रूपमें लाया तो आ रहा। सर्वथा असिद्धकी मान्यता दोगे। सो जो असर्वज्ञवादी हैं मीमांसक सिद्धान्तानुयायी वे भी बतायें कि धर्म पुण्य पाप सिद्ध हो रहे हैं तो ऐसे ही सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ, सिद्ध धर्मीके बारेमें साध्य बनाया जा रहा है कि ये किसीके प्रत्यक्षभूत हैं।

सन्निवेशविशिष्टत्वकी विभिन्नता होनेकी भांति अनुमेयत्वमें विभिन्नता न होनेसे अनुमेयत्व हेतुके अप्रयोजकत्वका अभाव—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि इस तरह पर्वत आदिक जो कि बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं इस रूपसे विवादापन्न

हैं, तो उनको साध्य बना लेनेपर कि ये पृथ्वी पर्वत आदिक किसी बुद्धिमानके द्वारा बनाये गए हैं। जब इनका यह साध्य उपस्थित किया तो वहाँ क्यों बताया गया कि इस अनुमानमें जो आकार विशिष्टता हेतु दिया गया वह अप्रयोजक है। वह भी प्रयोजक बन जायगा। जब यहाँ अनुमेयत्व होनेसे इस हेतुके द्वारा सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको किसीके ये प्रत्यक्ष हैं यह सिद्ध किया जा रहा तो इसी तरह पर्वत जमीन आदिक भी आकार विशेषसे विशिष्ट है इस कारण ये सब किसी बुद्धिमानके द्वारा रचे गए हैं, इसकी सिद्धि क्यों नहीं मान लेते ? उत्तरमें कहते हैं कि सन्निवेश विशिष्टत्व हेतुमें स्वभाव भेद पड़ा हुआ है इस कारण अनुमेयत्व हेतुकी समानता देकर इसे प्रयोजक नहीं कह सकते। वह किस तरहसे कि देखो ! जिस प्रकारका नये मकान आदिकमें आकार विशेष पाया जाता है और इस नये मकान आदिकके बारेमें यह न मालूम होकर भी कि किस कारीगरने बनाया उसके बनाने वालेका दर्शन और पता न होनेपर भी यह किसीके द्वारा बनाया गया है यह बात तो लोग जानते ही हैं। तो वैसा ही आकार जिस टूटे फूटे मकानमें पाया जाता है तो वहाँ इस बातका अनुमान बन जाता है कि किसी बुद्धिमानके द्वारा कारीगरके द्वारा यह बनाया गया है। जसे नये मकान कारीगरोंके द्वारा बताये जाते हैं तो वह पुराना टूटा मकान भी कारीगरोंके द्वारा ही बनाया गया है। यह अनुमान वहाँ तो बन जाता है लेकिन इन मकानादिको से भिन्न जैसा कि कारिगरोंने रचा है रचते हैं ऐसे आकारसे बिल्कुल भिन्न पर्वत मकान आदिकमें जो आकार प्रतीत होता है उन आकारोंसे यह ज्ञान न बन सकेगा कि इसे भी किसी बुद्धिमानने बनाया है, और ऐसा तो स्वयं मीमांसकोंने किसी प्रसगमें कहा भी है, पर इस प्रसगमें दिया गया अनुमेयत्व हेतु इस तरहका नहीं है। जैसे ये नये मकान, पुराने मकानके सन्निवेश व पर्वत आदिके सन्निवेश विभिन्नताको लिए हैं, इस तरह अग्निकी अनुमेयता, सर्वज्ञकी अनुमेयता आदि अनुमेयत्व विभिन्न नहीं, अनुमेयपनेमें स्वभावभेद नहीं पड़ा।

सन्निवेश विशिष्टत्व हेतुकी अप्रयोजकता व अनुमेयत्व हेतुकी प्रयोजकताका विवरण— जिस प्रकार सन्निवेश विशिष्ट हेतुमें स्वभाव भेद पाया जाता है कि नये मकान पुराने मकान इनमें आकारकी सदृशता है और नये मकान चूँकि बुद्धिमानके द्वारा किए गए हैं उससे सिद्ध है कि ये जीर्ण मकान भी बुद्धिमानके द्वारा किए गए हैं लेकिन इनसे विलक्षण आकार है पर्वत नदी आदिकका जिनके किये जानेका अनुमान नहीं बनता तो वह सन्निवेश विशिष्टपनेमें स्वभावभेद हो गया, उस प्रकारसे यहाँ अनुमेयपनेमें स्वभावभेद नहीं है। चाहे धूम साधनके द्वारा अग्नि साध्यका अनुमान किया जाय, चाहे यहाँ अनुमेयत्व साधनके द्वारा विप्रकर्षी पदार्थोंका किसी परम पुरुष के प्रत्यक्ष विषयताका अनुमान किया जाय, अनुमेयपना दोनोंमें ही समान है। साध्यके अविनाभावका नियम रखने वाला ही साधन होता है। तो ऐसे लक्षण वाले साधनसे जो अनुमान ज्ञान उत्पन्न होता है उसमें जो कुछ अनुमेयपना है वह अनुमेयपना

समस्त साध्योंमें समान है। चाहे अग्निका अनुमान किया जा रहा हो चाहे पुण्य पाप आदिकका अनुमान किया जा रहा हो च हे विप्रकर्षी पदार्थोंमे किसीके प्रत्यक्षविषयताका अनुमान किया जा रहा हो इन सब अनुमानोमे साधन देकर जो अनुमेयता बनती है वह तो सर्वत्र समान है, भिन्न नही है। जिससे कि कोई अनुमेयपना तो प्रयोजक बने और कोई अनुमेयपना अप्रयोजक बने याने किसी अनुमानकी सिद्धि माने और किसी की सिद्धि न मानें यह विभाग नही बन सकता है।

विप्रकर्षी पदार्थोंकी अनुमेयताका उच्छेद करने वालोंके यहाँ स्वकीय इष्ट अनुमानके भी उच्छेदका प्रसग—और भी देखिये कि स्वभाव विप्रकर्षी याने परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ काल विप्रकर्षी अर्थात् अतिभूत व भविष्यमे होने वाले महापुरुष और देश विप्रकर्षी याने दूर देशमे रहने वाले क्षेत्र पर्वत आदिक इन सबकी अनुमेयता असिद्ध है, ऐसा कहते हुए कोई दार्शनिक मीमासक अथवा बौद्ध अपने ही अनुमानका खण्डन कर रहे हैं। विप्रकर्षी पदार्थोंकी किसीके प्रत्यक्ष विषयताका खण्डन करनेका अभिप्राय रखने वाले दार्शनिकोके यहाँ स्वयके माने हुए तत्त्वका भी अनुमान नही बन सकता है। जैसे क्षणिकवादमे यह अनुमान किया गया है कि सब कुछ क्षणिक है क्यो कि सत्त्व होनेसे। तो यहाँपर यह व्याप्ति बनानी पडेगी ना कि जितने जो कुछ भाव है, पदार्थ हैं सत् हैं वे सब क्षणिक हैं भाव होनेसे। इसमें सूक्ष्म पदार्थोंके विप्रकर्षी होनेसे यहाँ व्याप्ति सिद्ध नही होती। व्याप्ति सिद्ध यो नही होती कि जितने दुनिया भर के सत् पदार्थ हैं वे सभी प्रत्यक्षभूत तो नही विप्रकर्षी तो हैं ही। कोई पदार्थ अति अति सूक्ष्म है कोई पदार्थ अति दूर देशमे हैं कोई पदार्थ अतिभूत भविष्यका है इनमे अनुमेयपना माना नही तो सत्ता कहाँ रही ? फिर इसके साथ क्षणिकपनेकी व्याप्ति असिद्ध है और इसी कारण वे अपने माने हुए प्रकृत सिद्धान्तका उपसहार नही कर सकते। जैसे यह कहना कि जो कुछ भी भाव है वह क्षणिक होता है और भाव है यह भी यह अत्यन्त क्षणिक है। उपसहार बन ही नही सकता, क्योकि दूरवर्ती तत्त्वो को अनुमेय माना ही नही। तब किसी तरह उनका सत्त्व हो सिद्ध नही हो सकता। जब सत्त्व सिद्ध ही न हो सकेगा तब उसको साधन देकर क्षणिक साध्यके प्रति व्याप्ति बनाना कैसे युक्त हो सकता ? और भी समझिये जो विप्रकर्षी पदार्थ हैं सूक्ष्म अतरित दूरवर्ती उनको तो अनुमेय जानते नही और जो अविप्रकर्षी पदार्थ है याने सामने हैं, स्थूल हैं अभी है उनका अनुमान करना व्यर्थ है तब फिर अनुमानका ही उच्छेद हो गया। किसका अनुमान करना ? परोक्षभूत पदार्थका तो अनुमान यो नही बन सकता कि परोक्षभूत पदार्थोंके अनुमेयपनेका निराकरण किया है और वतमान निकटवर्ती स्थूल पदार्थोंका अनुमान यो अनर्थक है कि वह सामने ही है प्रत्यक्षभूत ही है। उनका अनुमान किसलिए किया जायगा ? तब जो लोग सत्त्वहेतुका अनित्यपनेके साथ व्याप्ति मानते है या व्याप्ति मानना चाहते है अपने सिद्धान्तके समर्थनके लिए उनके यहाँ यह पूर्णरूपसे सिद्ध हो जायगा कि जो विप्रकर्षी पदार्थ है सूक्ष्म दूर देशके बहुत भूत भवि-

क्योंकि वे सब अनुमेय हैं। तब कोई विरुद्ध बात ही नहीं देखते हैं। मीमांसक लोग भी कृतकत्व हेतुसे अनित्यपना सिद्ध करते हैं। वहाँ भी यही बात है कि साधनकी साध्यके साथ व्याप्ति बनाना वे चाहते हैं तो उनको समस्तरूपसे अनुमेयपना मानना ही पड़ेगा। इस उक्त प्रतिपादनसे यह निर्णय हुआ कि जो सूक्ष्म पदार्थ हैं अथवा भूतकालभावी पदार्थ हैं अथवा दूर देशके पदार्थ हैं वे सब किसी न किसी परम पुरुषके द्वारा प्रत्यक्षभूत हैं क्योंकि अनुमेय होनेसे। और इस प्रकार सर्वज्ञकी सिद्धि हो ही जाती है।

असर्वज्ञवादियों द्वारा विप्रकर्षीकी अनुमेयता असिद्ध माननेपर भी अनुमानोच्छेदसे अप्रसंगका वर्णन—अब यहाँ मीमांसक और मीमांसक आदिक असर्वज्ञवादी शंका करते हैं कि बात इस प्रकार है कि कोई पदार्थ तो प्रत्यक्ष होते हैं जैसे घटपट आदिक, ये एक दम स्पष्ट प्रत्यक्ष हैं कोई पदार्थ अनुमेय होते हैं जिसे जाना, साध्य साधनको प्रत्यक्षसे जाना था, उनका अविनाभाव भी अच्छी तरहसे समझ रखा था अब किसी समय वही साधन दिख रहा है तो वहाँ साध्यका ज्ञान कर लिया जाता है तो यों कुछ पदार्थ अनुमेय होते हैं और कुछ पदार्थ आगम मात्रसे गम्य होते हैं जो हमेशा स्वभाव विप्रकर्षी हैं, अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म हैं ऐसे पुण्य पाप आदिक ये केवल आगम मात्रसे गम्य हैं, क्योंकि पुण्य पाप आदिक का कोई भी प्रमाता न प्रत्यक्ष कर सकता है न अनुमान कर सकता है। सभी आत्माओं द्वारा पुण्य पापके सम्बन्धमें किसी भी प्रमाण द्वारा जानकारी नहीं बन सकती सो यह केवल आगम मात्रसे ही गम्य है। इस विषयका श्रुति वाक्यमें स्पष्ट कहा है कि जब पुण्य पापको सभी आत्मा प्रत्यक्ष आदिक किसी प्रमाणसे नहीं जान सकते तब पुण्य पाप केवल आगमगम्य ही हैं यह बात सिद्ध होती है। इस कारण धर्मादिक याने पुण्य पाप आदिक पदार्थोंका अनुमेयपना बता रहे हैं हम लोग, फिर भी हम अनुमानका उच्छेद नहीं कर रहे हैं। अनुमान तो अनुमेय पदार्थोंसे व्यवस्थितरूपसे बन ही जाता है। हाँ पुण्य पाप तत्त्व ऐसे हैं कि जिनको किसी समय किसीने कोई प्रत्यक्षसे लिया ही नहीं तो वे आगम मात्रसे गम्य हैं उनका जाननहार कोई सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

पुण्य पाप आदि विप्रकर्षी पदार्थोंकी अनुमेयता न माननेपर शंकाकारके अभीष्ट सिद्धान्तका व्याघात—अब उक्त शंकाका समाधान करते हैं कि यह बात कहना कि पुण्यपाप केवल आगमके गम्य हैं यह बात युक्ति संगत नहीं। पुण्य पाप भी किसी दृष्टिसे अनुमेय हैं। जैसे पुण्य पापके सम्बन्धमें स्वयं मीमांसकोंने कहा है कि वे अनित्य हैं, तो अब पुण्य पाप आदिकमें अनित्य स्वभाव पड़ा है, यह पर्याय दृष्टिसे वर्णन किया जाता है। और, पर्यायपना हेतु देकर पुण्यपापमें अनित्यता सिद्ध की जाती है तो देखो अनुमेय बन गया ना। तब यह कहना कि पुण्य पाप केवल आगममात्रसे ही गम्य होते हैं यह बात अयुक्त है। पुण्य पाप आदिकमें अनुमेयपना प्रसिद्ध है। जितने कोई भी भाव हैं, पर्याय नामक कोई भी तत्त्व हैं वे सब अनेक क्षणस्थायी क्षणिक हैं, अर्थात्

ऐसे क्षणिक तो नहीं कि एक-एक समयमे नष्ट हो जायें किन्तु अनेक क्षणोंमें रहकर क्षणिक हैं क्योंकि पर्याय होनेसे । तो सभी पर्याय नामक भाव क्षणिक हैं-पर्याय होनेसे जैसे घट पट वगैरह । तो इसी प्रकार पुण्य पाप भी पर्याय हैं, अतएव वे भी अनित्य हैं । यों भी मीमासकोंने स्वय ही किसी प्रमाणसे पर्यायत्वके साथ अनित्यकी व्याप्ति सिद्ध की है और फिर प्रकृतका उपसहार किया है । तो इससे ही यह सिद्ध है कि पुण्य पाप कथचित् अनुमेय हैं, एक आगम मात्र गम्य हो सो बात नहीं है, क्योंकि यदि क्षणिकत्व और पर्यायपनेकी व्याप्ति न मानी जाय तो पुण्य पाप आदिकमें यह पर्याय है इसलिए क्षणिक है ऐसा उपसहार नहीं बन सकता, अपने सिद्धान्तका समर्थन नहीं बन सकता ।

विप्रकर्षी पदार्थोंके अनुमेयत्वकी असिद्धि व अविप्रकर्षी पदार्थोंके अनुमानकी निरर्थकता कहने वालोंके यहाँ अविप्रकर्षी सुखादिकोंके अनुमानके अनर्थकत्वकी अपरिहार्यता—विप्रकर्षी पदार्थोंकी अनुमेयता न माननेपर याने जो विप्रकर्षी पदार्थ हैं पुण्य पाप, उनमें तो अनित्यपनेका अनुमान न बन सका और, जो सदैव अविप्रकर्षी हैं वर्तमान हैं, स्थूल है उनमें अनुमान करना व्यर्थ है इस प्रकार कह देने वाले मीमासक जो निकट हैं सुख आदिक, उनके अनुमानकी अनर्थकताको कैसे दूर कर सकते हैं ? अब तो यह सिद्धान्त बना रखा था ना कि जो विप्रकर्षी हैं, सूक्ष्म है अतिदूरके हैं वे तो अनुमेय होते नहीं और जो अविप्रकर्षी हैं याने निकट हैं, वर्तमान हैं, स्थूल हैं, उनमें अनुमान करना व्यर्थ है तो यह बताओ कि जो सुख दुखका अनुभव होता है वह तो निकट ही है ना, क्योंकि मनके द्वारा जान लिया जाता है, उनका मानसिक प्रत्यक्ष होता है, तो ऐसे अतिनिकट सुख आदिकका अनुमान करना भी व्यर्थ बन जायगा यहाँ मीमासक आक्षेपके समाधान शका करते हैं कि जो निरन्तर निकट है उनका मान करना अनिष्ट है इसलिए दोष नहीं आता । सुख आदिक निरन्तर पास रहते है और मानसिक प्रत्यक्षसे जाने जाते हैं, इस कारण उनका अनुमान करना व्यर्थ है। तब इससे सारे अनुमानोंकी अनर्थकताके दोषकी बात न आयगी । तो उत्तर पूछते हैं कि तब फिर यह बताओ कि यह अनुमान प्रमाण फिर कहाँ फिट बैठ पायगा । क्योंकि, अतिदूरवर्तीको तो आप अनुमेय बताते नहीं और अतिनिकटवर्तीको अनुमेय बनानेको अनिष्ट और अनर्थक कहते हैं तब फिर अनुमान लगाया कहाँ जायगा ?

कदाचित् अविप्रकर्षी (दूरवर्ती) होनेपर उसकी अनुमेयताकी सिद्धि माननेपर शाश्वत् परोक्षभूत बुद्धिके अनुमानकी अनुपपत्तिका प्रसंग—यहाँ मीमासक कहते हैं कि अनुमान वहाँ लगेगा जहाँ कभी तो चीज निकट है, प्रत्यक्षगोचर है और किसी समय वह वस्तु दूर देश कालमे है तो चूँकि उस वस्तुका, साधनका अविनाभाव पहिले परख लिया था । तब साधन देखकर साध्यका ज्ञान किया जाता है और वहाँ अनुमान सार्थक बनता है । ऐसी बात रखनेपर समाधानमे कहते है कि फिर इस तरहसे तो

जो निरन्तर परोक्षभूत है, जिसका कभी साक्षात्कार न हो, ऐसी बुद्धिका अनुमान कैसे बन सकेगा जिससे कि अपका यह सिद्धान्त शोभा पाये ? जैसे कि श्रुति वाक्यमें कहा है कि पदार्थके जान लिए जानेपर अनुमानसे बुद्धिको जान लिया जाता है, जैसे किसीने पदार्थको जान लिया तो अब हम अनुमानसे समझ लेते हैं कि इसमें बुद्धि है क्योंकि इसने पदार्थको जान लिया। सो यहाँ अनुमान बना रहे ना और अनुमान कर रहे हो निरन्तर परोक्ष रहने वाली बुद्धिका तो यहाँ अनुमान कैसे बन सकेगा जब कि इन परोक्षभूत पदार्थोंका कोई अनुमान ही नहीं हो सकता, यह सिद्धान्त बना रहे हो।

अर्थापत्तिसे बुद्धिकी प्रतिपत्ति माननेपर अर्थापत्तिसेसे पुण्य पापकी प्रतिपत्ति की सिद्धि—मीमांसक उक्त अभिप्रायके समाधानरूपमें कहते हैं कि अर्थापत्तिसे बुद्धिका ज्ञान हो जायगा अतएव यह आक्षेप करना कि निरन्तर परोक्षभूत बुद्धिका अनुमान कैसे बनेगा ? यह आक्षेप अयुक्त है। इस शंकाका उत्तर देते हैं कि जिस प्रकार यहाँ अर्थापत्तिसे बुद्धिका ज्ञान मान लिया गया है इसी तरह अर्थापत्तिसे पुण्य पाप आदिक का भी ज्ञान मान लिया जाय। जैसे कि बाह्य पदार्थोंका परिज्ञान अन्यथा नहीं बन सकता था, इस अन्यथानुपपत्तिसे बुद्धिका ज्ञान किया गया है उसी प्रकार सुख दुःख अन्यथा नहीं बन सकते थे इस कारणसे पुण्य पाप आदिकके सद्भावका ज्ञान किया जाता है, यह बात भी युक्त मान लेना चाहिए बुद्धि जैसे परोक्षभूत है और उन बुद्धि का परिज्ञान आप लोग इस तरह करते हैं कि मुझमें बुद्धि है अन्यथा घट पट आदिक बाह्य अर्थोंका ज्ञान नहीं बन सकता था। तो जैसे अपने परोक्षभूत बुद्धि पदार्थका अर्थापत्तिसे ज्ञान कर रहे हो इसी प्रकार यह भी ज्ञान कर लीजिए कि पुण्य पाप हैं अन्यथा सुख और आपत्तियाँ उत्पन्न न हो सकती थी। इस तरह पुण्य पाप आदिकका ज्ञान भी अर्थापत्तिसे बन गया तब यह बात तो न रही कि पुण्य पाप केवल आगम मात्रसे गम्य हैं, लो अनुमानसे भी अर्थापत्तिसे भी ये पुण्य पाप गम्य हो गए। यहाँ शंकाकार कहता है कि सुख और दुःख तो धर्म और अधर्मके अभावमें भी देखे जाते हैं। जैसे स्त्री, पुत्र आदिक मिले तो उनसे सुख हो गया। पुण्य पाप नहीं हैं, धर्म अधर्म नहीं हैं तो भी देखो ! सुख दुःख हो जाया करते हैं। तब पुण्य पापकी सिद्धि करनेमें जो अर्थापत्ति बतायी है वह तो क्षीण हो गयी, अर्थात् बुद्धि अर्थापत्तिसे जानी जाती है इसका निराकरण करनेमें जो पुण्य पापकी अर्थापत्ति बतायी है वह अर्थापत्ति निबल है। उत्तरमें कहते हैं कि जो यह कहा है कि सुख दुःख पुण्य पापके बिना भी हो सकते हैं सो बात अयुक्त है। यहाँ जो स्त्री, पुत्र आदिकके प्रसंगमें सुख दुःख नजर आ रहे हैं वे भी अन्तरङ्गमें तो पुण्य पापके कारणसे ही है, दूसरे सुख-दुःखकी उत्पत्तिमें दृष्ट कारणोंका व्यभिचार है। मानो स्त्री होनेपर भी किसीको सुख है किसीको दुःख है, वैभवसम्पदा होनेपर भी किसीको सुख है, किसीको दुःख है। तो यहाँ जो कारण दृष्ट हो रहे हैं सुख दुःखके उनमें व्यभिचार है, अर्थात् वे अविनाभाव रूपसे कारण नहीं बन पाते, इससे यह ज्ञान करना चाहिए कि सुख दुःखका कारण कोई अदृष्ट कारण ही है और वह है

पुण्य पाप। तो जैसे रूपादि ज्ञानकी अन्यथानुपपत्तिसे तुम इन्द्रिय शक्तिका ज्ञान करते हो अनुमान करते हो कि विशिष्ट रूपादिक ज्ञान हो रहे हैं इस कारण, मुझमे विशिष्ट इन्द्रियकी शक्ति है अन्यथा विशिष्ट रूपादिकका ज्ञान बन नहीं सकता था। तो जिस तरह यहाँ अर्थापत्तिसे बुद्धिका ज्ञान और इन्द्रियकी शक्तिका ज्ञान कर लेते हो उसी प्रकार अर्थापत्तिसे पुण्य पापका भी परिज्ञान किया जा सकता है।

अर्थापत्ति अनुमानसे अन्य न होनेके कारण अनुमानसे परोक्षभूत अर्थोंकी सिद्धिकी युक्तिसंगतता और विप्रकर्षी पदार्थोंके प्रत्यक्ष विषयताकी सिद्धि —और भी सुनो! अर्थापत्ति अनुमानसे कोई भिन्न चीज नहीं है। अनुमानका ही अर्थापत्ति नाम रख लिया है क्योंकि अर्थापत्तिमे यही तो दिखलाते हो कि यदि साध्य न होता तो साधन भी न होता। अर्थापत्तिकी दो पद्धतियां हैं—तथोपपत्ति और अन्यथानुपपत्ति। और इन दो पद्धतियोंमें अन्यथानुपपत्तिकी पद्धति प्रबल है। एवकारके निर्णयसे तथोपपत्तिकी पद्धति भी प्रबल है। तथोपपत्तिका अर्थ हुआ साध्यके होनेपर ही साधनका होना तथा अन्यथानुपपत्तिका अर्थ है-अन्यथा याने साध्य न होनेपर साधन का न होना। अन्यथानुपपत्तिमे यह ज्ञान हुआ कि साध्य न होता तो साधन न बन सकता था। जैसे अग्नि न होती तो धूम नहीं हो सकता था। सो अर्थात् धूम देखनेसे अग्निका ज्ञान हुआ तो यह अन्यथानुपपत्ति ही तो हुई। तो अनुमानमें अन्यथानुपपत्ति साधकतम है और अर्थापत्तिमें भी अन्यथानुपपत्ति साधकतम है। तथोपपत्ति तो अन्वय व्याप्तिका रूप है अन्यथानुपपत्ति व्यतिरेक व्याप्तिका रूप है। तो अर्थापत्ति भी अनुमान से कोई जुदा प्रमाण नहीं है। तो बुद्धिका अर्थापत्तिसे ज्ञान करना यों कहिये या यह कहिये कि बुद्धिका अनुमानसे ज्ञान करना इन दोनोंका एक ही तात्पर्य है। और, जब परोक्षभूत बुद्धिका अनुमान बन गया तो इससे यह सिद्ध है कि परोक्षभूत पदार्थोंका अनुमान बना लेना सही है। लोकके ये परोक्षभूत पदार्थ जो सूक्ष्म हैं अन्तरित हैं, दूरवर्ती हैं ऐसे विप्रकर्षी पदार्थोंका अनुमान बना लेना यथार्थ है और इस तरह यह सिद्ध होता है कि समस्त पदार्थ जिनमे कि सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती विप्रकर्षी पदार्थ हैं वे भी किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं। तो अनुमानसे जैसे निरन्तर परोक्ष रहने वाली बुद्धि आदिकमे अनुमेयता सिद्ध होती है उस ही प्रकार पुण्य पाप आदिकमें भी जो सदा विप्रकर्षी है अनुमेयता सिद्ध होती है और इस ही प्रकार सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंमे भी अनुमेयता सिद्ध होती है।

सत्त्व कृतकत्व आदि हेतुकी अनित्यत्व साध्यके साथ व्याप्ति सिद्ध करने वालोंके परोक्षभूत विप्रकर्षी पदार्थोंकी अनुमेयता मान लेनेकी अनिवार्यता—अब उक्त कथनसे यह स्पष्ट समझ लीजिए कि जो बौद्ध मीमांसक नैयायिक आदिक सत्त्व कृतकत्व आदिक हेतुकी अनित्यत्व आदिकके साथ व्याप्ति बनाना चाहते हैं तो उनके यहाँ यह सिद्ध पहिले ही हो गया कि समस्त रूपोंसे उन पदार्थोंमे अनुमेयता प्रसिद्ध है

सब कुछ क्षणिक है सत्व होनेसे। तो भला बतलावो कि परमाणु, रामरावण आदिक मेरु पर्वत आदिक ये तुमने प्रत्यक्ष किये या नहीं? नहीं किये। तो उन परोक्षभूत अर्थों मे तुम क्षणिकत्वको सिद्ध कर रहे हो तो यही तो सिद्ध हुआ कि परोक्षभूत अर्थ भी अनुमेय बनता है। नैयायिक कृतकत्व हेतु देकर पदार्थोंको अनित्य सिद्ध करते हैं। वहाँ भी यही बात हुई कि परोक्षभूत पदार्थोंकी व्याप्ति माननी होगी और अनुमान मानना होगा। तब तो असर्वज्ञवादियोंके फिर कुछ विघात नहीं है। सीधी तरहसे अनुमान भी माना, व्याप्ति भी माना, और इसी प्रकार सर्वज्ञवादियोंके यहाँ भी कुछ भी विघात नहीं है क्योंकि असर्वज्ञवादियोंने भी स्वभाव विप्रकर्षी, कालविप्रकर्षी और देश विप्रकर्षी पदार्थोंमें अनुमेयपनेकी व्यवस्था बनायी है और सर्वज्ञवादियोंने भी इन विप्रकर्षी पदार्थोंमें अनुमेयता मानी है, तब प्रकृत अनुमानमें कि सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे इसमें कोई बाधा नहीं है। सो सर्वज्ञ की सिद्धि बराबर हो रही है क्योंकि परोक्षभूत अर्थोंमें अनुमेयता पूर्णरूपसे सिद्ध होती है।

प्रकृत अनुमेयत्व हेतुमें भागासिद्ध दोषका अभाव—अब यहाँ अत्यन्त परोक्ष अर्थोंमें अनुमेयता न होनेसे यह अनुमेयत्व हेतु भागासिद्ध नामके दोषसे दूषित है, ऐसा यदि कोई कहे तो उसका भी निराकरण हो जाता है। तब परोक्षभूत अर्थ अनुमेय सिद्ध हो गए। तो भागासिद्धकी कहाँ गुञ्जाइस रही? जो लोग परोक्षभूत अर्थोंमें अनुमेयपना नहीं मानते और इसी कारण प्रकृत हेतुको भागासिद्ध दोषसे दूषित कहते हैं वह उक्त समाधानोसे ही निराकृत हो जाता है। देखिये? समस्त पदार्थोंकी सत्ता अनेकान्तात्मकत्व रूपसे अर्थात् समस्त वस्तुयें अनेकान्तात्मक हैं इस रूपसे सिद्ध हो है समस्त पदार्थ, परोक्षभूत व प्रत्यक्षभूत सर्व पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं सत्व होनेसे, इस अनुमानके द्वारा अनेकान्तात्मकपना आदिक स्वभावरूपसे उन सबका अनुमेयपना सिद्ध है। अर्थात् जो लोग यह कहते कि पहिले परोक्षभूत पदार्थ हो तो सिद्ध नहीं हैं फिर हेतु कहाँ लगे? सो उसका उत्तर यह है कि परोक्षभूत पदार्थ इस रूपसे तो अनुमेय हो ही गए कि सभी पदार्थ अनेकान्तात्मक हैं सत्त्व होनेसे। सत्व हेतु द्वारा सर्व पदार्थोंकी अनेकान्तात्मकता प्रसिद्ध है, फिर उनमें ये किसीके प्रत्यक्ष है, यह साध्य बताया जा रहा इस लिए भागासिद्ध नामका भी दोष यहाँ नहीं लगता।

अथवा अनुमेय अर्थात् श्रुतज्ञानाधिगम्य होनेसे सूक्ष्मादि पदार्थोंकी कहीं प्रत्यक्षविषयताकी सिद्धि अथवा इस सर्वज्ञताके प्रतिपादनमें जो अनुमेयत्व हेतु दिया है उसका अर्थ श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य होना भी है। तब अनुमान प्रयोग यों हो गया कि सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि वे श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य हैं। श्रुतज्ञानका शास्त्रोमे वर्णन आता है सो आगम द्वारा गम्य है, इससे सिद्ध है कि ये सर्व पदार्थ किसी न किसीके प्रत्यक्ष हैं। यहाँ अनुमेयत्वका अर्थ श्रुतज्ञानके

द्वारा अधिगम्य होना किस प्रकार है सो सुनो। अनुमेयमे दो शब्द हैं अनु-और मेय। मेयका अर्थ है मीयमान होना अर्थात् जान जाना, ज्ञात होना, और अनुका अर्थ है पीछे तो मतिज्ञानके पीछे ज्ञात होनेके कारण ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ अनुमेय हैं याने श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य हैं तो इस प्रकारकी व्युत्पत्तिसे अनुमेयत्वका अर्थ हुआ मतिज्ञान के पीछे उत्पन्न होने वाला जो प्रमाण मतिज्ञानके अनन्तर होता उसे अनुमेय कहते हैं। मतिज्ञानके पश्चात् प्रमाण उत्पन्न होता है श्रुतज्ञान। सो श्रुतज्ञानके द्वारा ये सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ अधिगम्य है ही। शास्त्रोमे भी कहा है कि "श्रुत मतिपूर्वक" श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है ये विप्रकर्षी पदार्थ श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य है यह बात असिद्ध भी नही है। प्रतिवादी भी सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य मानते हैं, जैसे पुण्य पाप आदिक पदार्थ श्रुतिवाक्य वेदके द्वारा अधिगम्य माने गए हैं। उनका सूत्र है कि वेद भूत वर्तमान भविष्यत सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट इस प्रकारकी जाति वाले समस्त पदार्थोंको जनानेके लिए समर्थ है। ऐसे मीमांसकोंके सिद्धान्तमें उन्होंने स्वयं कहा है। सो अनुमेय शब्दका श्रुतज्ञानाधिगम्य अर्थ कर देनेपर निष्कर्ष यह निकला कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ भी किसीके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं। जिसके द्वारा ये प्रत्यक्ष हुए उस हीको सर्वज्ञ कहते हैं क्योंकि श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगम्य होनेसे परमाणु, राम रावण आदिक पुरुष और मेरु विदेह स्वर्ग नरक आदिक ये सब श्रुत ज्ञानके द्वारा अधिगम्य हैं। प्रभुप्रणीत शासनकी परम्परामें आचार्योंने शास्त्रोमे सूक्ष्म निर्देश किया है। विवरण भी किया, इससे यह यह सिद्ध होता है कि ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष है जैसे नदी द्वीप पर्वत देश आदिक किसीके प्रत्यक्ष हैं। आज कलके देश, पहाड़ विदेशोको यहांके अनेक लोगोने देखा नही है लेकिन नक्शोके द्वारा पुस्तकोंके द्वारा पढ करके जानते हैं और जाकर कोई लोग देख आयें, उनके वचनोंसे पहिचानते हैं कि वे सब द्वीप देश आदिक किसीके प्रत्यक्ष है। तो यों आगम भी श्रुत है, आगमके द्वारा जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है। तो श्रुत ज्ञानसे यह सब जाना गया है। अतः सिद्ध है कि विप्रकर्षी पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष अवश्य है। जिसको प्रत्यक्ष है उसहीका नाम सर्वज्ञ है।

अनुमेयत्व(श्रुतज्ञानाधिगम्यत्व) हेतुकी निर्दोषताका कथन—प्रकृत अनुमान प्रयोगमें जो अनुमेयत्व (श्रुतज्ञानाधिगम्यत्व) हेतु दिया गया है उसका सर्वथा एकान्तो के साथ अनैकान्तिक दोष नहीं आता। अर्थात् यहाँ कोई कहे कि सर्वथा नित्य अथवा सर्वथा अनित्य ये भी किसीको प्रत्यक्ष हो जाना चाहिये क्योंकि ये भी श्रुतिज्ञानके द्वारा जाने जाते हैं। और यदि कोई सर्वथा एकान्तवाद किसीके प्रत्यक्ष हुए तो इसका अर्थ यह निकला कि ये एकान्तवाद स्पष्ट समीचीन हैं। तो समीचीन माने नही गए तब अनमेयत्वके हेतुका जिसका कि व्युत्पन्न अर्थ यह कर रहे हैं कि श्रुत ज्ञानके द्वारा अधिगम्य होना यह हेतु सर्वथा एकान्तके साथ अनैकान्तिक दोषसे दूषित होता है नही कह सकते क्योंकि सर्वथा एकान्त भी तो श्रुतिज्ञानके द्वारा अधिगम्य

है अर्थात् ? ,प्रज्ञानाभास, भूठाआगम भूठेवचनसे जाना होजाता है लेकिन, सर्वथा एकान्त एक तो प्रत्यक्षसे बाधित है, दूसरे यह आगमसे बाधित है। प्रत्यक्षसे यो बाधित हैं कि हम प्रकट समझ रहे हैं कि कोई भी पदार्थ अपनी पर्यायोको बदल–बदलकर भी वही रहता है तो पर्याय दृष्टिसे वह अनित्य है, किन्तु द्रव्य दृष्टिसे वह नित्य है, ऐसी बात जब हमको प्रत्यक्षसे ही समझमें आ रही है तो सर्वथा एकान्त कैसे समीचीन हो सकता है? इसी प्रकार अनुमानसे भी सर्वथा एकान्तके स्वीकार करनेमें बाधा आती है। तो यह हेतु निर्दोष है। ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ श्रुतिज्ञानके द्वारा अधिगम्य होने से किसीके प्रत्यक्ष हैं यह बात नि सन्देह सिद्ध होती है। श्रुतज्ञान सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको विसम्वाद रहित जानता है, समीचीन रूपसे समझना है। यह बात आगे कहेंगे उसश्रुत ज्ञानके द्वारा जब यह सब अधिगम्य है तब समस्त वस्तुओमे यह बात सिद्ध होती है कि ये सब किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं। इस प्रकार सूक्ष्म आदिक पदार्थ अनुमेय हैं और तब किसीके प्रत्यक्ष अवश्य है।

अनुमेयत्व हेतुमें सदिग्धानैकान्तिकत्व दोषका परिहार – अब यहाँ मीमासक शका करते हैं कि ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ अनुमेय है तो रहे आये। अनुमान द्वारा अनुमेय हो तो और श्रुतज्ञानके द्वारा अधिगमय हो तो अनुमेय रहा आये और किसीके प्रत्यक्ष न रहे, इसमें कौनसी बाधा आती है? जिससे कि अनुमेय हेतु देकर इन पदार्थोंको किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत है यह सिद्ध किा जया रहा है। उत्तरमे कहते हैं कि ऐसा कथन तो अग्नि आदिक सभी साध्योमे लगाया जा सकता है। अग्नि वगैरह अनुमेय तो हो और किसीके प्रत्यक्ष न हो इसमें क्या दोष होगा? जब केवल बोलनेसे ही किसीकी सिद्धि मान ली जाती है तो यह भी कह सकते हैं और इस तरह फिर अनुमान प्रमाणका उच्छेद ही हो जायगा, क्योंकि सभी अनुमानोंमें यह उपालम्भ समान है। ऐसा कह सकते हैं कि धूम तो रहो कहीं और अग्नि मत रहो। इस तरह सभी अनुमानोमें साध्यका सदेह, साध्यका अभाव यह सब कहा जा सकता है, किन्तु अनुमानका उच्छेद तो नही। तब अनुमानसे भी प्रबलरूपसे मानना होगा कि सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं।

अनुमेयता माने बिना लौकायतिकोंका भी गुजारा न होनेसे लौकायतिययो को भी सर्वज्ञत्व सिद्धि मान लेनेकी अनिवार्यता—अब यहांपर चार्वाक शका करते हैं कि अनुमानका उच्छेद होता है तो होने दो, अनुमान तो उच्छेदके योग्य ही है क्योंकि वह अप्रमाण है, प्रत्यक्ष ही प्रमाण है, क्योंकि यह ज्ञान अविसम्वादी है और अनुमान आदिक ज्ञान अप्रमाण हैं। क्योंकि ये विसम्वादी हैं। यो अनुमानका उच्छेद ही सही है, ऐसा कहने वाले चार्वाकोंके प्रति कह रहे हैं कि अनुमानका उच्छेद मान लेनेपर यह चार्वाक असंस्वसंवेद्य ज्ञानकणोंके द्वारा किसीको यह कैसे सिद्ध कर सकेगा कि प्रत्यक्ष तो है प्रमाणरूप और अनुमान है अप्रमाणरूप, क्योंकि अनुमान तो चार्वाकको प्रमाण नहीं

है और. ज्ञान जितना है वह सब है अस्वसम्वेद्य। चार्वाक सिद्धान्तके अनुसार ज्ञान सब अस्वसम्वेद्य हैं क्योंकि ये भौतिक हैं, पृथ्वी आदिकके परिणमन हैं। इस कारण ज्ञान स्वय अपने आपकी प्रमाणता नही कर सकता है ऐसा तो है चार्वाकोका प्रत्यक्ष ज्ञान और अन्य ज्ञान वे मानते ही नही हैं तब दूसरोको ये चार्वाक कैसे समझा सकेंगे कि प्रत्यक्ष तो है प्रमाणरूप और अनुमान है अप्रमाणरूप, किसी भी प्रकार ये चार्वाक किसीको भी यह समझानेमे समर्थ नही हैं कि प्रत्य... प्रमाण है, अन्य सब अप्रमाण हैं, क्योंकि समझानेके लिए कुछ तो बोलना ही पडेगा। जैसे कि वे कहते कि प्रत्यक्ष प्रमाण है अविसम्वादी होनेसे अनुमान आदिक अप्रमाण हैं विसम्वादी होनेसे, इस तरह कहकर जब दूसरोको समझा रहे हैं चार्वाक तो उन्होंने विवश होकर अनुमानको तो प्रमाण मान ही लिया। यह क्या अनुमानका रूप नही कि प्रत्यक्ष ही प्रमाण है अविसम्वादी होनसे। पक्ष साध्य साधन सभीका यहाँ स्थान है और अनुमान आदिक अप्रमाण हैं विसवम्वादी होनेसे, यहाँपर भी पक्ष साध्य साधन सभी अनुमानके अग हैं। तो इस तरह समझाने वाले जार्वाकोंने विवश होकर बलपूर्वक अनुमानको ही मान लिया। फिर प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है यह सिद्धान्त उनका कैसे ठहर सकता है ? प्रयोजन यह है कि अनुमान प्रमाण माने बिना अपने सिद्धान्तका समर्थन भी नही किया जा सकतो है। इससे अनुमनका उच्छेद नही तो यह प्रयोग निर्दोष सिद्ध है कि सभी पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। यो जिस प्रकार अविनाभाव नियम वाले अनुमेयत्व हेतुसे मीमांसकोको सूक्ष्मादि पदार्थोकी प्रत्यक्षता मान लेना अनिवार्य है उसी प्रकार चार्वाकोको भी सर्वज्ञत्व सिद्धि मानना पडेगी।

जिन हेतुओंसे शंकाकार द्वारा सर्वज्ञ साधक हेतुकी बाधितविषयताका प्रतिपादन, उन्ही हेतुओंसे सर्वज्ञत्वकी स्पष्ट सिद्धि—यहाँ मीमासक शका करते हैं कि यह अनुमेयत्व हेतु बाधित विषय है अर्थात् जो अनुमेयत्व हेतुसे सूक्ष्म आदि पदार्थोंके किसीके प्रत्यक्ष विषयपनेका अनुमान किया है वह अनुमान बाधित होता है। जैसे यह अनुमान प्रयोग है कि कोई भी पुरुष सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला नही हो सकता क्योंकि पदार्थोंकी प्रमेयता सत्ता औरवस्तुता होनेसे। जैसे कि हम लोग किसी भी सत् पदार्थोंका साक्षात्काम नही कर सक रहे क्योंकि ये सारे पदार्थ प्रमेय हैं। जो प्रमेय है, जो सत् है जो वस्तु है हम लोगोकी ही भाँति तो जाननेमें आयगा। इस अनुमानमे जो साधन कहा गया है वह असिद्ध और व्यभिचारी भी नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणोसे उनमे अविसम्वाद पाया जाता है याने प्रत्यक्षसे हम प्रमेयको परखते हैं, तो वह स्थूल प्रमेय है, जो यहाँ सत् नजर आ रहे हैं, जो यहाँ पदार्थ दृष्टिसे आ रहे हैं ऐसे ही पदार्थ तो जाननेमे आ सकते हैं। समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी असगत है। जो हेतु इसकी सर्वज्ञताके निषेधमे दिये हैं वे ही सब हेतु सर्वज्ञताकी सिद्धि करते हैं, जैसे तुम्हारा अनुमान है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष नहीं हो सकते प्रमेय होनेसे सत् होनेसे और वस्तु होनेसे : सो

देखिये यह ही हेतु यह सिद्ध करता है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्षभूत हैं। अनुमान प्रयोग है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं प्रमेय होनेसे, सत् होनेसे अथवा वस्तु होनेसे। स्फटिक आदिक पदार्थोंकी तरह। जैसे ये स्फटिक काँच आदिक जो कि बहुत देर निहारनेमें उसका आकार आदिक परखा जाता है तो यह प्रमेय है, सत् है, वस्तु है, सो यह किसीके प्रत्यक्ष है ना! यहाँ जो जो हेतु दिया गया है उन हेतुओंका अत्यन्त परोक्षभूत अनुमेय पदार्थोंके साथ व्यभिचार नहीं बताया जा सकता। याने कोई यह कहे कि जो प्रमेय है, सत् है, वस्तु है वह किसीके प्रत्यक्ष हो जाय, इसमें आपत्ति नहीं है। लेकिन जो अत्यन्त परोक्ष है, अनुमान मात्रसे गम्य है अथवा केवल आगमसे ही गम्य है, ऐसा पदार्थ प्रमेय तो है किन्तु किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत नहीं है। तो किसी प्रयोग में साधन तो पाया जाय और साध्य न पाया जाय इसीको तो व्यभिचार कहते हैं। तो यों ये तीन हेतु अनुमेय और अत्यन्त परोक्ष पदार्थोंके साथ व्यभिचार रखते हों सो बात नहीं है क्योंकि उन पदार्थोंको भी जो अनुमान मात्र गम्य हैं अथवा आगमगम्य हैं उन्हें भी पक्षमें सम्मिलित किया गया है। वे सब भी किसीके प्रत्यक्ष हैं प्रमेय होनेसे, सत् होनेसे और वस्तु होनेसे। सो इस तरह शंकाकारके द्वारा दिए गए ये तीन हेतु प्रमेयपना, सत्त्व और वस्तुत्व ये तो सर्वज्ञको सिद्ध करनेमें हेतुके लक्षणोंको पुष्ट कर रहे हैं। हेतु होना चाहिए ऐसा निर्दोष कि जिसमें बाधक प्रमाण असम्भव हो। सो यह हेतु भी ऐसे ही अबाधित है कि इसमें अन्य कोई बाधक प्रमाण नहीं लगता। तब अनुमेयत्व जो हेतु है वह अबाधित विषय है। तो जहाँ ये प्रमेयत्व आदिक हेतु सर्वज्ञको ही सिद्ध करते हैं तब फिर कौन बुद्धिमान ऐसा होगा जो सर्वज्ञका प्रतिषेध कर सकता है या सर्वज्ञके सम्बन्धमें संशय रख सकता है।

सूक्ष्मादिक पदार्थोंकी प्रत्यक्षविषयताके प्रतिषेधकी असंगतता— और भी समझिये। सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात्कार जिसने किया हो वही पुरुष तो सूक्ष्म आदिक पदार्थोंके सम्बन्धमें किसी भी प्रकारका अनुमान बना सकेगा क्योंकि अनुमान प्रयोगमें पक्षको प्रसिद्ध होना चाहिए। जहाँ यह अनुमान किया गया कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष नहीं हैं तो पक्ष हुए सूक्ष्म आदिक पदार्थ, तो यह पहिले असिद्ध हो तब तो इसमें साध्यपना सिद्ध किया जायगा और यदि सूक्ष्म आदिक अर्थ प्रसिद्ध हैं जो अनुमान प्रयोग कर रहा है उसको ये सूक्ष्म आदिक अर्थ विदित हैं, तब तो चलो उस ही में सर्वज्ञके अस्तित्वकी सिद्धि मान ली जायगी। सो यह बोल चाल करने वाला तो रागी है यह नहीं तो कोई सर्वज्ञ जरूर हो सकेगा, साथ ही इस प्रसंगमें यह देखिये कि मीमांसकके द्वारा माने गए ये प्रमेयत्व आदिक हेतु सर्वज्ञके अस्तित्वको सिद्ध करनेमें अबाधित विषय हैं इन ही हेतुवोंसे सर्वज्ञका अस्तित्व सिद्ध हो रहा है तब फिर ये हेतु प्रकृत हेतुको अबाधित सिद्ध कर रहे हैं।

हेतुमें साध्यभावधर्म साध्याभावधर्म व उभयधर्मके तीन विकल्प उठा

कर सर्वज्ञ साधक हेतुको बेकार सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास—अब शंकाकार मीमांसक कहते हैं कि यह तो बताओ कि इन हेतुवोंमें सर्वज्ञका अस्तित्व सिद्ध करनेमें आपने बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निश्चय बताया है तो यह हेतु और जो भी हेतु सर्वज्ञके अस्तित्वको सिद्ध करनेमें दिया जाय। जैसे एक यही हेतु कि सर्वज्ञ है क्योंकि सर्वज्ञकी सत्ताके बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निश्चय है, अर्थात् सर्वज्ञका सद्भाव निराकृत करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। तो यह हेतु क्या सर्वज्ञके सद्भावका धर्म है या सर्वज्ञके अभावका धर्म है? या सर्वज्ञके भाव अभाव दोनोंका धर्म है? याने यह हेतु सर्वज्ञके सद्भावका स्वरूप रख रहा है या सर्वज्ञके अभावका स्वरूप रख रहा है या सर्वज्ञके भाव अभाव दोनोंका स्वरूप रख रहा है! यदि कहो कि यह हेतु सर्वज्ञके सद्भावका धर्मरूप है तो यह बिल्कुल असिद्ध है। सर्वज्ञकी तरह जैसे कि अभी सर्वज्ञका सद्भाव ही सिद्ध नहीं है इसी तरह सर्वज्ञके सद्भावका धर्मरूप यह हेतु भी सिद्ध नहीं है, क्योंकि यदि सिद्ध होता तो भला बतलावो कि सर्वज्ञके सद्भावके धर्मको हेतु मानते हुये कौन पुरुष सर्वज्ञ न मानेगा? सर्वज्ञको जब नहीं माना जा रहा या सर्वज्ञमें विवाद हो रहा तो सर्वज्ञकी सिद्धि करनेमें जो भी हेतु दिया जायगा उसे सर्वज्ञके सद्भावका धर्म नहीं कहा जा सकता। यदि कहो कि सर्वज्ञ साधक हेतु सर्वज्ञके अभावका धर्म है तब तो यह बिल्कुल विरुद्ध हो गया। अब तो इस हेतुसे सर्वज्ञके ही सिद्धि होगी क्योंकि हेतु तो है सर्वज्ञके अभावका धर्म। तो सर्वज्ञ साधक हेतुको सर्वज्ञके अभावका धर्म भी नहीं कह सकते। यदि कहो कि सर्वज्ञ साधक हेतु सर्वज्ञके सद्भाव और अभाव दोनोंका धर्म है तब तो वह हेतु व्यभिचारी हो गया, क्योंकि उस हेतुकी सर्वज्ञके सद्भावमें भी वृत्ति बन गई और सर्वज्ञके अभावमें भी वृत्ति बन गई याने इस हेतुसे अब सर्वज्ञका सद्भाव भी सिद्ध हो सकेगा और सर्वज्ञका अभाव भी सिद्ध हो सकेगा क्योंकि सर्वज्ञ साधक हेतुमें सर्वज्ञके सद्भाव और अभाव दोनोंका धर्म मान लिया।

हेतुमें साध्यभावाभावोभयधर्मत्वके विकल्प उठाकर सर्वज्ञसद्भावोच्छेद बतानेवाली शंकाका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि देखो! सबसे अधिक हास्यास्पद बात तो यहाँ यह है कि जिसकी सत्ता सिद्ध नहीं है ऐसे धर्मीमें जैसे कि इस प्रसंगमें सर्वज्ञका सद्भाव असिद्ध है तो उस सर्वज्ञमें भाव अभाव अथवा उभय धर्मोंकी असिद्धता विरुद्धता अनैकान्तिकता होनेसे सर्वज्ञके सर्वज्ञत्वमें सत्वकी सिद्धि कैसे हो सकती है? ऐसा बोलने वाले ये मीमांसक इस समय धर्मीके स्वभावको नहीं पहिचान रहे हैं। धर्मी यहाँपर है सर्वज्ञ। उसमें सिद्ध किया जा रहा है अस्तित्व। उसकी सिद्धि करनेके लिए हेतुका प्रयोग है। तो जो इस प्रकार साध्यके सद्भावका धर्म है या अभावका धर्म है, या दोनोंका धर्म है? यों विकल्प करके बातको उड़ा रहा है। वह जब किसी अन्य मतका निराकरण करनेके लिए या अपने किसी सिद्धान्तका समर्थन करनेके लिये कोई अनुमान बनाता हो तो उसमें भी तथाकथित तीन विकल्पोंमें

पूछा जा सकता है। जैसे कि शब्दको अनित्य सिद्ध करनेमें कृतकपनाका हेतु दिया कि जो जो कृतक होते हैं वे सब अनित्य होते हैं। शब्द कृतक हैं इसलिए वे भी अनित्य हैं। तो इस अनुमानमें तथाकथित तीनों विकल्प क्यों नहीं किये जा सकते हैं? उनसे पूछा जा सकता है कि तुम्हारा कृतकत्व हेतु क्या अनित्य शब्दका धर्म है या नित्य शब्दका धर्म है या अनित्य और नित्य दोनों शब्दोंका धर्म है? ऐसे तीन विकल्पों द्वारा जब विचार किया जायगा तो पहिलेकी तरह यहाँपर भी यह अनुमान खण्डित हो जायगा। जब यह अनुमान बनाया गया कि शब्द अनित्य है कृतक होनेसे, तो इसमें जो तीन विकल्प पूछे गए हैं कि कृतकत्व हेतु अनित्य शब्दका धर्म है? अथवा उभय शब्द का धर्म है? इनमेंसे यदि प्रथम विकल्प कहोगे कि कृतकत्व हेतु अनित्य शब्दका धर्म है तो यह बात असिद्ध है। अब इस शब्दको ही तो अनित्य सिद्ध करनेके लिए अनुमान कहा जा रहा है और हेतुको कह रहे हो अभीसे कि यह अनित्य शब्दका धर्म है, तो जिस तरह शब्दमें अनित्यत्व असिद्ध है उसी प्रकार कृतकत्वमें अनित्य शब्दका धर्मपना असिद्ध है, क्योंकि यदि यह बात प्रकट होती है कि कृतकत्व अनित्य शब्दका धर्म है तो ऐसा फिर कौन पुरुष होगा जो अनित्य शब्दके धर्मरूप कृतकत्व हेतुको मानता हुआ शब्दको तुरन्त न हेतु प्रयोगसे पहिले ही अनित्य न मानले। सो उसे तो अनित्य शब्दको ही एकदम मान लेना चाहिये जब कृतकत्व हेतुको अनित्य शब्दका धर्म मान लिया तो शब्द अनित्य है तो यह तो पहिले ही मान लिया गया। फिर अनुमान की आवश्यकता ही क्या थी? तो अनित्य शब्दका धर्मरूप कृतकत्व असिद्ध है। यदि कहो कि कृतकत्व हेतु नित्य शब्दका धर्म है तब तो यह हेतु विरुद्ध है क्योंकि इस हेतुके द्वारा शब्दका नित्यपना ही सिद्ध होगा। अनुमान में साध्य तो बनाया जा रहा है कि शब्द अनित्य है और हेतुके द्वारा सिद्ध यह हो रहा है कि शब्द नित्य है क्योंकि कृतकत्व हेतुको नित्य शब्दका धर्म मान लिया। यदि कहो कि कृतकत्व हेतु उभय धर्म है, नित्य शब्दका धर्म और अनित्य शब्दका धर्म दोनों ही रूप है, तब तो यह हेतु व्यभिचारी हो गया, क्योंकि अब यह कृतकत्व नित्य शब्दमें भी रहने लगा और अनित्य शब्दमें भी रहता है। तो सपक्ष और विपक्ष दोनोंमें हेतुके रहनेसे यह हेतु व्यभिचारी अर्थात् अनैकान्तिक दोषसे दूषित हो गया है।

हेतुमें साध्यभावाभावोभयधर्मत्वके विकल्पोंकी स्वच्छन्दतासे सकलानुमानोच्छेदका प्रसग—देखिये! यदि साध्यभावाभाव धर्मके विकल्प करने लगें तो समस्त अनुमानोंका उच्छेद हो जायगा। कुछ भी साध्य बनायें और उसका साधन बनाये तो वहाँ यह पूछा जा सकता कि इस साध्यका धर्म है यह हेतु या साध्यसे विपरीतका धर्म है या दोनोंका धर्म है? सारे अनुमानोंमें भी ऐसे विकल्प लगाये जा सकते हैं। जैसे अनुमान बनाया कि पर्वत अग्निमान है धूमवान होनेसे। तो वहाँ कोई यह पूछ सकता है कि यह धूम क्या अग्निमान पर्वतका धर्म है या अनग्निमानका धर्म है या दोनोंका धर्म है? अग्निमानका धर्म है तब तो असिद्ध है, अनग्निमानका धर्म

है तब विरुद्ध है और दोनोका धर्म है तो हेतु व्यभिचारी है। इस तरह सभी अनु-मानोका उच्छेद हो जायगा। तब यह निष्कर्ष निकला कि विवादापन्न अनित्य शब्दका धर्म माननेपर याने कार्यत्व हेतु विनाशशील शब्दका धर्म है ऐसा माननेसे बाधकप्रमाण का असम्भवपना होनेके कारण भी संदिग्ध है सद्भाव जिसका ऐसा यह धर्म बना। अर्थात् शब्दमें अनित्यपना ही तो साध्य बनाया जा रहा और वही संदिग्ध बन गया कि कृतकत्व धर्म क्या अनित्य शब्दका धर्म है या नित्य शब्दका धर्म है ? तब यह अनुमान सही न रहा और इस तरहसे फिर सारे अनुमान मिथ्या हो जायेंगे।

शङ्काकार द्वारा शब्दधर्मीकी प्रसिद्धताके कारण अनित्यत्व साध्यमें कृतकत्वादि हेतुकी युक्तताका कथन तथा सर्वज्ञसत्ताकी असिद्धके कारण सर्वज्ञत्व साध्यमे हेतुधर्मताकी असिद्धिका कथन—यहाँ मीमासक कहते हैं कि शब्दको अनित्य सिद्ध करनेमे जो कृतकत्व हेतु दिया गया है उस अनुमानके सम्बन्धमें तथ्य यह है कि शब्द जो धर्मी है, जिसमें कि अनित्यपना साध्य बना रहे हैं वह शब्द धर्मी शब्दपनेसे तो प्रसिद्ध सत्ता वाला है याने शब्दकी सिद्धि शब्दत्वरूपसे तो प्रसिद्ध ही है। अब उसमें संदेह हो रहा है कि अनित्य है या नित्य है ? उनमे विवाद उठा है तो वहाँ अनित्य साध्य जिसको बनाया जा रहा है ऐसे शब्दका धर्म है कृतकत्व। उसमें कौनसी अयुक्त बात है ? याने शब्दत्वरूपसे तो शब्द प्रसिद्ध है और अनित्य आदिकके रूपसे संदिग्ध है तो अनित्यत्व साध्य जिसका बनाया जा रहा है ऐसे शब्दका धर्म है यह कृतकत्व, फिर अनुमानमें कोई बाधा न आयगी, किन्तु सर्वज्ञ धर्मीके सम्बन्धमें यह उत्तर दे नहीं सकते, क्योंकि सर्वज्ञकी सत्ता तो सर्वथा ही असिद्ध है। अब असम्भवद् बाधकत्व हेतुको असिद्ध सत्ता वाले सर्वज्ञका अथवा विवादापन्न सद्भाववद्धर्मक सर्वज्ञ का याने विवादापन्न सद्भाव साध्य वाले सर्वज्ञका धर्म बताया जाय, यह कैसे युक्त हो सकता है ? तात्पर्य यहाँ यह स्पष्ट है कि शब्द तो शब्दत्व रूपसे प्रसिद्ध है अब उसमें अनित्यपना सिद्ध किया जा रहा है। तो विवाद तो अनित्यपनेका है कि शब्दका ? तो यहाँ धर्मी प्रसिद्ध है लेकिन सर्वज्ञकी सत्ता तो सिद्ध ही नही है। तो असिद्ध सत्ता वाले सर्वज्ञका धर्म कोई हेतु कैसे बन सकेगा ? क्योंकि न्यायशास्त्रका यह वचन है कि धर्मी प्रसिद्ध होता है और उस प्रसिद्ध धर्मीमे अप्रसिद्ध साध्यको सिद्ध किया जाता है तब वह प्रतिज्ञा कहलाती है। लेकिन यहाँ तो सर्वज्ञ अप्रसिद्ध ही है। जब पक्ष ही सिद्ध नहीं है तो उसमे कुछ भी सिद्ध करना अयुक्त बात है।

शङ्काकार द्वारा शब्दानित्यत्व हेतु और सर्वज्ञसत्तासाधकसाधनमे प्रदर्शित विषयताकी आरेकाका समाधान—अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि कह तो लिया यह सब कि शब्द हमारा प्रसिद्ध है और फिर उस शब्दमे हम अनित्यपना सिद्ध करना चाहते हैं और उस हीके लिए हमारा कृतकत्व हेतु है, लेकिन वे यह तो बतायें कि जब हेतुके द्वारा साध्यको सिद्ध करेंगे तो उसकी व्याप्ति तो

बनानी ही होगी। यह तो कहना ही होगा कि जो जो कृतक होते हैं वे अनित्य होते हैं और सारे शब्द कृतक हैं अतएव अनित्य हैं। तो समस्त देश, समस्त कालमें होने वाले शब्द तो धर्मी बने ना !-तो उन शब्दोंको कौन जान रहा है ? सारे शब्द कहाँ प्रसिद्ध हैं ? फिर पक्षका लक्षण यहाँ घटित नहीं हो सकता, क्योंकि समस्त देश, समस्त कालमें होने वाले शब्द अप्रसिद्ध हैं, उनकी सिद्धि कहाँ ? यदि कहो कि दूसरों ने माना है सो दूसरोंके माननेके अनुसार समस्त शब्द प्रसिद्ध हो जायेंगे और तब प्रसिद्धोधर्मी इस नीतिमें कोई बाधा न आयगी। तो समाधानमें कहते हैं कि फिर तो इस तरह सर्वज्ञवादियोंके माननेके कारण सर्वज्ञ भी प्रसिद्ध हो जायगा और जब सर्वज्ञ प्रसिद्ध बन गया तो प्रसिद्धोधर्मी इस न्यायका यहां भी उल्लंघन न हो सका हेतुरूप धर्मकी तरह। जैसे साधन प्रसिद्ध है और साधनके द्वारा सर्वज्ञका सद्भाव सिद्ध किया जा रहा है तो परके अवगमसे जब सकल शब्दरूप धर्मीकी प्रसिद्धता मान रहे हो तो सर्वज्ञवादीके अवगमसे सर्वज्ञकी भी प्रसिद्धि क्यों न मानी जावेगी याने सर्वज्ञवादियोंके आगमसे सर्वज्ञकी भी प्रसिद्धता मान लीजिए। उसमें फिर कोई आपत्ति क्यों देते हो? यदि कहो कि नहीं, हम प्रतिवादी मीमांसकोंके प्रति जो समर्थित हुआ हो वही हेतुधर्म साध्यको सिद्ध कर सकता है। तब फिर शब्दधर्मी भी जैनोंके प्रति समर्थित होकर ही अनुमानका अङ्ग बने। दोनोंके प्रयोगमें कोई विशेषताकी बात नहीं है। यहां मूल प्रसङ्ग यह है कि जब सर्वज्ञका सद्भाव सिद्ध करनेमें कोई हेतु दिया गया तो उसमें शंकाकारने ये तीन विकल्प रखकर कि वह हेतु सर्वज्ञके सद्भावका धर्म है या सर्वज्ञके अभावका धर्म है या उभय धर्म है ? निराकरण किया है तो इस पद्धतिसे निराकरण किए जानेकी बात सारे अनुमानमें लागू हो जाती है फिर स्वयं मीमांसक आदिक अपने शासनकी सिद्धिके लिए और परशासनके निराकरणके लिए जो भी अनुमान दें उनमें ये तीन विकल्प उठ सकते हैं कि यह हेतु साध्यका धर्म है या साध्यसे विपरीत धर्म है या दोनोंका धर्म है। इस प्रकार विकल्प उठाकर तो कोई अनुमान प्रमाण ही नहीं बन सकता है। इससे यह विकल्प युक्त नहीं है। तब सीधे और स्पष्टरूपसे हेतुके साधन और बाधापर ही विचार करके कुछ बोलना चाहिए।

सर्वज्ञसद्भाव साधक अनुमानमें धर्मीकी कथंचित् प्रसिद्ध सत्ताकताका वर्णन—यहाँ स्याद्वादी मीमांसकोंसे पूछते हैं कि प्रसिद्धोधर्मी इस सूत्र द्वारा जो यह कहा गया है कि धर्मी प्रसिद्ध होता है तो इसका अर्थ क्या है ? सर्वथा प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्मी है क्या यह अर्थ है अथवा कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्मी है यह अर्थ है ? यदि कहो कि सर्वथा प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्मी होता है ऐसा अर्थ अभीष्ट है तब तो आपके अनुमानमें शब्दादिक भी धर्मी न रह सकेंगे क्योंकि शब्दादिक सभी धर्मी सर्वथा प्रसिद्ध नहीं हैं। साध्य धर्मकी उपाधिकी सत्ता सहित रूपसे तो धर्मी अप्रसिद्ध ही है। यदि साध्य विशिष्टरूपसे धर्मी प्रसिद्ध होता तो उसका अनुमान बनानेकी भी आवश्यकता न होती। तो साध्यविशिष्टरूपसे धर्मीकी अप्रसिद्धि माननी ही होगी।

और तब सर्वथा प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्म न रह सका। यदि कहो कि कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाले शब्दादिक धर्मी होते है याने शब्द शब्दत्वरूपसे प्रसिद्ध हैं अतएव कथंचित् प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार सभी पक्ष याने धर्मी अपने आपके स्वरूपसे प्रसिद्ध ही होते हैं अतएव प्रसिद्धोधर्मीका अर्थ यह है कि जो कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाला है वह धर्मी होता है और इस प्रकार किसी भी पक्षमें धर्मीपनेका विरोध नहीं आता। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यदि कथंचित् सत्ता वाला धर्मी है यह स्वीकार करते हो और शब्दादिक पक्षोंमें धर्मीपना निर्बाध प्रसिद्ध कहते हों तो इसी तरह सर्वज्ञ भी धर्मी कैसे न हो जायगा ? क्योंकि सर्वज्ञ सिद्ध करनेके सम्बन्धमें जो पक्ष बताया है वह है कोई आत्मा, वहा किसी आत्माको सर्वज्ञ बतानेकी बात कही गई है। कोई आत्मा सर्वज्ञ है, यह प्रतिज्ञा है। तो इसमें आत्मत्व आदिक विशेषणोंसे जिसकी सत्ता प्रसिद्ध है ऐसा तो यहाँ पक्ष कहा गया है अर्थात् कोई आत्मा आत्मत्वरूपसे तो प्रसिद्ध ही है इस सबधमें वादी और प्रतिवादी दानोंको ही विवाद नही है कि आत्मा नामक पदार्थ है। हाँ, उसमे सर्वज्ञत्वकी उपाधिकी सत्ता अप्रसिद्ध है। तो इस अनुमानमें पक्ष कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाला हो गया ना ! कोई आत्मा जो कि आत्मत्व आदिक विशेषणोंकी सत्तासे प्रसिद्ध है किन्तु सर्वज्ञत्वकी उपाधिसे अप्रसिद्ध है। उस ही को धर्मी माना है तो यह भी सर्वथ अप्रसिद्ध सत्ता वाला न रहा। कथंचित् प्रसिद्ध सत्ता वाला धर्मी हो गया है। तब सर्वज्ञ सिद्धिके अनुमानमें पक्ष कथंचित् प्रसिद्ध ही रहा।

सर्वज्ञ सद्भावसाधक अनुमानमे "कश्चित् आत्मा" धर्मीके व सूक्ष्मान्तरित दूरार्थके कथंचित्प्रसिद्धसत्ताकत्वका वर्णन--देखिये ! स्याद्वादी जन सर्वज्ञ सिद्धिके अनुमानके पक्षका याने धर्मीका प्रयोग यों करते हैं कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है अन्य प्रकारसे प्रयोग न समझना। जब यह कह भी दिया जाय कि कोई सर्वज्ञ है तो उसका भी भाव यही लेना कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है या इस प्रकारसे भी कहा जाय कि सर्वज्ञ है क्योकि उसमे बाधक प्रमाणकी असम्भवताका निश्चय है। तो ऐसा कहनेपर भी अर्थ उसका यह लेना कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है। केवल सर्वज्ञ है ऐसा प्रयोग शोभा नही देता है, ऐसी ही तो शका है। तो उसमे 'कोई आत्मा' इतने शब्दका अध्याहार कर लेना चाहिए अर्थात् 'कोई आत्मा' इतना अपने आप ऊपरसे शब्द जोड़ लेना चाहिए तब प्रयोग यह बना कि कोई आत्मा सर्वज्ञ है क्योंकि सर्वज्ञके सद्भावमे बाधा करने वाला कोई प्रमाण नहीं है। इसी प्रकार अब कोई दार्शनिक मीमांसक अथवा सौगत आदिक जो इस प्रकार दोषको प्रकट कर रहे थे कि वह हेतु साध्यके भावका धर्म है या साध्यके अभावका धर्म है अथवा दोनोका धर्म है अथवा पक्ष प्रसिद्ध है, उसकी सत्ता ही प्रसिद्ध नहीं है आदिक रूपसे जो दूषण दे रहे थे उन्होने धर्मोके स्वभावको जाना ही न था। बात यह है कि सर्वज्ञ सिद्धिके अनुमानमे केवल सर्वज्ञको धर्मीरूपसे नहीं कहा गया है, किन्तु कोई आत्मा सर्वज्ञ है, इस प्रकारसे कहा गया है और इस प्रकृत आत्मामे भी जिसको कारिका द्वारा सिद्ध किया जा रहा है उसमें भी

सर्वज्ञको धर्मी रूपसे नहीं कहा गया है। सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे, इस अनुमानमें सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती पदार्थोंको ही तो धर्मी कहा जा रहा है और यह सब प्रसिद्ध ही है। तब इस अनुमानमें भी जो धर्मी हैं सूक्ष्म अंतरित दूरवर्ती पदार्थ वे सब प्रसिद्ध सत्ता वाले हैं। ये परमाणु आदिक प्रमाणसे सिद्ध हैं, यह बात आगेकी कारिकामें बताई जायगी। जब "बुद्धिशब्दप्रमाणत्त्वं" आदिका कारिका कही जायगी तो ये परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ वस्तुत: हैं, ऐसी बात वहाँ सिद्ध की जायगी। और इस मौकेपर इतना तो समझ ही लीजिए कि परमाणु आदिकके सम्बन्धमें वादी और प्रतिवादी दोनोंका ही विवाद नहीं है। मीमांसक सौगत अथवा अन्य भी दार्शनिक परमाणुको किसी न किसी रूपमें मानते ही हैं। और जैन शासनमें तो परमाणुको निश्चयत पुद्गल द्रव्य माना ही गया है। तो ये सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ प्रमाणसिद्ध हैं और प्रसिद्ध होनेसे इनको धर्मी बताया जाना बिल्कुल युक्तिसगत है।

सर्वज्ञसाधनाके प्रसगमें प्रत्यक्षके बारेमें इन्द्रियप्रत्यक्ष या अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष इन दो विकल्पोंमें सूक्ष्मादिक पदार्थोंके प्रत्यक्षविषयत्वके निराकरणकी मीमांसकोंकी शका—अब यहां मीमांसक शका करते हैं कि यह शका सर्वज्ञवादियो की सबके प्रति सम्भव है और इस मौकेपर नैयायिकोंके प्रति प्रधानतया कहा जा रहा है मीमांसक शका करते हैं कि यह बतलावो कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ क्या इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा किसीके प्रत्यक्ष हैं, यह साध्य बताया जा रहा है अथवा ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ अतीन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा किसीके प्रत्यक्ष हैं यह साध्य बताया जा रहा है। यदि कहो कि ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ इन्द्रिय प्रत्यक्षके द्वारा किसीके प्रत्यक्ष हैं, यह साध्य बताया जा रहा तो ऐसा माननेपर यह प्रयोग अनुमान विरुद्ध हो जाता है अर्थात् इसके अनुमानका निराकरण हो जाता है। और जब यह पक्ष प्रमाणबाधित हो गया फिर इसमें हेतुका दिखाना यह कालात्ययापदिष्ट है, यह भी हेतुका प्रधान दोष है। तो अब देखिये कि उस अनुमानमें कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके इन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा प्रत्यक्ष हैं, कैसे अनुमानसे बाधा आती है। सो सुनो! सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके भी इन्द्रियज्ञानके विषय नहीं होते, क्योंकि ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ सर्वथा इन्द्रियसबधसे रहित हैं। इन पदार्थोंमें इन्द्रियका सबध ही नहीं हो सकता है, फिर ये किसीके भी इन्द्रियज्ञानके विषय कैसे हो सकते हैं? जो किसीके भी इन्द्रियज्ञानके विषय होते हैं वे सर्वथा इन्द्रिय सम्बन्धसे रहित देखे गये हैं। यहाँ इस अनुमानकी व्यतिरेक व्याप्ति बताई जा रही है। इसमें साध्य यह है कि किसीके इन्द्रियज्ञानके विषय नहीं हैं और हेतु है सर्वथा इन्द्रिय सम्बन्धसे रहित होनेसे। तो साध्यके अभावमें साधनका अभाव बताना व्यतिरेक व्याप्तिका प्रयोजन है सो बताया जारहा है कि देख लीजिए! दुनिया में जो जो पदार्थ किसीके इन्द्रियज्ञानके विषयभूत होते हैं वे किसी भी प्रकार इन्द्रियके साथ सम्बन्धसे रहित नहीं होते हैं। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये किसीके इन्द्रियज्ञान

के विषय हैं, अतएव ये इन्द्रिय सम्बन्धरहित नहीं हैं। जब भी कोई घट आदिक पदार्थों को जानता है तब या तो चक्षुसे देखकर रूपकी प्रधानतासे जानता है या हाथसे छूकर स्पर्शकी प्रधानतासे जानता है या नाकमे सूँघकर गंधकी प्रधानतासे जानता है या उस को लकड़ी द्वारा ठोककर कि यह कच्चा है पक्का है, किसी भी बातको श्रोत्र द्वारा शब्द की प्रधानतासे जानता है या कोई नये घड़ेमे थोड़ा पानी रखा हो और उस पानीको पीता हो तब मिट्टी जैसे थोड़े स्वादको लेता है या कोई घड़ेको ही जिह्वासे स्वादे तो वहाँ रसना इन्द्रियके द्वारा वह रसकी प्रधानतासे जानता है, मतलब यह है कि घटपट आदिकको जो भी पुरुष इन्द्रिय ज्ञान द्वारा जान रहे हैं उनकी इन्द्रियका घट आदिकसे सम्बन्ध बराबर है। अब यहाँ देखिये कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ तो सर्वथा इन्द्रिय सम्बन्ध से रहित हैं, तब ये किसीके इन्द्रिय ज्ञानके विषय नहीं हो सकते। ये उपनय और निगमन कहे गये हैं। तो इस तरह केवल व्यतिरेकी इस अनुमान द्वारा नैयायिकोंका वह पक्ष बाधित है।

परमाण्वादिकके इन्द्रियप्रत्यक्षत्वके निराकरणके प्रसङ्गका विवरण— यहाँ इतनी बात जान लेनी चाहिए कि नैयायिक किसीको सर्वज्ञ तो मानते हैं पर अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा सर्वज्ञ नहीं मानते। उनका मतव्य है कि समाधि विशेषके कारण उन योगियोके, उन सर्वज्ञोके इन्द्रियमें इतनी विशेषता हो जाती है कि वे इन्द्रिय के द्वारा समस्त पदार्थोंका ज्ञान कर लेते हैं। सो उनके विरुद्ध यह कहा जा रहा है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ ये सर्वथा इन्द्रिय सम्बन्धसे रहित हैं, ये विप्रकर्षी पदार्थ इन्द्रिय सम्बन्धसे रहित हैं। यह बात असिद्ध नहीं है क्योंकि परमाणु पुण्य पाप आदिकके साथ साक्षात् इन्द्रियका सम्बन्ध नहीं बनता तो इन्द्रिय सम्बन्धसे जब यह सर्वथा रहित है तो ये परमाणु आदिक पदार्थ इन्द्रियज्ञानके विषय बन जायें यह कभी भी सम्भव नहीं है। इसका साधन यह प्रयोग है—किसीकी भी इन्द्रिय साक्षात् परमाणु आदिकोंसे सम्बन्धित नहीं होती है इन्द्रिय होनेसे हम लोगोंकी तरह। जैसे हम लोगोंकी इन्द्रियाँ इन्द्रिय ही तो हैं, इस कारण हम लोगोंकी इन्द्रियोंका परमाणु आदिकोंसे सम्बन्धित नहीं हो सकती हैं, ऐसे ही किसीकी भी इन्द्रिय हो, इन्द्रिय ही तो है। इस कारण किसीकी भी इन्द्रियका परमाणु आदिकसे साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता। जब इन्द्रियोंका सूक्ष्मादि पदार्थोंके साथ सम्बन्ध नहीं है तो वे पदार्थ किसीके भी इन्द्रिय प्रत्यक्ष विषय नहीं हो सकते।

योगजधर्मानुगृहीत होकर परमाण्वादिकमें इन्द्रियवृत्ति होनेके प्रस्ताव पर विचार— यहाँ नैयायिक कहते हैं कि योगज धर्मसे अनुगृहीत हुई इन्द्रियाँ सूक्ष्म आदिक पदार्थोंके साथ साक्षात् सम्बन्धित हो जाती हैं अर्थात् जब किसी योगी साधुके विशिष्ट तपश्चरण समाधि परिणाम बनता है तो उस समाधिके बलसे ये इन्द्रियाँ विशिष्ट अतिशय पा जाती हैं और तब योगज धर्मसे अनुगृहीत इन्द्रियाँ परमाणु आदिक

पदार्थोंके साथ सम्बन्धित हो जाती है अतएव इन्द्रियोंके द्वारा सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका प्रत्यक्ष हो जाना असिद्ध नहीं है। इसपर मीमांसक पूछते हैं कि इन्द्रियका योगज धर्मानुग्रह होनेका अर्थ क्या है ? क्या इस योगज धर्मकी कृपाका यह अर्थ है कि अपनी बुद्धिमें प्रवृत्ति करने वाली इन्द्रियमें कोई अतिशय रख दिया जाय, यदि ऐसा आपका विकल्प हो तो यह बात असम्भव ही है, क्योंकि परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंमें इन्द्रियाँ स्वयं ही प्रवृत्ति नहीं किया करती। इन्द्रियका ऐसा विषय ही नहीं है कि इन्द्रियाँ परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंमें, राम रावण आदिक अन्तरित पदार्थोंमें मे० स्वर्ग नरक आदिक दूरवर्ती पदार्थोंमें प्रवृत्ति करें विप्रकर्षी पदार्थोंमें इन्द्रियाँ प्रवृत्ति नहीं कर सकती। और, यदि इन परमाणु आदिक पदार्थोंमें ये इन्द्रियाँ प्रवृत्ति करने लगें तो फिर योगज धर्मके अनुग्रहकी भी आवश्यकता क्या है ? फिर तो योगज धर्मका अनुग्रह व्यर्थ हो जायगा। यदि कहो कि योगज धर्मके अनुग्रहसे ही इन्द्रिय परमाणु आदिमें प्रवृत्ति करती हैं तो ऐसा माननेपर इतरेतराश्रय दोषका प्रसग आता है। वह कैसे कि इन्द्रियमें योगज धर्मका अनुग्रह पड जाय तब तो इन्द्रियकी परमाणु आदिकमें प्रवृत्ति बने तब योगज धर्मका अनुग्रह बनेगा, इस तरह योगज धर्मके अनुग्रहसे ही इन्द्रियकी परमाणु आदिकमें प्रवृत्ति माननेपर इतरेतराश्रय दोष होता है।

परमाण्वादिकमे इन्द्रियवृत्तिके लिये योगजधर्मकी सहकारितापर विचार—नैयायिक कहते हैं कि परमाणु आदिकमें इन्द्रियाँ प्रवृत्ति करें इस कार्यमें सहकारीपना होना इसका ही अर्थ है योगज धर्मका अनुग्रह। अर्थात् इन्द्रियाँ तो योगज धर्मके अनुग्रहसे परमाणु आदिकमें प्रवृत्ति करती है, उसमें योगज धर्मका अनुग्रह सह-कारी होता है। इस शका के उत्तरमें मीमांसक कहते हैं कि यह बात अत्यन्त अयुक्त है क्योंकि अपने विषयका उल्लघन करते हुए तो इन्द्रियमें योगज धर्मका अनुग्रह सम्भव नहीं हो सकता है अर्थात् ऐसा योगज धर्मका अनुग्रह नहीं है कि जिससे ये इन्द्रियाँ परमाणु आदिकमें प्रवृत्ति कर जायें, अन्यथा अर्थात् यदि योगज धर्मका अनुग्रह यही मान लिया जाय कि इन्द्रियाँ अपने विषयका उल्लघन करके सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको भी जान लेती हैं तब तो किसी भी एक इन्द्रियकी समस्त रस आदिक विषयोंमें प्रवृत्ति हो जानेमें भी योगज धर्मका अनुग्रह बन बैठेगा। जब इन्द्रियाँ अपने विषयका उल्लंघन करके परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थों में जुट गईं, ऐसी योगज धर्मके अनुग्रहकी महिमा बनी तब तो जैसे चक्षु इन्द्रियका विषय है रूप, लेकिन योगज धर्मका अनुग्रह यह कर बैठें कि चक्षु इन्द्रिय ही रूपको जाने और साथ ही रस, गध, स्पर्श आदिक सबको जान ले, ऐसा अनुग्रहका प्रसग आ जायगा।

एक इन्द्रियकी अप्रतिनियत शेष विषयोमे प्रवृत्ति न होनेकी तरह परमाण्वादिक विप्रकर्षी पदार्थोमे भी प्रवृत्तिका अभाव—नैयायिक कहते हैं कि एक इन्द्रियकी समस्त रस आदिकमें प्रवृत्ति बननेकी बात यों युक्त नहीं है कि यह बात

प्रत्यक्षसे विरुद्ध है। हम स्पष्ट समझ रहे हैं कि चक्षुइन्द्रिय रूपको ही जान सकती है, रस आदिकमें चक्षुइन्द्रियकी प्रवृत्ति नही है। जब हम ऐसा प्रत्यक्षसे ही स्पष्ट समझ रहे हैं तब वहाँ अन्य कल्पना नही की जा सकती है। उत्तरमें मीमासक कहते हैं कि बस यही बात तो परमाणु आदिकमें समान रूपसे है। परमाण्वादिक सूक्ष्म पदार्थमे भी इन्द्रियकी प्रवृत्तिका प्रत्यक्ष विरोध है, यह घटित हो जाता है। जैसे कि चक्षुइन्द्रिय योगज धर्मके अनुग्रहसे भी रस आदिकमे प्रवृत्ति नही कर सकती इसी प्रकार योगज धर्मका अनुग्रह होनेपर भी इन्द्रियाँ परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंमें भूत भविष्यकी घटनाओमे अथवा दूरवर्ती द्वीप पर्वत आदिकमें प्रवृत्ति नही कर सकती। इन्द्रियका, अपने विषयका उल्लघन नही कर सकना दोनो जगह समान है। जैसे कि चक्षु आदिक इन्द्रिया प्रतिनियत रूपादिकका विषय करने वाली ही देखी गई हैं। चक्षु रूपका विषय करते हैं, कर्ण शब्दका विषय करते हैं घ्राण गधका विषय करती है, रसना रसका विषय करती है स्पर्शनेन्द्रिय स्पर्शका विषय करती है इनसब इन्द्रियोका प्रतिनियत विषय है और उनमेंसे कोई भी इन्द्रिय अपने प्रतिनियत विषयके सिवाय अन्य समस्त रूप आदिक विषयोका ग्रहण नही कर सकती है। ऐसा ही सब पाया और देखा जा रहा है। ये बहुत महान परिमाणको लिए पृथ्वी आदिक द्रव्य और उनमें समवेत रहने वाला अर्थात् समवाय सम्बन्धसे रहने वाले ये रूपादिक चक्षु आदिक इन्द्रियके विषय रूपसे प्रसिद्ध हैं, अर्थात् जो स्थूल चीज है वह ही इन्द्रियके द्वारा गोचर है यह बात प्रसिद्ध है, लेकिन परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ इन्द्रियके द्वारा विषयभूत नही है, देखिये समाधि विशेषसे जो योगियोके धर्म उत्पन्न हुआ है उसके माहात्म्यसे दृष्टिका उल्लघन करके चक्षु आदिक इन्द्रियाँ परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंमे प्रवृत्ति कर जाय और रस आदिक अनेक विषयोमें एक इन्द्रिय प्रवृत्ति न कर सके ऐसी व्यवस्था बनाने वाला कोई कारण नही, सिवाय एक जडताके। हठ करके अज्ञानसे ऐसी व्यवस्था कोई बनाये तो बनाये, पर वास्तवमे ऐसी व्यवस्था बनानेका कोई कारण नहीं है। इन्द्रिय कहते ही उसे हैं जो अपने-अपने विषयके प्रति प्रतिनियत हो। फिर योगज धर्मके अनुग्रहसे ये इन्द्रियाँ सूक्ष्म विषयमे न लग सकें, यह योगज धर्मके अनुग्रहकी महिमा न बन सके, ऐसा कोई विवेक कर सकने वाला कारण नहीं है।

इन्द्रियोका परमाण्वादिक सूक्ष्म पदार्थोंमे परम्परया भी सम्बन्धके अभावका कथन— अब परम्परा सम्बन्धकी बात सुनिये। जब इन्द्रियका परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंके साथ सयोग न बन सका, कोई सम्बन्ध बन ही न सका तब यह कहना कि साक्षात् परमाणुओसे इन्द्रियका सम्बन्ध नही है तो न सही, किन्तु परम्परासे परमाणु रूप आदिकमे इन्द्रियका सम्बन्ध बन जायगा, सो यह भी निराकृत हो जाता है। जब सयोगका ही अभाव है तो सयुक्त समवाय या सयुक्त समवेत समवाय आदिक कोई भी सम्बन्ध कैसे बन सकेगा ? यहाँ नैयायिकने यह बात रखी थी कि इन इन्द्रियोका परमाणु आदिकसे साक्षात् सम्बन्ध नही बन पाता तो परमाणुके रूपके साथ

इन्द्रियका संयुक्त समवाय सम्बन्ध बन जायगा अर्थात् परमाणुमें समवाय सम्बन्धसे रहता है रूप सो उस रूपके साथ इन्द्रियका संयुक्त समवाय सम्बन्ध बन जायगा। सो यह कल्पना करना असंगत है। इसका कारण यह है कि समवायके आधारका जब संयोग ही नहीं बन रहा है, तो संयोग इंद्रियका जिसमें होना चाहिए उस पदार्थमें जो कुछ रूपादिक रह रहा है उससे सम्बन्ध कैसे बन सकेगा? साथ ही यह भी बात विचारणीय है कि कर्ण इन्द्रियमें समस्त शब्दोंका समवाय असम्भव होनेसे शब्दपनेरूपसे समवेत समवाय असम्भव है। इसी प्रकार इंद्रियोंका परमाण्वादिकसे संयोग न होनेसे इंद्रियोंका रूपादिकके साथ संयुक्त समवायादि सम्बन्ध असम्भव है। किसी प्रकार स्पष्टरूपसे भी अन्य इन्द्रियमें रूपादिकका संयुक्त समवाय मान लिया जाता है, किन्तु इसी तरह स्पष्टरूपसे श्रोत्र इन्द्रियके साथ शब्दके शब्दत्वका साथ समवाय सम्बन्ध बन ही नहीं सकता। इस कारण यह बात निर्बाध सिद्ध है कि इन्द्रियका परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंके साथ सम्बन्ध हो ही नहीं सकता और इसी कारण ये परमाणु आदिक किसीके भी इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

मानसिक ज्ञानसे भी सर्वज्ञान हो जानेकी सिद्धिका अभाव—यहाँ नैयायिक कहते हैं कि एक मन ही योगज धर्मसे अनुगृहीत होकर एक साथ समस्त सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय कर लेता है अर्थात् योगियोंके योग समाधिके बलसे अन्तःकरणमें ऐसा अतिशय प्रकट होता है कि उनका मन ही एक साथ समस्त सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको जान लेता है। इसपर मीमांसक उत्तर देते हैं कि योगज धर्मसे अनुगृहीत होकर मनके द्वारा समस्त पदार्थोंके जान लेनेपर भी प्रत्यक्षका उल्लंघन तो होता ही है, क्योंकि प्रत्यक्षसे यह समझमें आ रहा है कि मन अनेक पदार्थोंमें एक साथ प्रवृत्ति नहीं करता। तो मनका विषय है एक पदार्थके एक समय प्रवृत्ति करना लेकिन यहाँ मान लिया गया है कि मन ही एक साथ समस्त सूक्ष्म आदिक पदार्थोंमें प्रवृत्ति करता है। मनका चिन्ह भी नैयायिक सिद्धान्त में यह कहा है कि एक साथ समस्त ज्ञानोंकी उत्पत्ति न होना मनका चिन्ह है तब यह लक्षण तो कभी मिट ही न सकेगा, कारण यह है कि लक्षणके मिट जानेपर लक्ष्यभूत वस्तुका अभाव हो जाता है। फिर योगज धर्ममें अनुगृहीत होकर मनके द्वारा समस्त पदार्थ जान लिए जाते हैं इस कल्पनामें सिद्धान्त से स्पष्ट ही प्रत्यक्षका उल्लंघन हुआ है और यदि मनके सम्बन्धमें प्रत्यक्षका उल्लंघन करनेपर भी यही बात मान रहे हो कि होमे दो प्रत्यक्षका उल्लंघन, तब तो स्वयं यह आत्मा ही समाधि विशेषसे उत्पन्न हुए धर्मके अनुग्रहसे मनकी अपेक्षा न रखकर ही साक्षात् सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको जान जावे। फिर मनकी आवश्यकता ही क्या है? जैसे कि अभी इन्द्रियकी आवश्यकता न रहेगी। यह आत्मा ही स्वयं समस्त पदार्थोंका जाननहार हो जाय। सो नैयायिक लोग ऐसा मानते नहीं और न यह बात हम भी मानते हैं, तब न मनसे समस्त पदार्थोंका प्रत्यक्ष हो सका और न इन्द्रियज्ञानसे समस्त पदार्थोंका प्रत्यक्ष हो सका। मन भी है तो अतिन्द्रिय

थोड़ी इन्द्रिय, और इन्द्रिय तो इन्द्रिय है ही। तब यह सिद्ध हुआ कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ इन्द्रियज्ञानके द्वारा किसीके भी प्रत्यक्ष नही हो सकते।

इन्द्रियप्रत्यक्षसे सूक्ष्मादिक अर्थोकी प्रत्यक्षताका निराकरण करके अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा विप्रकर्षी पदार्थोंकी प्रत्यक्षताके निराकरणके लिये असर्वज्ञवादियोका प्रयास— यहा मीमासकोके द्वारा सूक्ष्म आदिक पदार्थोंके प्रत्यक्ष होनेके अनुमानके सम्बन्धमे दो विकल्प किए गए थे - एक तो यह कि क्या ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके इन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है ? दूसरा यह कि क्या सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे जाना जाता है ? इन दो विकल्पोमें पहिला विकल्प तो नैयायिकोको लक्ष्य करके कहा गया था। क्योकि नैयायिक इन्द्रियज्ञान द्वारा योगीको सकलज्ञ माना है। अब यह दूसरा विकल्प जैन आदिकोका लक्ष्य करके कहा जा रहा है। क्या सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष द्वारा प्रत्यक्ष है, क्या यह मानते हो ? यदि अतीन्द्रिय प्रत्यक्षसे समस्त पदार्थोंकी प्रत्यक्षता साध्य मानते हो तो यह बात यों अयुक्त है कि इस अनुमानमें पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है। अर्थात् पक्षमे प्रतिज्ञामें साध्यमे जो विशेषण दिया गया है कि वह विशेषण ही सिद्ध नही है, क्योकि किसी भी दृष्टान्तमें अतीन्द्रिय ज्ञानसे प्रत्यक्षता प्रसिद्ध नही होती। भले ही प्रकृत अनुमानमें अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा सूक्ष्म आदिक पदार्थ प्रत्यक्ष हैं यह कह लो—लेकिन इसका कोई दृष्टान्त तो बताओ। तो इससे सिद्ध है कि अब दृष्टान्त नही मिलता तो पक्षका विशेषण भी अप्रसिद्ध है। जैसे कि जब सांख्योंके प्रति यह अनुमान बनाया गया कि शब्द विनाशीक हैं तो सांख्यमतमें तो पदार्थोंका, पर्यायोका आविर्भाव तिरोभाव माना है। वहा कोई पदार्थ नही उत्पन्न होते हैं। तो उनके सिद्धान्तसे इस अनुमानका कोई दृष्टान्त ही नही मिल सकता। अथवा विनाशीकपना उनके यहां असिद्ध ही है। तो ऐसे ही अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा सूक्ष्म आदिक पदार्थ प्रत्यक्ष हैं, यह बात भी असिद्ध ही है। कोई सा भी दृष्टान्त ऐसा न मिलेगा कि जिसमे साध्य मिल जाय। दूसरी बात यह है प्रकृत अनुमानमे जो दृष्टान्त दिया गया अग्निका सो इस विकल्पमे अब यो प्रयोग हुआ कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। जैसे कि अग्नि अनुमेय तो है लेकिन अग्नि अनुमेय तो है, परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञानके द्वारा किसीको भी प्रत्यक्ष नही होता और कभी भी उस समय या कुछ समय बाद उस अग्निको देखते हैं तो इन्द्रिय ज्ञान द्वारा ही तो प्रत्यक्ष होता है। तो प्रकृत अनुमानमें कोई दृष्टान्त नही मिल सकता; और जो कुछ भी दृष्टान्त कहा जायगा उसमे साध्य न मिलेगा। इस तरह सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा भी प्रत्यक्ष नही है। तब निष्कर्ष यह निकला कि प्रत्यक्ष हो सकता है दो प्रकारसे—इन्द्रियज्ञान द्वारा अथवा अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा। सो दोनो विकल्पोसे भी सूक्ष्म आदिक पदार्थोंकी प्रत्यक्षता सिद्ध नही होती।

असर्वज्ञवादियोंकी उक्त आरेकाका समाधान—अब उक्त प्रकार मीमांसकोंके द्वारा सर्वज्ञके सद्भावका निषेध करने वाले कथनपर स्याद्वादी समाधान करते हैं कि इस प्रकार विकल्प उठाकर सर्वज्ञकी सत्ताका निराकरण करना युक्तिसंगत नहीं है। कल्पनानुसार कल्पना उठाकर सर्वज्ञत्वके विरोधमें बोलने वाले ये मीमांसक सत्यवादी नहीं हैं। ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं ऐसा तो हम सिद्ध कर नहीं रहे हैं। सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका इन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होना हम भी नहीं मानते, इस कारण प्रथम विकल्पके पक्षमे दिये गए दोषकी तो गुंजाइश ही नहीं है। यदि ऐसा ही निराकरण करना अभीष्ट है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके भी इन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष माने तो उसमें जितने दोष बताये उन सब दोषोंका समर्थन स्याद्वादी भी करते हैं। अब दूसरे विकल्पकी बात सुनो! सूक्ष्म आदिक पदार्थ अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हैं। इस सम्बन्धमें प्रथम ही प्रथम हम यह सिद्ध नहीं कर रहे कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हैं। और, जब हम अभी सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको किसीके अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष नहीं सिद्ध करते हैं तो उसमें यह कहना कि यह पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है अथवा दृष्टान्त साध्यशून्य है, इन दोषोंकी गुंजाइश नहीं, क्योंकि हम तो इस अनुमान द्वारा किसी सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका प्रत्यक्ष सामान्यसे ही किसीके प्रत्यक्षभूतपना सिद्ध कर रहे हैं। अनुमान प्रयोग भी तो ऐसे ही सामान्यरूपसे किया गया है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। तो इसमें हम अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है यह तो नहीं कह रहे। पहिले प्रत्यक्ष सामान्यसे इन विप्रकर्षी पदार्थोंका किसीके प्रत्यक्ष होना प्रसिद्ध है इतना तो मान लें, इस अनुमानमें कोई बाधक प्रमाण भी नहीं आता है। जो जो अनुमेय होते हैं वे वे पदार्थ किसीके द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं, इसमें कोई बाधा भी नहीं तो जो जो भी अनुमेय हैं वे किसीके द्वारा प्रत्यक्ष हैं इसमें किसी भी प्रकारका दोष नहीं आता।

सूक्ष्माद्यर्थको विषय करनेसे सर्वज्ञके ज्ञानकी इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षता की सिद्धि—अब सर्वज्ञत्वके सम्बन्धमें और भी निर्णयकी बात देखिये! सूक्ष्म आदिक पदार्थ सामान्यरूपसे किसीके प्रत्यक्ष हैं यह बात जब सिद्ध हो गई याने सर्वज्ञपनेकी भली प्रकार व्यवस्था बन गई कि हाँ है कोई सर्वज्ञ जो कि सूक्ष्म आदिक पदार्थोंको भी प्रत्यक्षसे जानता है। इसके बाद उसके प्रत्यक्षकी पद्धतिका विचार करिये, परख कीजिये कि सर्वज्ञ जिस प्रत्यक्षके द्वारा समस्त पदार्थोंको जान लेता है वह प्रत्यक्षज्ञान किस प्रकारका है? क्या इन्द्रियकी अपेक्षा रखने वाला सर्वज्ञका प्रत्यक्ष है या मनकी अपेक्षा रखने वाला सर्वज्ञका प्रत्यक्ष है, या इन्द्रिय और मन इन दोनोंकी अपेक्षा न रखने वाला सर्वज्ञका प्रत्यक्ष है? इन तीन बातोंमेंसे प्रथम दो बातें तो सिद्ध नहीं हैं क्योंकि इन्द्रियज्ञानसे अथवा मानसिक ज्ञानसे, और युक्तिसे भी सिद्ध नहीं होता। देखिये! इस सम्बन्धमें अनुमान प्रयोग है कि सर्वज्ञका प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मन

की अपेक्षा नहीं रखता है, क्योंकि सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय करनेसे। इस सम्बन्ध मे व्यतिरेक व्याप्ति द्वारा स्पष्टीकरण किया जाता है कि जो ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखते हुये नही हैं ज्ञान सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय करने वाले भी नहीं हैं। जैसे कि हम लोगोका प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखने वाला नही है अर्थात् इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा रखकर ही हम लोगोका प्रत्यक्षज्ञान बनता है। तब वह सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषयभूत नही है। यह हम आप सब भली भाँति समझ रहे हैं। और योगियोंका प्रत्यक्ष सूक्ष्म आदिक अर्थोंका विषय करने वाला है (यह उपनय है) इस कारण यह सिद्ध है कि सर्वज्ञका प्रत्यक्ष इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नही रखता (यह निगमन है) यह निर्णीत हुआ ?

सर्वज्ञके ज्ञानकी इन्द्रियानिन्द्रियानपेक्षता सिद्ध करनेवाले हेतुकी अव्यभिचारिताका प्रतिपादन—यहाँ कोई शकाकार कहता है कि सर्वज्ञके प्रत्यक्षको इन्द्रियानिन्द्रियापेक्ष सिद्ध करनेके लिए जो यह हेतु दिया है कि "सूक्ष्म आदिक पदार्थो को वह विषय करता है" सो सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका विषय करनेरूप यह हेतु तो अवधिज्ञान और मन. पर्ययज्ञान जो प्रत्यक्ष माने गए हैं उनमे भी चला जाता है, किंतु साध्य नही है वहाँ इस कारणसे यह हेतु व्यभिचारी हो जायगा। समाधानमे कहते हैं कि अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञान भी इन्द्रिय तथा मनकी अपेक्षा नहीं रखते। अवधिज्ञानको विषय है विप्रकर्षी रूपी पदार्थ और मन पर्ययज्ञानका विषय है दूसरेके मन में ठहरे हुए पदार्थ, तो अवधिज्ञान मन. पर्ययज्ञानमें जो अपने विषयको जाना उस जाननेमें उनको इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नही रखनी पड़ी। लक्षण ही प्रत्यक्षका यह है कि जो इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्म शक्तिसे पदार्थको जाने यहाँ इस प्रत्यक्षसे मतलब पारमार्थिक प्रत्यक्षसे है। व्यवहारिमे जो प्रत्यक्ष बताया जाता है वह तो सांव्यवहारिक है, अतएव वह वस्तुत. परोक्ष ही है। अवधिज्ञान इन्द्रिय और मनकी सहायताके बिना केवल आत्मशक्तिसे जानता है। इसी प्रकार मन पर्ययज्ञान भी इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखकर केवल आत्मशक्तिसे जानता है इस कारण हेतुको इन दोनो ज्ञानोंके साथ व्यभिचार दोष नही आता। यो यह हेतु निर्दोष है। जो ज्ञान सूक्ष्मादिक विप्रकर्षी पदार्थोको विषय करता होगा वह इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा नही रखा करता है। इस तरह प्रभुका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय और मनकी अपेक्षा न रखने वाला है और सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थोंको स्पष्ट जानने वाला है।

सर्वज्ञको तीन विकल्पोमे सविशेषण बनाकर असर्वज्ञवादी द्वारा सर्वज्ञत्वके निराकरणका प्रयास—अब यहा शकाकार मीमासक स्याद्वादियोसे कहते हैं कि यह बतलावो कि यहा जो सिद्ध किया जा रहा है कि सूक्ष्म आदिक पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष हैं सो यह सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका प्रत्यक्षपना किस जीवके सिद्ध किया जा रहा है ? क्या अरहतके यह प्रत्यक्षपना सिद्ध किया जा रहा है या अनहत बुद्ध आदिक

यह सर्वज्ञता सिद्ध की जा रही है अथवा न अरहंतके न अनर्हंतके अर्थात् दानोके किसीके सिद्ध नही किया जाता है, किन्तु किसी सामान्य आत्माकी सर्वज्ञता सिद्ध की जाती है ? इन तीन विकल्पोंमेंसे यदि कहो कि अरहंतमें सूक्ष्म आदिक अर्थोंकी प्रत्यक्षता सिद्ध की जाती है अर्थात् यदि विप्रकृष्ट पदार्थोंका प्रत्यक्ष होना अरहंतके सिद्ध किया जा रहा है तो इसमे पक्ष दोष आया । जो सिद्ध किया जा रहा है उसका विशेषण सिद्ध नहीं है और इस ही कारण उसमें अनुमानकी व्याप्ति नही बनती है । जहा जहां अनुमेयपना हो वहां वहां किसी अरहंतके प्रत्यक्षपना है ऐसी व्याप्ति नही बनती । इस कारणसे यह पक्षदोष आया । तब अरहंतको सर्वज्ञता सिद्ध की जाती है यह बात तो सिद्ध न हो सकेगी । यदि कहो कि अरहंतके सिवाय अन्य दूसरेकी सर्वज्ञता सिद्ध की जा रही है तो इसमें तो तुम्हारे अनिष्ट मतव्यका प्रसग आया । उनको सर्वज्ञपना यहां तुम स्याद्वादी नही मान रहे हो और साथ ही उस ही प्रकार पक्षदोष भी आया वहां भी व्याप्ति सिद्ध नहीं हो सकती कि जहां अनुमेयपना हो वहां किसी अनर्हन्तके प्रत्यक्षपना है ऐसी व्याप्ति नहीं बनती । अब अरहंत और अनर्हंतको छोड़कर तीसरा और सामान्य आत्मा है ही कौन, जिसमें कि सूक्ष्म आदिक पदार्थोका प्रत्यक्षपना सिद्ध किया जाय? तो यो तीनो विकल्पोंमें सूक्ष्म आदिक पदार्थोकी प्रत्यक्षता सिद्ध नही होती ।

उक्त शकाके समाधानमें शकाकाराभिमत शब्दनित्यत्वके प्रयोगमे विकल्पजालोकी समानताका उद्घाटन—उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि प्रकृत अनुमानमे इस तरहके विकल्पजाल उठाना तो शब्दमें नित्यपना सिद्ध करनेमें भी समान है । मीमासक लोग जो कि यहां सर्वज्ञके सद्भावमें शका कर रहे हैं और जिन्होंने उक्त प्रकारसे तीन विकल्प उठाये हैं वे शब्दको नित्य मानते हैं सो वे जब शब्दको नित्य सिद्ध करते तो वहांपर भी ये तीन विकल्प उपस्थित होते हैं कि वे बतावें कि शब्दोमें नित्यपना जो सिद्ध किया जा रहा है तो क्या सर्वव्यापी शब्दोंमें नित्यपना सिद्ध किया जा रहा है या असर्वगत, अव्यापी शब्दोमें नित्यपना सिद्ध किया जा रहा है ? या सर्वगत व असर्वगतसे भिन्न किन्हीं सामान्य शब्दोमें नित्यपना सिद्ध किया जा रहा है ? यदि कहो कि हम अकृतकत्व हेतुसे सर्वगत शब्दोंमें नित्यपना सिद्ध कर रहे हैं याने सर्वगत शब्द नित्य है अकृतक होनेसे । यो हम सर्वव्यापी शब्दोमें सिद्ध कर रहे हैं तब तो उसमें विशेषण अप्रसिद्ध होनेसे पक्ष दोष आयगा अर्थात् उनका पक्ष सिद्ध न हो सकेगा । इसी कारण उसकी व्याप्ति भी नहीं बन सकती कि जो जो अकृतक हों वे वे सर्वगत शब्दोके नित्यपनेसे सहित होंगे, ऐसी कोई व्याप्ति नहीं बनती । यदि कहें वे कि हम अव्यापी शब्दोंमें नित्यपना सिद्ध कर रहे हैं तो इसमें उनके सिद्धान्तका विघात है । मीमांसकोंने शब्दको अव्यापी नहीं माना और फिर अव्यापी शब्दोमें भी नित्यपना सिद्ध करनेका अनुमान बनाया जायगा तो वहां भी पक्षदोष और अप्रसिद्ध विशेषणका कलक रहता ही है । अब रहा तीसरा विकल्प

सो सर्वव्यापी और अव्यापी शब्दोको छोडकर तीसरा सामान्य शब्द और होगा ही क्या ? जिसे कि दोनों विकल्पोमें दिये गए दोष प्रसगके परिहारके लिये माने जायें, लो इस तरह शब्दोका नित्यपना भी यह शकाकार सिद्ध न कर सकेगा।

शकाकाराभिमत शब्दसवगतत्वके प्रयोगमे भी विकल्पजालोकी समानताका उद्घाटन—अब शकाकार अपने शब्दोके सर्वव्यापीपना सिद्ध करनेके सम्बन्धमें भी सोच ले वहाँ भी ये तीन विकल्पजाल लगाये जा सकते हैं। इन शब्दो मे जब व्यापकता सिद्ध करने चलेंगे तो उनसे पूछा जा सकता है कि क्या अमूर्त शब्दोमें व्यापकता सिद्ध कर रहे हो अथवा मूर्त और अमूर्तसे अलग किन्ही सामान्य शब्दोमें व्यापकता सिद्ध करते हो ? यदि कहो कि अमूर्त शब्दोमे व्यापीपना सिद्ध किया जा रहा है तो अमूर्त शब्दोंमे व्यापीपना सिद्ध करनेमे जो पक्ष बनेगा उस पक्ष का विशेषण प्रसिद्ध नहीं है। क्या बनेगा प्रयोग कि अमूर्त शब्द सर्वव्यापी है। अब इसमें जो हेतु दोगे उस हेतुका साध्यके साथ व्याप्ति नहीं रह सकती। हेतु दिया गया है कि आकाशका गुण होनेसे। तो जो जो आकाशका गुण होता है वह अमूर्त शब्दोके नित्यपनेसे सहित है। यह कोई व्याप्ति न बनी। तो व्याप्ति भी सिद्ध नही होती। यदि कहो कि हम मूर्त शब्दोमें सर्वव्यापीपना सिद्ध कर रहे हैं तो इसमे अनिष्ट मतव्य सिद्ध होगा। मीमासक लोग शब्दोको मूर्तिक नही मानते हैं और यहाँ दूसरा विकल्प स्वीकार कर रहे हो कि मूर्तिक शब्दोमे सर्वव्यापीपना सिद्ध करते हैं तो यह उनके लिये अनिष्ट आपत्ति ही तो हुई। अब तीसरे विकल्पकी बात सुनो—मूर्त और अमूर्त शब्दको छोडकर तीसरा अब वह कौनसा शब्द है जिसे सामान्य शब्द कहा जाय ? जिसको आप दोनो पक्षोमे आये हुए दोषप्रसगके निराकरणके लिये मानें। अर्थात् मूर्त शब्द अमूर्त शब्द इन दो को छोडकर तीसरी कोई शब्दके बारेमे कल्पना नहीं है। तो लो जिससे यह कह सको कि यो नहीं तो व्यापक शब्द और अव्यापक शब्दको छोड़कर कोई सामान्य शब्द रहा और इसी तरह मूर्त शब्द और अमूर्त शब्दको छोडकर कोई सामान्य शब्द रहा। यो विकल्पजाल उठाकर सर्वज्ञता निषेध करने चलोगे तो अपना मतव्य भी सिद्ध नही कर सकते।

शकाकार व कल्पित विकल्पजालोसे सकल अनुमानोके उच्छेदका प्रसग—और भी देखिये—इस तरह विकल्प जाल उठानेसे तो समस्त अनुमानोकी भी मुद्रा खण्डित हो जायगी। अर्थात् किसी भी प्रकारका अनुमान न बन सकेगा, क्योंकि जो भी अनुमान बनाओगे उसमें तीन विकल्प कर दिये जायेंगे और फिर साधन साध्यकी व्याप्ति सिद्ध न हो सकेगी। यो व्यर्थ कल्पनायें करके सर्वज्ञत्वके निषेधके लिये अपनी कल्पनायें बनाना यह श्रेयस्कर नही है। देखिये सभी अनुमानो की मुद्रा कैसे खण्डित हो जाती है इन विकल्पजालोमें। किसीने कहा कि यह पर्वत अग्निमान् है धूमवान होनेसे तो यहा भी तीन विकल्पजाल पूर दिये जावेंगे। अच्छा,

बनाया क्या अग्निमान पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं। या अग्निमान पवतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं। या अग्निमान अनग्निमान पवत भिन्न किसी सामान्य पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं। यदि प्रथम विकल्प लोगे? अग्निमान पर्वतमें अग्नि सिद्ध कर रहे हैं यह कहोगे तो इसमें पक्ष अप्रसिद्ध विशेषण है, क्योंकि जब तक अग्नि प्रसिद्ध (सिद्ध) नहीं हो जाती तब तक अग्निमान पवत यह पक्ष कैसे कहा जा सकता है और इसी कारण इसकी व्याप्ति न बनगी। यदि अनग्निमान पवतमें अग्नि सिद्ध करनेकी बात कहोगे तो इसमें अनिष्टसिद्धि है अनग्निमान पवतमें तो अग्निका अभाव ही सिद्ध होगा। यदि तीसरा विकल्प लोगे तो यह या असगत है कि अग्निमान पवत व अनग्निमान पर्वत इनसे भिन्न पवत और हो ही क्या सकता है। तो लो, यह अनुमान भी न सिद्ध कर सकोगे। अत ऐसे ३ विकल्पजाल अथवा विवेकसे बाहर की बात हैं।

सर्वज्ञत्वके प्रतिषेधके साधक अनुमानकी भी विकल्पजालपद्धतिसे असिद्धि—अब यहां असर्वज्ञवादी सर्वज्ञवादियोंसे कह रहे हैं कि तुम्हारे प्रकृत अनुमान में जो विकल्पजाल उठाये गए हैं वे किसी आधारपर ही उठाये गए हैं, क्योंकि सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला कोई पुरुष नहीं है, इस बातको सिद्धि अनुमान प्रयोगसे होती है। कोई भी आत्मा सूक्ष्म आदिक विप्रकर्षी पदार्थोंका साक्षात्कार करने वाला नहीं है। क्योंकि पुरुष होनेसे। जैसे कि रास्तागीर भी पुरुष है और वह सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात् कर सकने वाला नहीं है। ऐसे ही सर्वज्ञत्वरूपसे विवादापन्न पुरुष भी पुरुष ही है। वह भी कोई विप्रकर्षी पदार्थोंका साक्षात्कार कर सकने वाला नहीं हो सकता। सर्वज्ञवादीकी इस शंकाके समाधानमें भी सर्वज्ञत्वनिषेधक शंकाकारके अनुमानमें भी तीन विकल्पजाल उठाये जा सकते हैं—यहां असर्वज्ञवादी जो पुरुष उस सर्वज्ञपनेके प्रतिषेधको सिद्ध कर रहे हैं तो वे यह बतायें कि क्या अरहंतके सर्वज्ञत्वके प्रतिषेधको सिद्ध कर रहे हैं या अनर्हन्तके सर्वज्ञत्वके निषेधको सिद्ध कर रहे हैं, या अरहत और अनर्हतके सिवाय किसी अन्य सामान्य आत्माके सर्वज्ञत्वके निषेधको सिद्ध कर रहे हैं? यदि वे कहें कि हम अरहंतके सर्वज्ञपनेका निषेध सिद्ध कर रहे हैं तो यह अप्रसिद्ध विशेषण पक्ष हो गया। अर्थात् इन धर्मीमें जो अरहत विशेषण दिया है वह अप्रसिद्ध है। और इसी कारण इसकी व्याप्ति भी सिद्ध नहीं होती। क्या यह व्याप्ति बनायी जा सकती है कि जो जो पुरुष होते हैं वे अरहंतके सर्वज्ञत्वके निषेधसे युक्त होते हैं? यह तो कोई व्याप्तिका ढंग नहीं है और फिर इसमें जो भी दृष्टान्त दोगे वह साध्यशून्य होगा। अब यदि दूसरा विकल्प मानते हो कि हम पुरुषत्व हेतुसे अनर्हतके सर्वज्ञपनेका निषेध कर रहे हैं तो इसमें भी अनिष्ट प्रसंग आ जाता है, क्योंकि शंकाकार अनर्हंतके सर्वज्ञत्वका निषेध कर रहे हैं। ऐसा कहनेसे यह सिद्ध हो जाता है तब फिर अर्हंत ही सर्वज्ञ है। अतएव यह दूसरा विकल्प शंकाकारको अनिष्ट पड़ जाता है। तीसरे विकल्पकी बात देखिये-

प्रसंगमें जो विकल्पजाल उठाकर निराकरण किया है वह न बन सकेगा। जैसे कि हम अनुमान प्रयोग यह करेंगे कि जिसमें न सर्वगतपनेकी विवक्षा है न असर्वगतपनेकी विवक्षा है ऐसे अविशेष शब्द ही नित्य हैं अकृतक होनेसे। यों हम अविशेष शब्दमें नित्यपना सिद्ध करना चाहते हैं तब तो उसमें कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार हम अविवक्षित विशेषण शब्दमें सर्वगतपना सिद्ध करना चाहते हैं याने न तो अमूर्त विशेषण विशिष्ट शब्दमें सर्वव्यापीपना सिद्ध करना चाहते हैं और न मूर्तत्व विशिष्ट शब्दमें सर्वव्यापीपना सिद्ध करना चाहते हैं, किन्तु अमूर्त और मूर्त इन दो विशेषणोंकी विवक्षा न रखकर केवल अविशिष्ट शब्दमें सर्वव्यापीपना सिद्ध करना चाहते हैं तब तो कोई दोषकी बात नहीं आ सकती है। अब उक्त आक्षेपपरिहारके उत्तरमें यह कह रहे हैं कि इस ही प्रकार तो प्रकृत सर्वज्ञत्व सिद्ध वाले अनुमानमें भी न तो अरहत विशेषण विवक्षित है न अनर्हन्त विशेषण विवक्षित है, किन्तु अरहत विशेषणकी विवक्षासे रहित, अनर्हन्त विशेषणकी विवक्षासे रहित किसी अविवक्षित विशेषण पुरुषमें ही विप्रकर्षी पदार्थोंका साक्षात्कारपना सिद्ध कर रहे हैं जिसका कि अनुमान प्रयोगमें यों है कि अरहत विशेषणसे रहित अनर्हत विशेषणसे रहित सामान्य किसी अविशिष्ट पुरुषके ये सूक्ष्म आदिक पदार्थ प्रत्यक्ष हैं अनुमेय होनेसे। इस प्रकार अविशेष आत्मामें प्रत्यक्षपना सिद्ध करनेपर हम भी कोई दोष नहीं देखते हैं। सिवाय एक शंकाकारकी हठकी ही बात है। अप्रतिष्ठित असिद्ध जिन विकल्पजालोंकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है ऐसे मिथ्या विकल्प जाल उठाये जाये कि वे अटपट विकल्पजाल सर्वज्ञत्वसाधक अनुमानका निराकरण करनेमें असमर्थ हैं। सिवाय एक दोदाग्रहीके और यहाँ कोई बात नहीं है जो भी शंकाकारने विकल्पजाल उठाये हैं वे सब अप्रतिष्ठित हैं महत्त्वहीन हैं, उनमें कोई सामर्थ्य ही नहीं है, क्योंकि ये विकल्प जाल साधनाभासकी तरह सच्चे साधनमें भी, जिसमें मिथ्या विकल्प नहीं लगाये जा सकते उनमें भी लगाये जा सकते हैं। इस कारण विकल्पजाल अप्रतिष्ठित हैं महत्त्वहीन हैं। अतएव यह सिद्ध हुआ कि किसी पुरुषमें सूक्ष्म आदिक पदार्थोंका साक्षात्कारपना है अनुमेय होनेसे, यह हेतु निर्दोष है और इसमें नियमतः यह सिद्ध हो जाता है कि जब कि सूक्ष्म अन्तरित दूरवर्ती पदार्थ अनुमेय हैं तो किसी न किसीके द्वारा प्रत्यक्षभूत अवश्य ही हैं। यों अनुमेयत्व हेतुसे किसी परम पुरुषके सर्वज्ञपना सिद्ध हो ही जाता है।

अर्हन्तके ही आप्तता व विश्वसाक्षात्कारिता होनेके कारणका प्रश्न— किसी पुरुषके सर्वज्ञपनेकी सिद्धिके बाद अब अलंकाररूपमें मानो परमात्मा अरहत ही प्रश्न कर रहे हों कि भले ही किसी पुरुषके कर्मरूपी पहाड़ोंका भेदनामात्र माना गया और इस ही प्रकार किसी पुरुषके समस्त तत्त्वोंका साक्षात्कारीपना मान भी लिया गया और जैसे कि अभी कहा है मानना ही होगा। उसमें प्रमाणका सद्भाव है, सर्वज्ञत्वमें बाधा देने वाले किसी भी प्रमाणकी सम्भवता नहीं है सो जैसे कर्मपहाड़का

भेदने वाला कोई है यह सिद्ध हुआ और समस्त तत्त्वोका साक्षात्कार करने वाला कोई है यह सिद्ध हुआ तो होने दो परन्तु वह सर्वज्ञ परमात्मा अरहत ही है, ऐसा निश्चय कैसे किया जा सकता है जिससे कि हे समन्तभद्र ! मैं तुम्हारा इतना महान अभिवन्द्य होऊँ ! इस प्रकार निश्चित् अभ्युपगमपूर्वक भगवानके सर्वज्ञत्वका प्रश्न होने पर समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि—

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्रविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥ ६ ॥

अर्हतके सर्वज्ञत्वकी सिद्धिका एव विशेषणोमे कार्यकारणभावकी गर्भितताका कथन—हे अरहन प्रभो ! वह सर्वज्ञ तुम ही हो, तुम निर्दोष हो, युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध वचन कहने वाले हो अतएव तुम ही सर्वज्ञ हो आपके उपदेश मे अविरोध है यह यो निश्चित होता है कि किसी भी प्रमाणसे आपका माना हुआ सिद्धान्त विरुद्ध नही पडता है । आपका उपदेश विरोध रहित है । इस कारिकामें मुख्य विधेय है यह कि कि हे अरहन प्रभु ! जिस प्रकार सर्वज्ञका साधन पहिले किया गया है वैसे सर्वज्ञ तुम हो । अब इस मुख्य कथनके साथ इस कारिकामें जितने विशेषण आये हैं वे सब हेतु रूप बन जाते हैं । बडे पुरुषोके वचन अनायास सुगम ही इस प्रकार निकलते हैं कि वे वचन परस्पर कार्य कारणभावको सिद्ध करने वाले होते हैं । यहाँ यह कहा गया कि हे प्रभो ! तुम ही सर्वज्ञ हो, निर्दोष हो । तो यहाँ निर्दोष होना एक हेतुरूप वचन है । प्रभु तुम ही सर्वज्ञ हो निर्दोष होनेसे । जिसमें दोष सम्भव हैं वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता । चू कि आप निर्दोष हैं, रागद्वेष मोहादिक दोष आपके नही हैं, क्षुधा तृषा आदिक दोष भी आपके नहीं हैं अतएव आप ही सर्वज्ञ हो । अब इसके बाद दूसरा विशेषण दिया है कि युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध वचन कहने वाले हो । यह द्वितीय विशेषण निर्दोषपनेकी सिद्धिमे हेतुपना रख रहा है कि प्रभु आप निर्दोष क्यो हैं, यो कि आपका वचन युक्ति और शास्त्रसे विरुद्ध नहीं पडता इस द्वितीय विशेषणका हेतु इस कारिकाके उत्तरार्द्धमे बताया गया है कि जिस कारणसे कि आपका इष्ट सिद्धान्त किसी भी प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधा नहीं जाता ।

प्रभुको निर्दोष शब्दसे पुकारनेका भाव—इस कारिकामें जो निर्दोष शब्द दिया है उसमें दोषरहित है ऐसा कहनेपर अज्ञान रागद्वेषादिक सब दोषोसे रहित हैं ऐसा समझना चाहिये । जिनमेंसे ये दोष अलग हो गए हो, जो दोषोसे अलग हो गए हैं उसे निर्दोष कहते हैं । निर्दोष शब्दमे जो निर उपसर्ग है वह निष्कान्त अर्थमें है । अदोष और निर्दोषके भाव जुदे हैं । अदोषका अर्थ है जिसमें दोष नहीं है । तो यो सामान्यरूपसे अदोष, अराग, अद्वेष पुद्गलको भी कह सकते हैं, उनमें भी राग नहीं, द्वेष नही, लेकिन, निर्दोष पुद्गलको नहीं कह सकते । निर्दोष शब्द यह सिद्ध

करता है कि जिसमें दोष थे फिर उसमें दोष नहीं रहे तो वह निर्दोष कहलाता है। अरहन्त देवके आत्मामें क्षीणमोहनामक गुणस्थान होनेसे पहिले रागादि दोष थे, किन्तु अब रागादिक निवृत्त हो चुके हैं। रागद्वेषादिक भावोंका अचेतनमें होनेका प्रसग ही नहीं अतएव निर्दोष शब्दसे अचेतनको नहीं कहा जा सकता। ये अज्ञान रागद्वेष चेतन वस्तुमें ही हुआ करते हैं। तो जो चेतन इस दोषसे अलग हो गया है उसे निर्दोष कहते हैं।

अरहत सर्वज्ञकी निर्दोषताका साधक अनुमान प्रयोग—यह बात प्रमाणबलसे सिद्ध है कि सर्वज्ञ और वीतराग जो सामान्यतया अभी बताये गए हैं—प्रभो! अरहत तुम ही हो। क्यों अरहत ही सर्वज्ञ वीतराग है? तो उसमें हेतु दिया गया है कि युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध वचन वाला होनेसे। इसका अनुमान प्रयोग यों होगा कि अरहत हो वीतराग सवज्ञ है क्योंकि युक्ति शास्त्रका अविरोधी वचनपना पाया जानेसे। जो जिस सम्बन्धमें युक्तिशास्त्रसे अविरुद्ध वचन वाला है वह उस तत्त्वमें निर्दोष देखा गया है। जैसे कहीं रोगके उपशम करनेमें कोई वैद्य युक्ति और वैद्यशास्त्रसे अविरुद्ध वचन वाला है तो वह निर्दोष जाना जाता है। कोई रोगी किसी वैद्यपर तब ही श्रद्धा करता है जब कि वैद्य नाडी देखकर रोगीको स्वय बताने लगता है—तुमको इतना बुखार है, तुमको इस इस अङ्गमें पीडा होती है आदिक जब वचन बोलता है तो रोगीको विश्वास हो जाता है कि यह निर्दोष वैद्य है, अज्ञानी वैद्य नहीं है। तो युक्तिशास्त्रसे अविरोधी वचन वाला अरहन्त भगवान है। अरहत प्रभुने मुक्तिके स्वरूपमें, मुक्तिके कारणोंके सम्बन्धमें जो भी उपदेश किया है जो वस्तु स्वरूप बताया है वे सब युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध वचन हैं। इस ही कारण हे प्रभो! तुम निर्दोष हो।

आर्हत वचनमें अविरोधताके कारणका प्रतिपादन—अब प्रभु युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध वचन वाले हैं यह कैसे सिद्ध हुआ? अथवा इसको यों अलंकार रूपमें समझिये कि यहाँ मानो परमात्मा अरहत ही कह रहे हो कि मेरा वचन युक्ति और शास्त्रसे पूर्णतया अविरुद्ध कैसे है? जिससे कि मेरा वचन प्रमाणसिद्ध माना जाय? तो इसके उत्तरमें इस ही कारिकामें कहा गया है कि जिस कारणसे आपका इष्ट मतव्य, उपदेश, सिद्धान्त मोक्ष आदिक प्रसिद्ध प्रमाणसे बाँधे नहीं जाते हैं इससे सिद्ध है कि आपका वचन युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध है। किस प्रकार अबाधित है इस सम्बन्धमें प्रयोग करते हैं। जिस सम्बन्धमें जिसका अभिमत तत्त्व प्रमाणसे बाधा नहीं जाता वह उस सम्बन्धमें युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध वचन वाला कहलाता है। जैसे कि रोगके स्वरूप और रोगके कारणके सम्बन्धमें स्वास्थ्यका स्वरूप और स्वास्थ्यके कारणके जानने बतानेके सम्बन्धमें वैद्य युक्ति शास्त्रसे अविरोधी वचन वाला है क्योंकि उसकी कही हुई बात प्रमाणसे बाधित नहीं होती है,

अभिमत तत्त्व प्रमाणसे बाधित नहीं होता है। जो प्रभुने मोक्ष, मोक्षकारण, संसार, संसारका कारणका स्वरूप कहा है वह किसी प्रमाणसे बाधित नहीं होता इस कारण हे प्रभो, अरहन्त ! तुम मुक्ति और संसारके कारण तत्त्वस्वरूपादिकके सम्बन्धमे युक्ति और शास्त्रोसे अविरुद्ध वचन वाले सिद्ध होते हो। इस प्रकार जब यह सिद्ध हो गया कि मुक्ति, संसार, वस्तुस्वरूप ये सब युक्ति और शास्त्रोंसे अविरुद्ध हैं। तो भगवानका वचन युक्ति और शास्त्रोसे अविरुद्ध है, यह सिद्ध हो जाता है। जो बात कही गई है वह बात यदि सत्य उतरती है तो वचनको अविरोध कहा जाता है। जैसे कोई पुरुष कुछ भी वचन बोलता है देखो वह वहाँ सीप पड़ी है और परख लिया कि यह सीप ही है, तो सब कहने लगते हैं कि इस पुरुषका ज्ञान सही है, अविरुद्ध है। तो ज्ञानकी प्रमाणता बाह्य वस्तुको परखके बाद आया करती है। यद्यपि ज्ञान तो जिस समय हुआ उस ही समय प्रमाणभूत है। लेकिन लोक निर्णय तो तब होता है जब कि ज्ञानमे किसीके सम्बन्धमें जैसा जाना गया वैसा स्वरूप वस्तु में पाया गया हो। तो प्रभु आपकी दिव्यध्वनिमे, आपकी परम्परासे प्रणीत उपदेशमे जो बात कही गई है वैसा ही बाह्य पदार्थोंमें निरखा गया है। अतएव आपका वचन युक्ति और शास्त्रसे अविरोधी है।

अरहन्तके युक्ति शास्त्राविरोधिवाक्त्व सिद्ध करनेके अनुमानमे वैद्यके उदाहरणकी उपयुक्तता—इस कारिकाके व्याख्यानमें अभी जो एक बार जो वैद्य दृष्टान्त दिया गया है। दृष्टान्त तो व्याख्याकार कोई अपनी ओरसे भी दे सकता है, लेकिन इस आप्तमीमांसा मूलग्रन्थके रचयिता स्वामी समंतभद्रने स्वयं ही स्वयंभूनाथ की स्तुतिके समय वैद्यका दृष्टान्त दिया है। हे प्रभो सम्भवनाथ ! तुम संसारके तृषा रोगसे संतप्त हुए मनुष्योके लिये यहाँ एक आकस्मिक वैद्य हो, ऐसा स्वयं ग्रन्थकारने वृहत् स्वयंभूस्तोत्रमे कहा है। सो वैद्यका दृष्टान्त यहाँ युक्त बैठता है। और आप्त-मीमांसा समन्तभद्राचार्यका ही ग्रन्थ है और वृहत् स्वयंभूस्तोत्र भी आचार्य समन्तभद्र रचित है। और यह वैद्यका दृष्टान्त इस कारिकामें बहुत उपयुक्त बैठ रहा है इसलिये यद्यपि स्वयं कारिकामे दृष्टान्त नहीं कहा गया है तथापि इस दृष्टान्तकी उपयुक्तता व संगतता प्रकरणोचित है। कारिकामें संक्षेपसे वर्णन किया जाता है, लेकिन दृष्टान्त युक्त बैठता है अतएव वैद्यका दृष्टान्त इस प्रसंगमे लगाना बिल्कुल युक्त है और उससे प्रभुकी निर्दोषता प्रभुके वचनोंकी अविरोधता सिद्ध होती है। यों सामा-न्यरूपसे जो सर्वज्ञपना सिद्ध किया गया था, हे प्रभो वह सर्वज्ञ तुम ही हो।

कारिकामे दृष्टान्तके न कहनेका भी उचित रहस्य—इस कारिकामें जो दृष्टान्त नहीं कहा गया है उसके कारण तीन हैं—एक तो कारिका संक्षेपरूपसे वर्णन करनेके लिये होती है। कारिकामें वर्ण्यमान तत्त्वके मुख्य साधक वचनके प्रयोगकी आवश्यकता होती है। अतः संक्षेपके प्रतिपादनके नाते होनेसे कारिकामे दृष्टान्त न

कहना कोई विरोधकी बात नहीं है। इसका दूसरा कारण यह है कि दृष्टान्त न कहनेसे हेतुका जो मुख्य लक्षण है अन्यथानुपपत्ति उस अन्यथानुपपत्तिके नियमकी प्रधानतासे अवलोकन होगा, जो कि किसी बातके सिद्ध करनेके लिए एक अमोघ साधक है। अन्यथानुपपत्ति नियम ही हेतुका लक्षण है और उसकी प्रधानता इसमें देखते हैं इस कारण यहाँ दृष्टान्तका प्रयोग नहीं किया है। अब तीसरी बात सुनिये—इससे यह भी एक बात प्रसिद्ध होती है कि हेतुका लक्षण एक अन्यथानुपपत्ति ही है। जहाँ अन्यथानुपपत्ति पायी जाय वह हेतु सही है, वह अनुमान सही है। अन्यथानुपपत्तिका अर्थ है साध्यके बिना साधनका न होना। जो साधन साध्यके बिना नहीं हो सकता है वह साधन जब उपलब्ध हो तब वह साध्यको नियमसे सिद्ध करता ही है। तो पक्षधर्मत्व आदिक जो अनुमानके ५ रूप कहे हैं, जिनको कोई तीन रूपोंमें भी मानते हैं, कोई ५ रूपोंमें मानते हैं। उन रूपोंके उन सद्भावोंके बिना भी अन्यथानुपपत्ति नियम वाले हेतुसे साध्यकी सिद्धि होती है। यह भी बताना इस कारिकामें दृष्टान्त न कहने का प्रयोजन है।

भगवानके अभिमत मोक्षतत्त्वकी प्रत्यक्षसे अबाधितता—इस कारिका में यह बताया जा रहा है कि हे प्रभो! तुम्हारा जो मन्तव्य है, सिद्धान्त है, जो आपने मोक्ष और मोक्षका कारण तथा संसार संसारका कारण बताया है इन चारोंके स्वरूपमें बाधा नहीं आती। इन चारोंमेंसे पहिले मोक्षतत्त्व किसी प्रमाणसे बाधित नहीं होता है इसकी भी परख कर लीजिये। प्रत्यक्ष प्रमाण तो उस मोक्ष तत्त्वका बाधक हो ही नहीं सकता, क्योंकि प्रत्यक्ष दो प्रकारके होते हैं—अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष, इन्द्रियज प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्षका तो वह विषय हो नहीं है, उसमें बाधा वह क्या डालेगा? अतीन्द्रिय प्रत्यक्षकी तो अभी विस्तृतरूपसे सिद्धि की जा चुकी है और उससे सिद्ध ही हो गया कि सर्वज्ञ प्रभु विश्वतत्त्वके ज्ञाता हैं और इस प्रकरणमें तो बाधकरूपमें पूछव्य प्रत्यक्षसे मतलब सांव्यवहारिक प्रत्यक्षसे है प्रत्यक्ष मोक्ष आदिक तत्त्वोंका बाधक नहीं है।

अनुमानप्रमाणसे मोक्ष तत्त्वकी अबाधितता—अब यहाँ शंकाकार शंका करता है कि प्रत्यक्षसे उन तत्त्वोंमें बाधा नहीं आयी, किन्तु अनुमानसे तो बाधा आ जाती है। यहाँ शंका करने वाला असर्वज्ञवादी है। उन असर्वज्ञवादियोंमें चार्वाक जब शंका कर रहे हैं तो वह यद्यपि अनुमान नहीं मानता तो स्वयं अनुमान प्रमाण न माननेपर भी दूसरे मतकी अपेक्षासे अनुमानको दिखा रहा है। अन्य अनुमान प्रमाणवादी भी इस शंकाको कर सकता है। क्या शंका की जा रही है कि देखिये किसी भी पुरुषके मोक्ष नहीं होता, क्योंकि मोक्षकी उपलब्धि कराने वाले ५ प्रमाणों का यह मोक्ष विषय नहीं है। जैसे कर्मरोग बन्ध्यापुत्र आदि। दृष्टान्तमें परखिये जैसे कछुवाके रोम आदिक हैं ही नहीं सो यों ही तो समझा जाता है कूर्मरोमादिका

असत्त्व कि उस चीजकी उपलब्धि करानेमें समर्थ सद्भाव साधक पाँचो प्रमाण लगते नही हैं। प्रमाण दार्शनिक क्षेत्रमें अधिकसे अधिक ६ माने गए हैं। इन ६ प्रमाणोंको मीमांसक मानते हैं। सो उनमें ५ तो हैं सद्भावको सिद्ध करने वाले प्रमाण और एक है अभाव नामका प्रमाण। तो उन पाँचो प्रमाणोंका विषय नही है मोक्ष इस कारणसे मोक्ष किसीके होता ही नही है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह शंका सगत नही है क्योंकि मोक्षका अनुमानसे और आगमसे प्रामाण्य प्रसिद्ध है। अतएव मोक्षका अस्तित्त्व बराबर व्यवस्थित है। और इस सम्बन्धमें आगे विशेषणरूपसे कथन किया जायगा। अभी सामान्यरूपसे सुन लीजिये। जब हम कहीं अनन्त ज्ञानादिक स्वरूपका लाभ देखते हैं, जिसको अनुमानसे सिद्ध कर दिया गया है तो वह फल है किसका सो तो विचारिये। किसी जीवमें अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति प्रकट हो जाय, जिसमें कि पहिले प्रकट न थी और अब यह सब प्रकट हो गया तो यह बतलावो कि यह किसका फल है। यह फल है उस आत्मामें दोष और आवरणका क्षय हो जानेका सो दोष और आवरणका क्षय है और उसके फलमें अनन्त ज्ञानादिक स्वरूपकी प्राप्ति है यह अनुमानसे सिद्ध किया ही जा चुका है। फिर भी सुनिये— अनन्तज्ञानादि स्वरूपका लाभ है फल जिसका दोषावरणक्षय किसी आत्मामें संपूर्णरूपसे है, क्योंकि दोषावरण हानिका अतिशायन पाया जाता है। जैसे किसी स्वर्णमें किट्ट कालिकाका पूर्णरूपमें क्षय है, क्योंकि उन मलोंकी हानिका अतिशायन पाया जाता है। इस अनुमानसे कहीं दोषावरणक्षय हेतुसे वहाँ अनन्त ज्ञानादि स्वरूपका लाभ भी सिद्ध है।

आगम प्रमाणसे भी मोक्षतत्त्वकी अबाधितता – आगमसे भी मोक्षतत्त्व बाधित नही होता है। आगम तो मोक्षतत्त्वका साधक ही है। आगममें कहा है— "बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष" यह आगम वाक्य तत्त्वार्थ महाशास्त्रका है जिसकी टीका करते हुए समन्तभद्राचार्यने मगलाचरणमें स्पष्ट करनेके लिये यह आप्तमीमांसा की है। सो जब आगममें भी वचन पाया जाता है तो जैसे मोक्ष युक्तिसे अविरुद्ध है इसी प्रकार आगमसे भी अविरुद्ध है। तो प्रत्यक्षसे मोक्ष बाधित नही होता है। अनुमानसे मोक्ष बाधित नही होता और अब यहा आगमसे भी मोक्षतत्त्व बाधित नहीं होता। आगम तो मोक्षके सद्भावको सिद्ध करने वाला पाया जाता है। सो इस कारिकामें जो यह बात कही है कि प्रभुका माना हुआ तत्त्व मोक्ष, मोक्षकारण, ससार, ससारकारण यह बाधित नही होता। इसमेंसे मोक्षतत्त्वके अबाधितपनेकी बात कही गई है।

मोक्षकारणतत्त्वकी प्रमाणोसे अबाधितता—अब मोक्षके कारणतत्त्वकी भी बात सुन लीजिये—मोक्षका कारण तत्त्व हैं सम्यग्दर्शन आदिक मोक्षके कारण तत्त्व हैं यह बात भी प्रमाणसे विरुद्ध नहीं जाती। क्योंकि इसका प्रत्यक्षसे तो विरोध

होता नहीं, क्योंकि मोक्ष अकारणक नहीं होता। अकारणक मोक्षकी प्रतिपत्तिका अभाव है। तब प्रत्यक्षसे तो मोक्ष कारण तत्त्वमे बाधा आती नहीं अनुमानसे भी मोक्षके कारण तत्त्वमें बाधा नहीं आती। अनुमानसे तो मोक्षकी कारणवत्ता सिद्ध ही है। जैसे अनुमान प्रयोग है कि मोक्ष सकारणक है अर्थात् सम्यग्दर्शन आदिक कारणपूर्वक है प्रतिनियत काल आदिकपना होनेसे। अर्थात् जब द्रव्य, क्षेत्र, काल, तीर्थादिक सामग्रीके बिना मोक्ष नहीं होता है तो इससे सिद्ध है कि मोक्ष सकारणक है। यदि मोक्षको अकारणक मान लिया जायगा तो सब समय सब जगह सब जीवोंके मोक्षका सद्भाव होना पड़ेगा क्योंकि अब मोक्षको तो मान लिया अकारणक। अकारणक मोक्षको अब दूसरेकी अपेक्षा तो रही नहीं। जब कारणोंकी अपेक्षा नहीं है मोक्ष होनेके लिए तब तो सभी जीवोंको सब ही समय सब ही देश क्षेत्रमें मोक्ष हो जाना चाहिये, सो यह बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है और अनिष्ट भी है। अत मोक्ष अकारणक नहीं है, मोक्ष सकारणक है क्योंकि प्रतिनियत द्रव्य क्षेत्र आदिक पूर्वक मोक्ष देखा गया है। तो यों अनुमानसे भी मोक्षके कारण तत्त्वमें बाधा नहीं आयी। अब आगम तत्त्वसे भी मोक्षका कारणतत्त्व बाधित नहीं होता है इस बातको सुनो—आगम तो मोक्ष कारण तत्त्वका साधक है आगममें लिखा है—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है अर्थात् मोक्षका कारण है। तो यों रत्नत्रयमें मोक्षकारणता सिद्ध ही है। तो मोक्ष तत्त्वकी तरह मोक्ष कारण तत्त्व भी अबाधित है।

यथोपवर्णित ससारतत्त्वकी भी प्रत्यक्ष व अनुमान प्रमाणसे अबाधितता—अब ससार तत्त्वकी बात देखिये—जैसे कि मोक्षतत्त्व और मोक्ष कारणतत्त्व अबाधित है इसी प्रकार संसारतत्त्वका स्वरूप भी जो बताया गया है वह प्रमाणसे अबाधित है। इसमें किसी प्रमाणसे बाधा नहीं आती। प्रत्यक्ष प्रमाणसे तो ससारके अभावकी असिद्धि ही है। प्रत्यक्ष तो यह सब ससार समझमे आ रहा है। प्रत्यक्ष कैसे बाधक बनेगा? ससार मायने क्या है कि अपने अपने परिणामसे उपार्जित किये हुए कर्मोंके उदयसे आत्माका जो अन्य भावोंकी प्राप्ति है उस हीका नाम ससार है। संसरणको ससार कहते हैं। एक भवसे दूसरे भवमें जाना, जन्म मरण होना, अनेक देहोंका धारण करना, यही तो संसार है। सो यह सब कुछ प्रत्यक्ष आ ही रहा है। कितनी तरहके ससारमें जीव हैं। कैसी कैसी अवगाहनायें हैं। है तो उनके चैतन्यस्वरूप एक समान। जीव जीव सब एक स्वरूपके हैं। तो जैसे हम मनुष्य शरीरको धारण किए हुए हैं ऐसे ही जीव ये सब हैं। जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, कीट पतिंगा पशुपक्षी आदिक हैं। ये जीव ऐसे ऐसे शरीरोंको ग्रहण कर रहे हैं और शरीर ग्रहण कर करके उस उस जीवनमें ये कषायोंके कारण नाना दु.ख सहते हैं। क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, मानसिक व्यथा, शारीरिक रोग आदिक नाना तरहके कष्ट सहते रहते हैं। इस हीका नाम तो ससार

है। इस परिवर्तनको कोई आँखोसे न निरखकर यह कहे कि हम तो नहीं निरख पा रहे हैं कि यह जीव मरा और यहाँसे चला, और इसने इस देहको धारण किया। यों हो तो हम प्रत्यक्ष मानें। तो भाई ऐसे प्रत्यक्षका यह विषय नहीं है। यह जो ससार है, यह मानसिक ज्ञान द्वारा भली प्रकार जाना जा सकता है। पर इसे हम इन्द्रियज्ञान द्वारा समझना चाहे कि एक भवसे इसे दूसरे भवमें यह जीव इस तरह आया, तो यह बात नहीं कही जा सकती। तो वहाँ भी यह समझिये कि जब इन्द्रियज प्रत्यक्षका वह विषय ही नहीं तो उस प्रत्यक्षसे बाधा क्या आ सकेगी ? तो ससार तत्त्वकी सत्तामें प्रत्यक्ष बाधा नहीं आती। अनुमान प्रमाणसे भी ससार तत्त्वकी सत्ता मे बाधा नहीं आ सकती है। क्योंकि संसारके अभावके साथ जो अविबद्ध हो ऐसा कोई हेतु नहीं है जो ससारके अभावको नियमत सिद्ध कर सके। तो जब ससारके अभावका अविनाभावी कोई साधन नहीं है तो अनुमानसे फिर ससार तत्त्वकी सत्तामे बाधा ही कैसे आ सकती है ?

लौकायतिको द्वारा भवान्तरके प्रतिषेधकी सिद्धिका प्रयास—अब यहाँ चार्वाक शंका करते हैं कि गर्भसे लेकर मरण पर्यन्त चैतन्य विशिष्ट शरीरात्मक पुरुष के जन्मसे पहिले और मरणके बादमे कोई भवान्तर नहीं हैं, क्योंकि भवान्तरकी उपलब्धि न होनेसे, आकाशपुष्पकी तरह। जैसे आकाशपुष्पकी उपलब्धि नहीं होती है तो यह सिद्ध होता है कि आकाशपुष्प है ही नहीं। इसी प्रकार इस पुरुषके गर्भसे पहिले न कोई भवान्तर देखा गया है और न मरणके बाद कोई भवान्तर देखा जाता है। इससे सिद्ध है कि इस पुरुषके भवान्तर नहीं है, तो इस प्रकारका जो अनुपालम्भ है उस कल्पित चैतन्य स्वरूपकी अनुपलब्धि रूप हेतु है वह तो ससारके अभावका ग्राहक हो गया। और, यो ससारके अभावका ग्राहक अनुमान ससारतत्त्वका बाधक है, कैसे फिर कहा जा रहा है कि अरहत प्रणीत शासनमे जो ससारतत्त्वका स्वरूप कहा गया वह अबाधित है। कहाँ मालूम हो रहा जीवोका ससार ? ससार तो तभी कहलाये जब एक भव छोड़कर दूसरे भवमें चेतन जाय, किन्तु यहाँ भवान्तर न था न आगे होता हुआ नजर आता है।

भवान्तर सिद्धि करते हुए लौकायतिकोकी शकाका निराकरण—उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह शका युक्त नहीं है, क्योंकि इसमें जो सिद्ध किया जा रहा है वह एकदम असिद्ध है। देखिये ! अनुमानसे जीवके भवान्तरकी सिद्धि होती है। भवान्तर किसे कहा ? नया जन्म पाना, दूसरा देह धारण करना यही ससार है और इस प्रकारके संसारकी बराबर सिद्धि है। अनुमान प्रयोग है कि प्राणियोंका प्रथम चैतन्य अर्थात् गर्भावस्थामे दूसरा देह धारण करना यही ससार है और इस प्रकारके ससारकी बराबर सिद्धि है। अनुमान प्रयोग है कि प्राणियोंका प्रथम चैतन्य अर्थात् गर्भावस्थामें प्राप्त हुआ चैतन्य, उससे पूर्व रहने वाले चैतन्य उपादान कारणसे

हुआ है, क्योंकि चैतन्यका परिणमन होनेसे । जैसे कि मध्य चैतन्य परिणमन । देखो ना, जीवन अवस्थामें जैसे बीचकी अवस्थाओंमें जो चैतन्य पाया जा रहा है वह चैतन्य पूर्व चैतन्यके उपादान पूवक है । जैसे कोई पुरुष जवान है तो जवानी अवस्थामें रहने वाला चैतन्यपरिणमन बाल अवस्थामें रहने वाले चैतन्य पूवक ही तो हुआ है । तो जैसे एक जीवनकालमें होने वाला चैतन्य विवत पूव चैतन्यके उपादान कारणसे हुआ है इसी प्रकार प्राणियोंका वह आद्य चैतन्य अपनी गर्भावस्थामें प्राप्त हुआ चैतन्य उससे पूववर्ती चैतन्यके उपादान पूर्वक हुआ है । और जिस तरह गर्भावस्थामें प्राप्त चैतन्य पूर्व चैतन्यके उपादान पूवक होनेसे यह सिद्ध हुआ कि इस चैतन्यसे पहिले भवान्तर था जिस भवसे मरण करके यह गर्भ अवस्थामें प्राप्त हुआ है इसी प्रकार यह भी सिद्ध होता है कि अन्तिम चैतन्य परिणाम अर्थात् मरण अवस्थाके समयका चैतन्य विवर्त भी चेतनकार्य वाला है अर्थात् उस चैतन्यके बाद फिर अगले भवका चैतन्य होगा । जैसे कि बाल अवस्थाका चेतन परिणमन युवावस्थाके चेतनकार्यका साधक है इसी प्रकार मरण अवस्थाके समयका चैतन परिणाम आगे उत्पन्न होनेवाले चैतन्य कार्यका उपादान है अर्थात् उस मरण अवस्थाके चैतन्यका कार्य अगले भवान्तरमें उत्पन्न होनेवाला चैतन्य है । इससे सिद्ध है कि मरणके बाद भी आगे यह चेतन रहता है, इस अनुमानसे पहिले भी चेतनकी उपलब्धि सिद्ध हुई और मरणकालके बाद भी चेतनकी उपलब्धि सिद्ध हुई । यों जो ससार तत्त्वकी बात कही गई थी वह बराबर सिद्ध है अत अरहत देवके शासनमें कहे गए इस ससार तत्त्वकी अप्रसिद्धि नहीं है ।

चिद्विवर्तत्व हेतुका गोबरसे उत्पन्न हुए बिच्छूके साथ व्यभिचारकी शंका और उसका समाधान—अब यहाँ शकाकार कहता है कि देखो ! गोबर अचेतनसे चेतन बिच्छू आदिककी उत्पत्ति देखी जाती है तब तो आपका हेतु व्यभिचारी हुआ ना । आपका हेतु है कि चैतन्यपूर्व चेतनके उपादान कारणसे हुआ है । तो अब वह बिच्छूका चेतन देखो गोबरसे ही बन गया, वह कहाँ पूर्व चेतनके उपादानसे हुआ ? तब यह हेतु व्यभिचारी हो गया । उत्तरमें कहते हैं कि हेतु व्यभिचारी नहीं है, क्योंकि जो आक्षेप दे रहे हो बिच्छूके चैतन्यका उदाहरण देकर सो वह चैतन्य भी पक्षमें ही सम्मिलित है । वहाँ भी यह अनुमान बनेगा कि गर्भावस्था प्राप्त चैतन्य चेतनसे, पूर्वभवके कालके उपादान कारणसे हुआ है । जो बिच्छू आदिकके शरीर देखे जा रहे हैं वे तो अचेतन हैं । हम अचेतन शरीरके लिये यह अनुमान नहीं बना रहे हैं । अचेतन शरीरसे तो गोबर आदिकका सम्मूर्छन होता है, उसका निषेध नहीं करते, पर उस गोबरसे बिच्छूके चेतनके परिणामकी उत्पत्ति नहीं हुई है । उस चेतन परिणामकी उत्पत्ति तो पूर्व चेतन परिणामसे ही हो सकती है । तो बिच्छूका शरीर अचेतन है, पौद्गलिक स्कधोंका पिण्ड है । वह तो गोबर, वायु, जल आदिकके सम्पर्कमें बन गया । वह पौद्गलिक देह पौद्गलिक स्कन्ध उपादान पूर्वक है, किन्तु जो जाननहार जिसमें ज्ञान और आनन्दका स्वभाव पड़ा है, चाहे वह कितने ही रूपमें प्रकट हुआ

है। किन्तु यह ज्ञानानन्दस्वभावी चेतन, आत्मा, उस चेतन आत्माका यह परिणमन तो पूर्व चेतन विवर्तसे ही हुआ है। अतः इस हेतुमें व्यभिचारीपनेका दोष नहीं दे सकते।

चिद्विवर्तत्व हेतुका खण्डितचरमचित्तके साथ व्यभिचारकी शंका और उसका समाधान—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि जो ध्यानी योगियोका अन्तिम चेतन है, जो कि अन्य चेतनका उपादान नहीं बनता है उस ध्यानी योगी पुरुषके अन्तिम चेतनसे तो इस हेतुका व्यभिचार बन जायगा। यह शंका क्षणिकवादी सौगतो के मंतव्यका आश्रय लेकर हुई है। सौगत सिद्धान्तमें मोक्षका स्वरूप यह माना है कि चेतनकी संततिका क्षय हो जाता। एक चेतनके बाद अन्य चेतन हो रहे हैं, उनकी संतति चलती रहती है। यद्यपि वहाँपर प्रत्येक चेतन भिन्न-भिन्न ही है, एक नहीं है। अपूर्व-अपूर्व नये-नये चेतन उत्पन्न होते हैं लेकिन उन चेतनोकी संततिका बन जाना, उनकी परम्परा लगना यह तो है संसार। और जब चेतनकी परम्परा मिट जाय उसका नाम माना गया है मोक्ष। तो ऐसे मोक्षकी प्राप्ति इसी पद्धतिसे ही हो सकती है कि कोई चेतन ध्यानी अंतिम चेतन ऐसा होता कि जिसके बाद फिर इस सिलसिले में चेतन न आये तो वह मोक्ष कहलाता है। तो इस पद्धतिमें रहने वाले योगी ध्यानी का जो चरम चेतन है वह अन्य चेतनका उपादानभूत नही है। उससे इस हेतुका व्यभिचार आता है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह भी कहना केवल अपना मनोरथमात्र है। मनमें जो कल्पना किया उससे अपने घरकी, अपने मंतव्यकी बात तो बनायी जा सकती है किन्तु सर्वलोक सम्मत हो जाय, यह बात मनोरथोंसे नहीं बनती, वह तो युक्ति और आगमसे अविरुद्ध होना चाहिये। तब ही सकल दार्शनिको की दृष्टिमें प्रमाणता आ सकती है। तो यहाँ जो मान लेना कि जब जिस चेतनके बाद अन्य चेतनकी संतति न रहे उसका नाम मोक्ष है तो यह बात प्रमाणसे अ सिद्ध है। योगी ध्यानीका अन्तिम चेतन इतर चेतनका उपादान कारण नही होता, इस प्रकारकी बात प्रमाणसे प्रसिद्ध नहीं है, क्योंकि निरन्वय क्षणक्षयका निषेध किया जा चुका है। कोई पदार्थ निरन्वय नष्ट नही होता। पर्याय तो बदलती है। उत्तर पर्याय होती है तो पूर्व पर्याय वही विलीन होती है। लेकिन निरन्वय नाश हो जाय यह कभी भी सम्भव नहीं है। जैसे यही दृष्टान्तमें परखलो कि मिट्टीका घट बना तो घट पर्यायकी उत्पत्ति हुई, और उससे पूर्व जो मृत्पिण्ड परिणमन था उसका व्यय हो गया। लेकिन दोनो अवस्थाओमें रहा वह कुछ मिट्टी स्कंध। और अब आगे चाहे वह घट भी फूट जाय, अनेक खण्ड खण्डरूपमें कपाल बन जाय तब भी स्कंधका विनाश न होगा। ऐसा विनाश अन्वय न रहे, मूल न रहे, स्कंध भी न रहे ऐसा विनाश नहीं माना गया है। यह चेतन भी एक सत् पदार्थ है। वह कभी भी नष्ट नहीं हो सकता। यदि योगी शुद्ध ध्यानसे उस चेतनमें अब रागद्वेष नहीं जगते हैं तो ठीक है, निर्विकार हुआ, शुद्ध हुआ। लेकिन वह आगे ऐसा ही निर्विकल्प शुद्ध पर्यायोसे

होता रहेगा। उसमें यह निर्विकार शुद्ध परिणमन समाप्त हो जाय और कुछ आत्म-सत् ही न रहे, यह कभी भी अवसर नहीं आ सकता।

उदाहरणपूर्वक गर्भावस्था प्राप्त चैतन्यकी अचेतनोपादान कारणक सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास और उसका निराकरण—शंकाकार कहता है कि जैसे वनकी कोई पहिली अग्नि जो बांसकी रगड़से उत्पन्न हुई है तो वह अग्नि पूर्वक अग्नि देखी गई है। बादमें फिर दूसरी जो अग्नि होगी वह अग्नि पूर्वक बन जायगी। इसी प्रकार पहिला जो चेतन है गर्भावस्थामें प्राप्त हुआ चेतन शरीरकार परिणत जो भौतिक स्कंध हैं उनसे उत्पन्न हो जायगा। फिर उसके बादका जो चेतन है वह चेतन पूर्वक बना रहेगा। इसमें तो कोई विरोध नहीं आता और इस तरह यह सिद्ध होता है कि प्रथम चैतन्य चैतन्यपूर्वक नहीं हुआ है। तो इससे पूर्वभवकी सिद्धि न रही और जब भवान्तर सिद्ध न हो सका तो संसार तत्त्व भी न रहा और जो कुछ दिखता है बस यही संसार है। अन्य जन्म पाना इसका नाम संसार नहीं है। इस शंकापर समाधान करते हैं कि ऐसा कहना अपने ही पक्षका घात करने वाला होने से जाति नामक दोषसे ही दूषित है। उनका यह मिथ्या उत्तर है। उनके कहनेमें उनके ही सिद्धान्तका घात है जिसे अभी बतावेंगे। यहाँ जो चिद्विवर्तत्व हेतु दिया है उसकी साध्यके साथ व्याप्तिका खण्डन नहीं होता। प्रकृत अनुमानमें जो यह बात कही गई है कि आद्य चेतन चेतनपूर्वक है चिदविवत होनेसे तो इसमें चिद्विवर्तत्व जो हेतु है उसकी साध्यके साथ व्याप्ति अखण्डित है अर्थात् वह पूर्व चेतन पूर्वक ही हुआ है। अब शंकाकारकी शंकापद्धतिसे शंकाकाराभिमत सिद्धान्तका घात देखिये जैसे कि आक्षेप किया है पहिले वनकी प्रथम अग्नि बाँसकी रगड़से उत्पन्न हुई है सो उस अग्निको बिना अग्निके उपादानके मान लिया जायगा अर्थात् उसकी अग्नि उपादान न थी किन्तु वह बन गया तब तो जैसे कोई अग्नि बिना उपादानके बन जाती है इसी प्रकार जल भी बिना जल उपादानके बन जायगा। वायु आदिक भी बिना वायु आदिक उपादान बन जायगा, और जब अपने अपने उपादानसे न बने, ये भिन्न उपादानसे बन गए तब पृथ्वी आदिक जो चार भूत माने गए हैं वे वास्तवमें अलग-अलग तत्त्व सिद्ध नहीं होंगे। क्योंकि यह नियम है कि जिसका परस्परमें उपादान उपादेय-भाव होता है अर्थात् जो एक कारणसे जन्य हैं उनकी वास्तवमें भिन्नता नहीं है, तत्त्वान्तरपना नहीं है। जैसे कि पृथ्वीकी पर्यायें कुछ भी होती जायें, पर वे वास्तवमें भिन्न जातिको नहीं कहलायीं। जैसे मिट्टीसे घड़ा बना, कपाल बना, कुछ भी बन जाय, उन सबमें मिट्टीपना साधारण रूपसे है, वे मिट्टी जातिसे कोई भिन्न भिन्न तत्त्व नहीं हैं। इसी प्रकार जब अग्नि जल वगैरह एक भूतपिण्डसे हो गए जैसे अग्नि वनस्पति रूप पृथ्वीसे बन गई। जल चन्द्रकान्त मणि आदि पृथ्वीसे बन गया। तो अब इनका परस्परमें उपादान उपादेय भाव है। कुछ भी उपादान बन जाता है तब यह सिद्ध होता है कि ये चारों भूत वास्तवमें कोई भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं हैं। इनकी भिन्न

जातियां नहीं है। तब यही तो सिद्ध हुआ कि एक पुद्गल तत्त्व ही है जो पृथ्वी, जल, अग्नि आदिक पर्यायरूपसे रहता है। फिर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चारों तत्त्व अलग-अलग न रहे। इसी तरह अग्निको अनग्न्युपादानपूर्वक माननेपर उनके सिद्धान्त का ही विघात होता है और उन्हें यदि अलग अलग मानते हो तो यह मानना पड़ेगा कि जो जिस जातिका है वह उस जातिके उपादानसे उत्पन्न होता है। फिर तो चेतन अचेतन जातिके उपादानसे उत्पन्न होना सिद्ध न होगा किन्तु चेतन अपने पूर्व चेतनके उपादानसे ही हुआ यह सिद्ध होगा।

अनुपादानकारणक कार्यकी उपपत्तिकी शंका व उसका समाधान— अब शंकाकार कहता है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुमें परस्पर उपादान उपादेय भाव नहीं है। वहां तो केवल सहकारी भाव माना गया है। जब कहीं ऐसा नजर आता है कि लो यह जल पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ। यह अग्नि बांससे उत्पन्न हुई तो उसमें वह सहकारी है किन्तु उपादान नहीं है। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ठीक है फिर तो पहिली जो वह अग्नि है वह अनग्निके उपादानसे भी नहीं है। जो बांसोंकी रगड़ से अग्नि उत्पन्न हुई है उस अग्निकी उत्पत्तिमें वह बांस सहकारी कारण है न कि उपादान कारण। तो प्रथम अग्नि अनग्निके उपादानसे कैसे कैसे सिद्ध होगी ? उस ही प्रकार प्रथम चेतन अचेतन पूर्वक कैसे सिद्ध होगा ? प्रथम चेतन माने गर्भस्थ चेतन भी अचेतन उपादानसे उत्पन्न नहीं हुआ है। वह भी चेतन जातिसे ही उत्पन्न हुआ है। जैसे कि पहिले उत्पन्न हुई अग्निको बांसमें तिरोहित अग्नि उपादान पूर्वक माना गया है। अन्य अन्य पदार्थ सहकारी कारण माना गया है पर उपादान तो तिरोभूत जन्य अग्नि है। जैसे यहां माना गया है उसी प्रकार गर्भस्थ चेतनका जो आविर्भाव हुआ है वह तिरोहित चेतनपूर्वक हुआ है। ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं मान ली जाती ? अर्थात् यहां भी यह माना कि जो आद्य चेतन है गर्भावस्था प्राप्त हुआ चेतन है वह चेतनपूर्वक ही है। वह चेतन उपादान तिरोहित है। यहां देखनेमें, समझनेमें आया नहीं है, लेकिन वस्तुस्वरूपकी विधिसे यह ही प्रमाणसिद्ध है कि वह आद्य चेतन भी पूर्वचेतन पूवक हुआ है।

वनकी प्रथम अग्निकी सहकारीमात्रसे उपपत्ति बताकर अनुपादनकारणक सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास व उसका निराकरण— अब शंकाकार कहता है कि प्रथम जो वह अग्नि उत्पन्न हुई है वह तो सहकारी मात्रसे ही उत्पन्न हुई है, यही तो इसका कहना है। बांसोंका जो रगड़ मथन हुआ है उससे अग्नि जो बनी है वह अग्नि उस सहकारी मात्र बांसके मथनसे हुई है। इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि वह प्रथम अग्नि तिरोहित अन्य अग्निके उपादानसे हुआ है फिर कैसे इसका उदाहरण देकर उस प्रथम चेतनको तिरोहित चेतन पूर्वक सिद्ध कर रहे हो ? उत्तरमें कहते हैं कि यह कहना आपका असत्य है क्योंकि बिना उपादानके किसी भी विवर्तकी

उत्पत्ति नहीं देखी जाती है । यहाँ यह ही तो कह रहे हो कि पहिले जो अग्नि उत्पन्न हुई है उसका उपादान तो कुछ नहीं है । हाँ बांसोंकी रगड़ सहकारी मात्र है सो बात यह है, कि सहकारी कारण कितने ही जुट जायें लेकिन बिना उपादानके किसीकी भी उत्पत्ति नहीं हुआ करती है । तब वह जो प्रथम अग्नि हुई है उसमें यद्यपि बांसकी रगड़ सहकारी कारण है लेकिन उसका उपादान अग्नि होना ही चाहिए । और वह उपादानभूत अग्नि चूँकि वहाँ व्यक्त नहीं है तो सिद्ध होता है कि तिरोहित अग्नि है, उन बाँसोंके पेटोंमें किसी भी रूपसे अग्नि तत्त्व बना हुआ है । अन्तमें अग्नि तत्त्वसे अग्निकी व्याप्ति हुई है, इसी प्रकार गर्भस्थ आद्य चेतनमें सहकारी कारण कुछ भी हो लेकिन वह चेतन प्रथम चेतन पूर्वक ही हुआ है । बिना उपादानके किसी भी विवर्तकी उत्पत्ति नहीं होती है । और भी देखिये ! यहाँ अग्निदेह पौद्गलिक है वह अनग्नि-परिणत बाँससे उत्पन्न हो जाय तो भी पौद्गलिकस्कंध उपादान पूर्वक तो है ही, किन्तु चेतन अचेतन पौद्गलिकमें विलक्षण है, वह चेतन उपादानसे ही होगा ।

शब्द बिजली आदिको अनुपादानकारणक कह कर दोषपरिहारकी चेष्टा व उसका निराकरण—अब शंकाकार कहता है कि देखिये ! शब्द बिजली आदिकका तो कोई उपादान देखा नहीं गया । और शब्द बिजली उत्पन्न होते हुए नजर आ ही रहे हैं इस कारण यह दोष नहीं दे सकते कि प्रथम अग्निके लिए अन्य अग्नि उपादानभूत चाहिये ही । देखो शब्द उत्पन्न हो गया किन्तु उसका उपादान कारण कुछ नहीं है । बिजली उत्पन्न हो गई किन्तु उसका उपादान कारण कुछ नहीं है । उत्तरमें कहते हैं कि बात ऐसी नहीं है । शब्द बिजली आदिक भी उपादान कारण पूर्वक ही होते हैं, कार्य होनेसे, है ना शब्द कार्य और बिजली कार्य । देखो ! जो न हो और बन जाय उसे ही तो कार्य कहते हैं, चाहे उसके कारणकलाप प्रकट हों अथवा न हों । शब्द न था और तालु जिह्वा आदिकके संयोग वियोगसे अथवा किन्हीं पुद्गलके संयोग वियोगसे शब्द उत्पन्न हो गया है, मेघोंके संघट्टनसे बिजली उत्पन्न हो गयी है तो बिजली कार्य है, शब्द भी कार्य है तो कार्य होनेसे ये भी अपने उपादान पूर्वक ही हुए हैं । जैसे घट पट वगैरह । घडा कार्य है । घडा मिट्टीमें पहिले न था और अब बना है, तो कार्य होनेके नाते यह सिद्ध है कि घट मिट्टी उपादान पूर्वक है, इसी प्रकार यद्यपि शब्द और बिजली इनका उपादान अदृश्य है लेकिन ये भी उपादान सहित ही हैं । और, जिन पुद्गल स्कंधोंमें शब्दरूप परिणमन हुआ है वे स्कंध ही शब्दके उपादान हैं । इसी प्रकार जिन पुद्गल स्कंधोंमें बिजली रूप परिणमन हुआ है वे पुद्गल स्कंध उस बिजली विवर्तके उपादान कारण हैं । तो शब्द और बिजली भी उपादान कारण बिना न हो सके । ऐसे ही वह प्रथम अग्नि भी भावान्तरके उपादान कारण बिना नहीं हुई । और इसी प्रकार गर्भस्थ आद्य चैतन्य भी चेतन उपादान कारण बिना नहीं हुआ अर्थात् उस आद्य चैतन्यसे पहिले भी वह चेतन था और किसी भवमें था तो इस से भवान्तरकी सिद्धि होती है ऐसे ही आगे भवान्तर होगा और भवान्तरोंकी प्राप्ति

का नाम ही सञ्चर है।

भूत उपादानसे चैतन्यकी उपपत्तिका चार्वाकोंका मन्तव्य और उसका निराकरण—चार्वाक शका करते है कि सारी अग्नि चाहे अग्निके उपादान पूर्वक हो, चाहे वह पहिली अग्नि हो, चाहे बादकी अग्नि हो, उसको अग्नि उपादान पूर्वक माननेमें अब हम कुछ बाधा नहीं समझते, क्योंकि सभी कार्य अपने सजातीय उपादान से हुआ करते है। तो अग्नि भी कार्य है और अग्निका सजातीय उपादान है अग्नि, सो वह अग्निपूर्वक हो जाय इसमें कोई बाधा नहीं, परन्तु चेतनका अन्य चेतनसे उपादानसे होनेका नियम नहीं है, क्योकि चेतन तो भूत उपादानसे प्रकट होता है, क्योंकि भूत और चेतनमें सजातीयता है। सजातीयता इस कारणसे है कि भूतसे से चेतनकी उत्पत्ति होती है, इसी कारण भूत और चेतन एक जातिके कहलाते हैं। इस शकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो बिल्कुल ही अयुक्त है क्योकि भूत और चेतन इन दोनोंमें भिन्न लक्षणता है। भूतका लक्षण अचेतनता है रूप रस गध स्पर्शमयता है और चेतनका लक्षण ज्ञान है स्वसंवेदनरूपता है अतएव ये दोनों भिन्न भिन्न तत्त्व हैं। जैसे जल और अग्नि इनका भिन्न लक्षण है और भिन्न लक्षण होनेके कारण जल और अग्निको शकाकार द्वारा भिन्न माना गया है। सो भिन्न लक्षणपना होनेसे ही दूसरे लोगोने, शकाकार चार्वाकोने भी भिन्न भिन्न तत्त्वपनेकी व्यवस्था बनाई है। यहाँ भी भूतसे चैतन्यका लक्षण भिन्न है अत भूतसे चैतन्यका भिन्न तत्त्वपना सिद्ध है।

चैतन्यकी भूतसे तत्त्वान्तरताकी सिद्धि—अब भूतसे चेतन भिन्न तत्त्व है। विभिन्न है, इस बातकी सिद्धि अनुमान प्रयोगसे की जाती है। चेतन भूतसे तत्त्वान्तर है, क्योंकि भूतसे भिन्न लक्षण वाला होनेसे। यदि चेतन भूतसे भिन्न तत्त्व न होता तो चेतनसे भूतका लक्षण भिन्न नही बन सकता। तो इस अनुमानमे भी भिन्न लक्षण हेतु दिया गया है वह हेतु असिद्ध नहीं है, क्योकि रूपादिक है सामान्यतया लक्षण जिनका ऐसे पृथ्वी आदिक भूतसे स्वसम्वेदन लक्षण वाले चेतनकी भिन्न लक्षणता सिद्ध होती है। अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि वायु ये चारों भूत एक ही जातिके द्रव्य हैं और उनका लक्षण है रूप, रस, गध, स्पर्शका होना। सो वे एक हैं या अनेक ? इस बात को अभी नहीं कर रहे हैं, पर यह बता रहे हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारो भूतोंका लक्षण है रूपादिमान होना और चेतनका लक्षण है स्वसम्वेदन होना अर्थात् स्वय अपने आपका सम्वेदन करना इस तरह यह चेतन भिन्न लक्षण वाला सिद्ध होता है।

अस्मदादि अनेक जनों द्वारा प्रत्यक्षभूत होनेसे भूतमें स्वसवेदन लक्षणताकी असिद्धि—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये भूत स्वसम्वेदन लक्षण वाले नहीं हैं, क्योंकि हम जैसे अस्मदादि अनेक ज्ञाताओके प्रत्यक्षभूत होनेसे। जो जो

पदार्थ हम जैसे लोगोंको इन्द्रिय प्रत्यक्षसे प्रत्यक्ष हो रहे हैं वे स्वसम्वेदन लक्षण वाले नहीं हैं। ज्ञान ज्योति स्वरूप नहीं है। जो स्वसम्वेदन लक्षण वाला होता है वह हम जैसे अनेक लोगोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत नहीं होता है। जैसे अपने अपने ज्ञान सभी जीवोंको अपने अपने ज्ञानमें तो प्रत्यक्ष हो रहे हैं। वे अपने अपने ज्ञानके स्वरूपको समझ जाते हैं, पर दूसरा नहीं समझ सकता। तो इस पद्धतिसे यह न्याय निकला कि जो पदार्थ जिन अनेक लोगोंके प्रत्यक्षमें आता है वह पदार्थ स्वसम्वेदन लक्षण वाला नहीं है और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार भूत हम जैसे अनेक छद्मस्थ जनोंके इन्द्रिय ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष हो रहे हैं इससे ये भूत स्वसम्वेदन लक्षण वाले नहीं हैं। तो यों चेतनके लक्षणसे इन चार भूतोंका लक्षण जुदा है।

अस्मदाद्यनेकप्रत्यक्षत्वका अनेकयोगिप्रत्यक्षभूत सुखादिसंवेदनसे अव्यभिचारित्वका प्रतिपादन—यहाँ शंकाकार कहता है कि इस समय जो यह हेतु दिया गया है कि हम जैसे अनेक ज्ञाताओंका प्रत्यक्षभूत होनेसे ये भूत स्वसम्वेदन लक्षण वाले नहीं हैं सो देखिये कि सुख आदिकका सम्वेदन अनेक योगियोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत है मगर दूसरेके सुखका वे अनुभव नहीं करते सो व्याप्ति तो यहाँ यह बतायी जा रही कि जो स्वसम्वेदन लक्षण वाला नहीं है वह अनेकों द्वारा प्रत्यक्षभूत नहीं है मगर सुख आदिकका सम्वेदन अनेक योगियोंके द्वारा प्रत्यक्षभूत हो रहा है। जिस आत्मामें सुखरूप परिणमन हो रहा है उस ही आत्माके द्वारा उसका सम्वेदन हो सकता है। तो सुख आदिकका सम्वेदन लक्षण वाला होनेपर भी अनेक योगियोंके द्वारा प्रत्यक्ष हो रहा है अतएव यह हेतु व्यभिचारी है। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसी शंका न करना चाहिए। कारण यह कि जो हेतु दिया गया है उसमें अस्मदादि शब्द पड़ा हुआ है, जिससे हेतुका यह अर्थ बनता है कि हम जैसे अनेक लोगोंके प्रत्यक्षभूत होनेसे। लेकिन हम लोगोंके द्वारा तो प्रत्यक्षभूत नहीं हो रहा है, वह सुख आदिक सम्वेदन अनेक योगी भले ही उसका प्रत्यक्ष करलें लेकिन हम जैसे छद्मस्थोंकी बात इस हेतुमें कही गई है। अतएव यह हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित नहीं है।

ज्ञानमें स्वसंवेदनलक्षणताका प्रतिपादन—अब यहाँ शंकाकार कह रहा है कि ज्ञानमें स्वसम्वेदन लक्षणपना असिद्ध है। ज्ञान जानता है, पर ज्ञान अपने आपको नहीं जानता। जिस ज्ञानने किसी भी बाह्य पदार्थको जाना उस ज्ञानकी बात यदि समझते हैं कि यह ज्ञान सही है अथवा मिथ्या है तो यह समझनेके लिए अन्य ज्ञानसे समझा जायगा। ज्ञान स्वयं अपने आपका सम्वेदन नहीं करता है। जब ज्ञानमें स्वसम्वेदन है ही नहीं, फिर चेतनका स्वसम्वेदन लक्षण बताकर और पृथ्वी आदिक चार भूतोंसे भिन्न कहकर तत्वान्तरता सिद्ध करनेका प्रयास व्यर्थ है। इस शंकाका उत्तर देते हैं कि यह कहना युक्तिसंगत नहीं है, ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला ही है। यदि ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला न होता तो बाह्य अर्थका ज्ञाता नहीं बन सकता था।

इसको यों अनुमान प्रयोगमें लीजिए ! ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला है, क्योंकि बाह्य अर्थका परिच्छेदक होनेसे। यदि ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला न होता तो ज्ञानके द्वारा कभी भी बाह्य अर्थका परिज्ञान न किया जा सकता था। इस हेतुसे ज्ञानकी स्व सम्वेदनता प्रमाण सिद्ध होती है। जो अस्वसम्वेदन लक्षण वाला होता है वह बाह्य अर्थोंका परिच्छेदक नहीं होता। जैसे घट पट आदिक ये पदार्थ अस्वसम्वेदन लक्षण वाले हैं, तो घट पट आदिक किसी भी बाह्यपदार्थके ज्ञाता नहीं हैं। तो इस हेतुका विपक्षमें बाधक प्रमाण मौजूद है अर्थात् यह हेतु विपक्षमें नहीं जा रहा है इससे इस हेतुकी अन्यथानुपपत्ति बराबर सिद्ध है। किसी भी अनुमानके बनायें जानेमें यदि हेतु विपक्षमें चला जाता है तब उसकी अन्यथानुपपत्ति सही नहीं है और हेतु विपक्षमें न जाय व साध्यके अभावमें वह हेतु भी न हो ऐसी व्याप्ति हो तो उस हेतुमें अन्यथानुपपत्ति कही जाती है। तो यह हेतु कि ज्ञान स्वसम्वेदन लक्षण वाला है बाह्य अर्थ का परिच्छेदक होनेसे। यह हेतुके लक्षणसे पूर्णतया सहित है।

स्वसंवेदनलक्षणत्वकी सिद्धिमें दिये गये बाह्यार्थ परिच्छेदकत्व हेतु का प्रदीपादिके साथ अव्यभिचार—अब शंकाकार कहता है कि इस हेतुका प्रदीप आदिकके साथ अनेकान्तिक दोष आता है यह कहना कि जो बाह्य अर्थका परिच्छेदक होता है वह सुसम्वेदन लक्षण वाला है यह बात प्रदीपसे कहां घटित होती है ? दीपक बाह्य अर्थोंका प्रकाश करने वाला तो है लेकिन अपने आपका सम्वेदन नहीं कर पाता है। वह अस्वसम्विदित है अतएव हेतु प्रदीप आदिकके साथ अनेकान्तिक दोष वाला घटित होता है। उत्तरमें कहते हैं कि यह कथन युक्तिसगत नहीं है क्योंकि प्रदीप तो जड़ पदार्थ है, अज्ञानरूप है। अज्ञानरूप होनेके कारण प्रदीप बाह्य अर्थोंका परिच्छेदक नहीं हो सकता है। परन्तु बाह्य अर्थका परिच्छेदन करने वाले ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण होनेसे दीप आदिकका बाह्यचक्षु आदिककी तरह यह परिच्छेदक है इस प्रकार का उपचार किया जाता है। अर्थात् वस्तुतः बाह्य अर्थका जानने वाला तो ज्ञान है लेकिन उस ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण हैं इन्द्रियां। सो लोग इन इन्द्रियोंको भी ज्ञाता कह देते हैं। ये इन्द्रियां जानती हैं। तो जैसे इन्द्रियको जानने वाला कह देना उपचार से है इसी प्रकार इन्द्रियसे जो ज्ञान किया जाता है उस ज्ञानमें ये दीप आदिक भी सहकारी कारण हैं इनमें भी प्रकाशक होनेसे परिच्छेदक होनेका उपचार किया जाता है परन्तु उपचरित अर्थके परिच्छेदक प्रदीप आदिकके द्वारा मुख्य अर्थ परिच्छेदकपने हेतुमें व्यभिचार दोष उपस्थित करना बुद्धिमानोंको उचित नहीं है। यदि मुख्य अर्थके परिच्छेदक हेतुका उपचरित अर्थ परिच्छेदकके साथ व्यभिचार बताया जाने लगे तो जब यह अनुमान करें कि अग्नि दहनशक्ति युक्त है अग्नि होनेसे तब कहीं जिस किसी बालकका नाम अग्नि रखा गया हो उस बालकसे इस हेतुका व्यभिचार बना दिया जाना चाहिये कि देखो यह अग्नि (बालक) है किन्तु इसमें दहनशक्ति नहीं है। सो मुख्य अर्थपरिच्छेदक हेतुका उपचरित अर्थपरिच्छेदकके साथ व्यभिचार नहीं बताया

था सकता। इसका कारण यह है कि मुख्य अर्थके धर्म उपचरित अर्थमें नहीं होते। उपचरितपना तो नाम, सम्बन्ध आदिकके कारणसे किया जाता है। तो यहाँ दीप अर्थपरिच्छेदक नही, किन्तु अर्थपरिच्छेदन करने वाले ज्ञानकी उत्पत्तिमें बन्धनबद्ध स्थितिके कारण निमित्तभूत इन्द्रियके व्यापारमें प्रकाश सहकारी मात्र है इससे प्रदीपमें परिच्छेदनका उपचार किया जाता है। वस्तुत. प्रदीप अर्थपरिच्छेदक नहीं। अत. हेतुमे व्यभिचार नही आता।

ज्ञानका स्वसंविदितपना सिद्ध करनेके लिये दिये गये वाह्यार्थ परिच्छेदकत्व हेतुकी पक्षाव्यापकत्व दोषकी शका व उसका समाधान—यहाँ शंकाकार कहता है कि सुखादि ज्ञान स्वरूपमात्रके जाननेमें व्यापार किया करते हैं। लेकिन वे बाह्य अर्थके परिच्छेदक नहीं हैं। सो देखिये—सुख आदिक ज्ञानोंमें स्वरूप मात्रका सम्वेदन तो पाया गया, अतएव वह भी पक्ष है लेकिन उसमें हेतु नहीं पाया जाता तो यह सुखादिसंवेदन बाह्य अर्थका परिच्छेदक नहीं है। इसी कारण यह हेतु पक्षाव्यापक है याने पक्षमें नहीं रह रहा है अतएव हेतु सदोष है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह आक्षेप ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञान भी अपनेसे बहिर्भूत जो सुख आदिक हैं उनका सम्वेदन करता है याने सुख आदिकका ज्ञान तो ज्ञानभाव है, ज्ञानरूप है और इस ज्ञानमें जो जाना गया सुख वह सुख ज्ञेयरूप है। तो सुखादिज्ञान भी अपनेसे बहिर्भूत सुख आदिकका परिच्छेदक है अतएव सुखादि ज्ञानोंमें भी बाह्य अर्थकी परिच्छेदकता सिद्ध है। यों तो जब घट पट आदिकका भी ज्ञान किया जाता है वहा भी वह सर्वथा बाह्य अर्थका परिच्छेदक है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि कुम्भादिकके ज्ञानके समय भी सर्वथा अपनेसे बहिर्भूत अर्थका परिच्छेदक हो सो बात नही क्योंकि जानने वाला है घट पट आदि ज्ञान और जाना जा रहा है घट पट आदिक पदार्थ, तो उस ज्ञानका और इस घट पट आदिकके साथ सदा सत् आदिक रूपसे सम्वेदन होनेके कारण अभेदकी प्रतीति है। अर्थात् जैसे कि कुम्भादिक सत् हैं उसी प्रकार ज्ञानादिक भी सत् हैं। तो देखो सत्ताकी अपेक्षासे ज्ञान घटसे सर्वथा भिन्न नहीं होता। यदि सर्वथा भिन्न मान लिया जाय तब तो कुम्भादिकका अभाव बन बैठेगा, क्योंकि गुण हो गया सत् तो कुम्भादिक हो जायगा असत्, और ऐसा माननेपर कि कथंचित् तो घटादिज्ञानसे बहिर्भूत है घटादि पदार्थ सो जैसे सत् रूपसे एक समान होते हुए भी घट पट आदिक पदार्थ लक्षणकी दृष्टिसे तो ज्ञानसे भिन्न हैं, ऐसी ही बात सुखादिसम्वेदन और सुख आदिकमें भी जानना चाहिए। सुख आदिक सम्वेदनसे सुख आदिक भी कथंचित् अपनेसे बहिर्भूत हैं क्योंकि सुख आदिकका और सुख आदिकके सम्वेदनका कारण आदिका भेद पड़ा हुआ है। सुखका कारण तो साता वेदनीयका उदय है और ज्ञानका कारण ज्ञानावरणका क्षयोपशम आदिक है। तो जब कारण भिन्न है तो इससे सिद्ध है कि इसके स्वरूपमें भी भेद है। यों सुखादि ज्ञानसे, सुख आदिक भी कथंचित् बहिर्भूत हैं।

स्वरूप संवेदन होते हुए ही परसवेदन करनेका ज्ञानमें स्वभाव— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि तब तो घट आदिक ज्ञानमें तो सुख आदिक ज्ञान भी अब अपनेसे बहिर्भूत अर्थके परिच्छेदक बन गए तब उससे अन्य कोई विज्ञान तो रहा नहीं, फिर वह ज्ञान अपने आपका सम्वेदक क्या कहलाया ? जैसे कि ज्ञानने घट पदार्थको जाना तो ज्ञानका बहिर्भूत है ना घट उसका परिज्ञान किया। तो अब घटसे भिन्न अन्य कोई विज्ञान तो रहा नहीं। इस ज्ञानने तो घटको जाना। तब जैसे कि वहाँपर ज्ञान अपनेका सम्वेदक नहीं है इसी प्रकार सुख आदिक ज्ञान भी अपनेका सम्वेदक न बनेगा। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह तुलना यों नहीं दी जा सकती कि घट आदिका ज्ञान हो अथवा सुख आदिकका ज्ञान हो, ज्ञान तो स्वरूप सम्वेदक है ना ! तो किसीका भी ज्ञान हुआ उस ज्ञानने अपने स्वरूपका सम्वेदन करते हुए ही तो परसम्वेदकता धारण की है अर्थात् कोई भी ज्ञान हो, जो भी परतत्त्वको जानेगा वह अपने आपका सम्वेदन करता हुआ जानेगा। जैसे कि एक स्थूल दृष्टान्त लीजिए ! कोई भी दीपक यदि परपदार्थका प्रकाशक बनता है तो वह अपने आपके स्वरूपको प्रकाशित करता हुआ ही परका प्रकाशक बनता है। यों ही समझिये कि सभी ज्ञान चाहे कोई घट आदिक पदार्थको जानता हो अथवा सुख आदिक भावको जानता हो, ज्ञान होनेके नातेसे ज्ञानमें यह स्वरूप पड़ा ही है कि वह अपना स्वरूप सम्वेदन करता हुआ हो परका ज्ञाता बनता है। इस तरह सभी ज्ञानोमे स्वसम्वेदनपना सिद्ध है। सभी ज्ञानोका स्वरूप ही यह है कि स्वपर व्यवसायकपना ज्ञानमें हुआ करता है। ज्ञान स्वके स्वरूपको भी जानता है। प्रत्येक जीवका ज्ञान चाहे तर्कणा-शक्ति इतनी विशिष्ट न हो, यह अपने आपमें इस प्रकारका तर्क न बना सके। लेकिन ज्ञानका यह स्वभाव ही है कि वह ज्ञान स्वका निश्चायक होता हुआ परका निश्चायक होता है।

ज्ञानकी जाननक्रियाका स्वात्मामे अविरोधकी सिद्धि— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि स्वात्मामें तो क्रियाका विरोध है। जैसे कि कुल्हाडी अपने आपका भेदन नहीं कर पाती। तो जब कोई पदार्थकी क्रिया उसकी अपने आपमे नहीं बन सकती तो ज्ञानकी सम्वेदन क्रिया अपने आपके स्वरूपमें कैसे बन जायगी और तब फिर ज्ञान स्वरूपका सम्वेदक कैसे हो सकता है ? इस शंकापर शंकाकारसे पूछा जाता है कि यह तो बतलावो कि इस ज्ञानके प्रसगमे जो यह कहा जा रहा है कि स्वात्मामें क्रियाका विरोध होता है। तो उस क्रियाका अर्थ क्या है ? जो क्रिया स्वात्मामें विरोध लाती हो, धात्वर्थरूप है या परिस्पदरूप ! धात्वर्थ रूप क्रियाका विरोध तो मान नहीं सकते, क्योंकि भवन आदिक क्रियाका पृथ्वी आदिकमें अभाव प्रसग हो जायगा। यदि धात्वर्थरूप क्रियाका स्वात्मामे विरोध किया जाय तो जितने पदार्थ हैं ये सब सत्तात्मक हैं कि नहीं ? इसमें भवन क्रिया निरन्तर चल रही है। अब धात्वर्थ-क्रियाके स्वात्माका विरोध मान लिया तो इसका अर्थ है कि पृथ्वी आदिक सभी

...र्थोंमें अब भवन क्रिया नहीं बन सकती तो फिर सत्ता क्या रही ?
...क्रियाका स्वात्मामें विरोध माननेपर तो सर्व पदार्थोंका अभाव बन बैठेगा। यदि
कि परिस्पंदात्मक क्रियाका स्वात्मामें विरोध बताया जा रहा है तो फिर यह
कि क्रियाका स्वात्मा क्या कहलाता है ? जिसमें कि परिस्पंदात्मक क्रियासे ...
...बताया जा रहा। यदि कहो कि क्रियाका स्वात्मा क्रियात्मक ही है तो भला
...त्मक क्रियामें क्रियाका विरोध कैसे हो जायगा ? यहाँ तो कह रहे हैं
...त्मक है, क्रियाका स्वात्मा स्वरूप क्रियात्मक है। फिर बताते हो
...स्वात्मामें विरोध है। तो परिस्पंदरूप क्रियाको क्रियात्मक माननेपर
...ाका विरोध नही हो सकता है, क्योंकि स्वरूप कभी अपने आपका विरोधक
बनता। जिस पदार्थका जो स्वरूप है वह स्वरूप अपने ही पदार्थका विरोध करने
तब उस पदार्थकी सत्ता कहाँ रह सकी अन्यथा अर्थात् स्वरूप भी यदि अपने
विरोध करने लगे तो जब स्वरूप ही वस्तुका विरोध करने लगा तो सभी
स्वरूपरहितताका प्रसंग आ जायगा, सभी पदार्थ स्वरूपरहित हो जायेंगे।
पदार्थोंका स्वरूप न रहा तो इसका अर्थ है कि पदार्थ कुछ है ही नही, सकल ...
हो जायगा। अतः क्रियात्मक स्वात्मामें क्रियाका विरोध नहीं है।

एक वस्तुके स्वरूपमें विरोधकी चर्चाका अनवसर—और भी देखिये ! विरोध हुआ करता है दो पदार्थोंमे, अब क्रियाको स्वात्मा मान लिया है क्रियात्मा ही स्वरूप ही जब स्वयं है तो उसमें क्रियाका विरोध कैसे ? दो वस्तु हो, दो सत् हों, तब तो उनमें विरोधकी बात विचारी जा सकती है। लेकिन जब यहाँ स्वात्मा वही ही है तो उसमें क्रियाका विरोध कैसे कहा जा सकता है ? यदि कहो कि क्रियावान आत्मा क्रियाका स्वात्मा है। अर्थात् क्रिया जिसके हो उसे क्रियावान कहते हैं। तो क्रियावत् आत्मा क्रियाका स्वात्मा हुआ है। यों दो चीजें तो बन जाती हैं। कहते हैं कि यहाँ भी वस्तुतः चीज तो दो नहीं बनी। बल्कि इस आक्षेपसे तो और सिद्ध कर दिया गया कि वहाँ क्रिया अवश्य है। समस्त क्रियायें क्रियावान द्रव्योंमें ही तो पायी जाती हैं। क्रियावान आत्मा क्रियाका स्वात्मा है, ऐसा कहकर यही तो समर्थित होता कि क्रियावानमें ही समस्त क्रियावोंका समावेश है। तो प्रतीतिका रंचमात्र भी विरोध नहीं है। यदि यह कहो कि क्रियाकरण निष्पादन ये स्वात्मामें विरुद्ध हैं, क्रियाका अर्थ है करण अर्थात् निष्पादन उसका स्वात्मामें विरोध है तब तो सुनो—यह तो नहीं कहा जा रहा कि ज्ञान स्वरूपको उत्पन्न कर रहा है जिससे कि विरोध कहा जाय। करणकी बात तो नहीं है किन्तु ज्ञानमें जो कुछ बतना पाया जाता है उसकी बात कही जा रही है इस कारण स्वात्मामें क्रियाका विरोध कहना असिद्ध है। क्रिया रहती ही है स्वात्मामें। तब ज्ञानने जो स्वसम्वेदन किया वह अपने आपमें किया गया इस बातमें कोई विरोध नहीं आता। स्वात्मामें क्रियाका विरोध कैसे असिद्ध है, इसका कुछ स्पष्टीकरण ... कि अपने

कारणविशेषसे उत्पन्न हुए ज्ञानमें स्व और परके प्रकाशनका स्वभाव है। जैसे कि प्रदीपमें अपना और परका उद्योत करनेका स्वभाव है। उस ही प्रकार अपने कारणसमूहसे उत्पन्न हुए ज्ञानमें भी स्व और परके प्रकाशनका स्वभाव पड़ा है। जैसे रूपज्ञानकी उत्पत्तिमें प्रदीप सहकारी होनेसे चक्षुके रूपका उद्योतक कहा जाता है इसी प्रकार स्वरूपज्ञानकी उत्पत्तिमें वह ज्ञान सहकारी होनेसे स्वरूपका उद्योतक भी है। इस प्रकार ज्ञान स्व और परस्वरूपका परिच्छेदक है क्योंकि स्वपररूपके सम्बन्धमें अज्ञान निवृत्ति बन रही है। यदि स्वपररूपके परिच्छेदक अभाव पनेका होता ज्ञानमें तो फिर कभी भी अज्ञान निवृत्तिका वह कारण नहीं बन सकता था। यों हम बिल्कुल सही अविरुद्ध देख रहे हैं कि स्वसम्वेदन तो है अतत्त्वका लक्षण। अर्थात् ज्ञानमय चेतनका स्वरूप है जो कि पृथ्वी आदिक भूतोंमें नहीं पाया जाता है तब भूत और चेतनमें भिन्न लक्षणपना बिल्कुल प्रसिद्ध है।

भूत और चैतन्यमें उपादान उपादेयभावकी असिद्धिका उद्घाटन—जब भूत और चेतनमें भिन्न लक्षणता सिद्ध हो चुकी है तो वह सिद्ध हुई भिन्नलक्षणता तत्त्वान्तरपनेको भी सिद्ध करती है, और, वह तत्त्वान्तरपना भूत और चेतनमें क्या है ? असजातीयत्व है। अर्थात् भूत और चेतनमें जिन लक्षणोंसे भेद किया गया उन लक्षणोंसे देखा जाय तो वह सजातीय नहीं है। भूत तो अचेतन जातिका है अस्वसवेदक है और चेतन चेतन जातिका है स्वसवेदक है। असजातीयपना भी उपादान उपादेयभावके अभावको सिद्ध कर रहा है। चूँकि भूतमें और चेतनमें सजातीयता नहीं है, भिन्न लक्षणता है अतएव ये परस्पर एक दूसरेके उपादान और उपादेय नहीं बन सकते हैं, क्योंकि उपादान और उपादेयपना होनेका प्रयोग सजातीयपना है। जहाँ समातीयता है वहाँ ही उपादान उपादेय भाव बन सकता है। भूत और चेतनमें अत्यन्त विलक्षणता है। तो ऐसे विजातीय पदार्थमें उपादान उपादेय सम्बन्ध नहीं बन सकता।

भूत और चैतन्यमें उपादानोपादेयभावके अभावके साधक हेतुका विवरण—भूत और चेतनमें उपादान उपादेयभाव नहीं है, क्योंकि भिन्न लक्षणपना होनेसे। यह अनुमान प्रयोग इस बातको सिद्ध कर रहा है कि भूत और चेतनमें उपादान उपादेय भाव नहीं है। यह हेतु व्यापक विरुद्ध व्याप्तोलब्धि है ? उपादान उपादेय भाव है व्याप्य, उसका व्यापक बना सजातीयपना। उससे विरुद्ध है तत्त्वान्तरपना। उससे व्याप्त हो रहा है यह विभिन्न लक्षणत्व हेतु। इस तरह यह विभिन्नलक्षणत्व हेतु व्यापक विरुद्ध व्याप्तोलब्धि नामका हेतु है जो कि यह सिद्ध कर रहा है कि भूत और चेतनमें उपादान उपादेयभाव नहीं है विभिन्न लक्षणपना होनेसे। उपादान उपादेय भावमें व्यापक है सजातीयत्व, उससे विरुद्ध है तत्त्वान्तरभाव। उससे जो व्याप्त हो रहा हो विभिन्न लक्षणत्व हेतु उससे चेतन भूतसे उत्पत्ति होनेके अभाव की सिद्धि बन जाती है अर्थात् भूतोंसे चेतन उत्पन्न हो सकता है, भूतोंसे चेतन उत्पन्न

होता है यह निराकृत हो जाता है।

सजातीयत्वके व्यापक होनेसे व उपादान उपादेयभावके व्याप्य होनेसे शरीर और घटमें साक्षात् उपादान उपादेयभाव होनेके आक्षेपका अप्रसङ्ग—अब यहाँ कोई ऐसी मनमें शका करे कि यों तो शरीरादिक व घट आदिक आकार इनका परस्पर उपादान उपादेयभाव हो जायगा क्योंकि देखो ! जो शरीर है वह भी पार्थिवत्वविशिष्ट है और घटादिक तो पार्थिव है ही प्रकट। सिद्धान्तत: देखो शरीर भी पृथ्वी तत्त्व है और घट भी पृथ्वी तत्त्व है और सजातीयको बता दिया है एक दूसरेका उपादान तब घट शरीरसे उत्पन्न हो बैठेगा। उत्तरमें कहते हैं ऐसी शका न करना चाहिए, क्योंकि व्यापक सजातीयत्वका उपादान उपादेय नामका व्याप्य न होनेपर भी व्यवस्थाका अविरोध है। व्यापक कहलाता है वह जो अपने समितमें पूरेमें रहे और जो उसके विषयमें पूरेमें न रहे वह कहलाता है व्याप्य तो इस नीतिके अनुसार अब परख लीजिए यहाँपर सजातीयत्व विशेषका उपादान उपादेय भावमें व्यापकपना प्रसिद्ध नहीं है, क्योंकि विजातीय रूपसे माने गए जल और अग्निमें सत्त्वादिकके द्वारा सजातीय होनेपर भी उनमें उपादान उपादेयभाव नहीं माना गया है। सजातीयपना होकर भी उपादान उपादेयभाव उनमें हो ही हो ऐसा निर्णय नहीं किया जा रहा है किन्तु यदि उपादान उपादेयभाव हो सकता है तो वह सजातीयमें ही हो सकता है। इस ओरसे नियम है और सर्वथा सजातीयमें उपादान उपादेयभाव मान लिया जाय तो इससे कोई व्यवस्था नहीं बन सकती। देखो ! चार्वाकोंने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुको भिन्न-भिन्न तत्त्व माना है लेकिन वे सब हैं तो सत्। तो सत्त्व आदिक अनेक गुणोंकी दृष्टिसे वे चारों भूत सजातीय हो गए। इस दृष्टिसे सजातीय होनेपर भी उनमें परस्पर उपादान उपादेयभाव चार्वाकोंने नहीं माना है। और, देखिये ! कथंचित् विजातीय होनेपर भी मृतपिण्ड और घटाकारमें उपादान उपादेयभाव सिद्ध हो जाता है। वह कथंचित् विजातीय कैसे है कि उपादेय घटमें तो घटत्व है और मिट्टीमें मिट्टीपना है तब ये तीन दृष्टिसे विजातीय हो गए ना। तिसपर भी घटका उपादान मृतपिण्ड कहा गया है। अब क्यों है वह मृतपिण्ड घटका उपादेय कि पार्थिवत्व आदिक गुणोंसे दोनों सजातीय हैं। पार्थिवत्व एक विशिष्ट सामान्य है और सत्त्व अविशिष्ट सामान्य है। तो पार्थिवत्व आदिक विशिष्ट सामान्यके कारण तो वह मृत्पिण्ड और घटाकार पृथ्वीके हैं इस दृष्टिसे सजातीय हैं और उनमें उपादान उपादेयभाव सिद्ध हो जाता है।

सजातीयत्वमें उपादानोपादेयभावकी व्यवस्थाका विवरण—अब चार्वाक शंका करते हैं—तो फिर सजातीयपना कहाँ निश्चित रहा है? सजातीयत्व विशेषका तत्त्वान्तर भावसे विरोध कैसे रहेगा? यहाँ अब इसका समाधान करते हैं। प्रसग यह है कि जब यह कहा गया कि पार्थिवत्व आदिक गुणके कारण मृतपिण्ड, और घट ये सजातीय होगए तो जब सजातीयपना व विजातीयपना दृष्टियोंसे चलता है फिर सजातीय-

पनाका तत्त्वान्तर भावसे विरोध कैसे होगा ? ऐसी शंकाके समाधानमे आचार्य यह कह रहे हैं कि अन्त:गुप्त जो सजातीयपना उसके निमित्तसे उपादान उपादेय भाव बनता है क्योंकि तत्त्वान्तरभूत उन दो पदार्थोंमे सजातीयताकी उपलब्धि नही है। देखिये ! प्रतिक्षण पूर्व आकारका परित्याग होता और उत्तर आकारका उत्पाद होता, इतनेपर भी जो उनमें यह वही है, इस प्रकारका विषयभूत जो तत्त्व है उसमें उपादानपनाकी प्रतीति हो रही है। अथवा यो समझिए कि पूर्व आकारमे भी रहने वाले जिस तत्त्वका परित्याग नहीं हुआ और उत्तर आकारमें जो नहीं छूटा उसमें जो यह वही है, इस प्रकारके अन्वय ज्ञानके घटनेका जो विषय है वही तो उपादान है। जिसने पूर्व आकारका परित्याग किया ऐसे द्रव्यके द्वारा स्वीकार किया गया उत्तराकार उपादेय कहलाता है याने कोई कार्य बननेपर उसमें जो यह निरखा जा रहा है कि इससे पूव आकारमें रहने वाला तत्त्व झूठा नही है तब वह उपादान समझा जाता है। जैसे घडा बननेपर भी यह समझा जा रहा है कि पूर्व आकारमें जो मिट्टीपन था वह झूठ नही है। घड़ा बननेपर भी वह मिट्टीपन है तब वह उपादान समझा जाता है। और, पूर्व आकार जो एक पिण्ड लौंदा जैसा था वह मिट गया और उस मिट्टी द्रव्यने उत्तर आकारको अगीकार कर लिया तो इससे यह जान लिया जाता है कि यह घडा उपादेय है। इस विधिसे यदि उपादान उपादेय भावकी प्रतीति न मानी जाय तो इसमें अतिप्रसंग आयेंगे। मेचक ज्ञानमे चित्र ज्ञानपनेका अभाव हो जायगा। इससे यह मानना होगा कि सजातीय होनेपर भी जहा यह देखा जाता है कि पूर्व आकारमें रहने वाले तत्त्वका त्याग नहीं हुआ और उत्तर आकारभी अगीकार कर लिया, साथ ही पूर्वव्यक्त पर्यायको छोड दिया तब वहाँ यह समझा जाता है कि इसमे परस्पर उपादान उपादेय भाव है।

तत्त्वान्तरभूतके साथ भिन्नलक्षणत्वकी व्याप्तिके विवरणमे शंका समाधान—अब यहाँ शकाकार कहता है कि तत्त्वान्तर भावके साथ भिन्न लक्षणपनेकी व्याप्ति किस तरह सिद्ध है ? अर्थात् जो अनुमान यह किया गया है कि चेतन भूतसे तत्त्वान्तर है भिन्न लक्षण वाला होनेसे तो इसमे हेतु तो कहा गया है भिन्न लक्षणपना और साध्य बताया गया है तत्त्वान्तर अर्थात् भिन्न-भिन्न होना। तो यहाँ साध्यके साथ इस हेतुकी व्याप्ति कैसे सिद्ध है ? इसके उत्तरमें कहते हैं कि हेतुकी व्याप्ति सब जगह साध्यके अभावमें साधनके न होनेसे माना जाता है। अर्थात् अन्यथानुपपत्ति साध्य और साधनकी व्याप्तिको सिद्ध करती है। सो यह बात प्रसिद्ध ही है कि तत्त्वान्तरभावके अभावमें भिन्न लक्षणपना नही हुआ करता है। अर्थात् जो एक ही पदार्थ है—उसमें भिन्न लक्षणता नहीं होती है। अब शकाकार कहता है कि देखिये—जिन चीजोसे मदिरा बनाया जाता है धातकी, कोदो, गुड आदिसे, तो उन वस्तुवोंमें तत्त्वान्तरभाव तो नहीं है। चीज तो एक ही है। इस ही से तो मदिरा बनता है। लेकिन इसमें भिन्न लक्षणपना पाया जा रहा है। कोदो चीज अलग है, जिसे लोग खाया

करते हैं, पर मदिरा शराब बोतलोंमे रहती है, जिसे पीकर लोग बेहोश हो जाते हैं, तो लक्षण तो जुदे पाये गये लेकिन तत्त्वान्तरपना नहीं है चीज एक ही है। मदिराका ही तो उपादान है यह धातकी कोदो वगैरह। तो इसमें तत्त्वान्तर भावके साथ भिन्न लक्षणपना देखा गया है। फिर व्याप्ति कैसे तत्त्वान्तरभावके साथ भिन्न लक्षणपनेकी सही हो सकती है? इस शकाके उत्तरमें कहते हैं कि यहाँ भी अव्याप्ति नहीं बता सकते क्योंकि इन दोनोंमें और मदिरा परिणमनमें भिन्नलक्षणपना सिद्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि वे कोदो आदिक पदार्थ मद उत्पन्न करनेकी शक्ति रख रहे हैं, मदिरा आदिक परिणमनकी तरह। यदि इन धातकी आदिक पदार्थोंमें सर्वथा ही मद उत्पन्न करनेकी शक्ति न मानी जाय तो ये धातकी आदिक पदार्थ फिर मदिरारूप परिणमनकी दशामें भी मद उत्पन्न करनेकी शक्ति न पा सकेंगे। सो यद्यपि इस समय कोदो आदिक पदार्थोंमें मद उत्पन्न करनेकी एकदम व्यक्त स्थिति नहीं है लेकिन शक्ति वहाँ भी मौजूद है। कारणकलापसे जब मदिरा परिणमन बन जाता है उन पदार्थोंका तो उनमे मद जनककी शक्ति एकदम प्रकट हो जाती है। तो इस तरह उन पदार्थोंमें और मदिरा परिणमनमे भिन्न लक्षणपनेके साथ व्याप्तिका निराकरण नहीं किया जा सकता है।

धातकीमे मदशक्तिकी तरह भूतोमे चैतन्यशक्ति मान लेनेकी चार्वाककी शंका—अब यहाँ शकाकार कहता है कि जब यह मान लिया गया कि उन धातकी आदिक पदार्थोंमें मदजनन करनेकी शक्ति मौजूद है तो इस ही तरह भूत और अन्तस्तत्त्व अर्थात् चेतनमें भिन्न लक्षणपना मत हो। जैसे अभी बताया है कि कोदो धातकी गुड आदिक पदार्थोंमें और मदिरा परिणमनमे इन दोनोंमें भिन्न लक्षणपना नहीं है तो बस यहाँ बात यह मान लेना चाहिए कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु भूतोंमें और चेतनमें भिन्न लक्षणपना नहीं है। यहा भी शरीराकार परिणत भूत विशेषोंकी अवस्थासे पहिले भी इन पृथ्वी आदिक भूतोंमें चैतन्य शक्तिका सद्भाव है अन्यथा याने यदि शरीराकार परिणत भौतिक अवस्थासे पहिले जो पृथ्वी आदिक रूपमें ही भूत रह रहे थे उनमे चेतनशक्ति न मानी जाय तो जब शरीर अवस्थासे परिणत हो जाते हैं ये भूत, फिर भी इनमें चेतनकी उत्पत्ति न होगी। इससे सिद्ध है कि जिन पृथ्वी जल आदिक स्कधोंके मिलनेसे एक शरीरका आकार बना है उन पृथ्वी आदिकमें चेतन तत्त्वको उत्पन्न करनेकी शक्ति थी। और इस तरह भूतसे चेतनकी उत्पत्ति हो जायगी! तो चेतन कोई अलग तत्त्व नहीं है, और जब कोई अलग चीज चेतन सिद्ध न हुआ तो ससार क्या कहलाया? भवान्तरकी प्राप्ति कुछ न रही। तब तो जो अरहत प्रभुने ससार तत्वका स्वरूप कहा है यह मिथ्या हो जायगा ना।

भूत और चैतन्यमे प्रबल प्रसिद्ध भिन्नलक्षणत्व होनेसे भूतमे चैतन्य शक्ति कल्पना करनेकी शकाका निराकरण—उक्त शकाके उत्तरमें कहते हैं कि

यह भी धारणा रखना मिथ्या है, क्योंकि चेतन अनादि है, अनन्त है, यह प्रमाणसे सिद्ध है अत. चैतन्यकी भूतसे उत्पत्ति मानना प्रमाणसे विरुद्ध है। चेतनके अनादि अनन्तपना, 'आत्मा'वादी दार्शनिकोंने युक्ति व आगमसे भली प्रकार सिद्ध किया है। और फिर इस प्रकार भूतकी पर्याय चेतन है यह बात सिद्ध नहीं हो सकती। यदि चेतनको भूतकी पर्याय सिद्ध करने लगोगे तो कोई यह भी कह सकता कि पृथ्वी आदिक जो तत्त्व हैं वे चेतनकी पर्यायें हैं। क्योंकि अनादि अनन्तपना दोनोंमें समान है। चेतन भी अनादि अनन्त है और पृथ्वी आदिक स्कध भी अनादि अनन्त हैं। और कोई दार्शनिक हैं भी ऐसे कि जो पृथ्वी आदिक समस्त विश्वको एक चिद्ब्रह्म की पर्याय मानते हैं। चार्वाकोंने चेतनको भूतकी पर्याय माना तो किन्हीं दार्शनिकोंने भूतोंको चेतनकी पर्याय मान लिया। न भूत चेतनकी पर्याय है न चेतन भूतकी पर्याय है क्योंकि इनमे भिन्न लक्षणपना बराबर पाया जा रहा है। और भिन्न लक्षणपना तत्त्वान्तरपनेसे व्याप्त है। इस तरह यह भिन्न लक्षणपना नामक हेतुभूत और चैतन्यमें तत्त्वान्तरपनेको सिद्ध करता ही है। इस प्रकार प्राणियोंका आद्य चेतन परिणाम अर्थात् गर्भावस्थामें प्राप्त चेतन चेतन परिणामके उपादानपूर्वक ही है। अर्थात् गर्भावस्थामें पाया गया चेतन पूर्वभवके चेतन उपादानसे सिद्ध है और इसी प्रकार अन्तिम चेतनका उपादेय भविष्यमें जो अन्य भवमें जन्म होगा उसका आद्य चेतन परिणाम उपादान याने मरनेके बाद फिर जो आगे भवमें जन्म होगा तो अगले भवकी जन्म अवस्थामे पाया गया चेतन इस चेतनके उपादानमे होगा। इस तरह चेतनके उपादानसे होगा। इस तरह इस जीवका पूर्वभव था, इस जीवका उत्तरभव होगा और पूर्वभवका परित्याग कर कर अन्य अन्य भवका परिग्रहण करना इस ही का नाम ससार है। इस तरह ससारतत्व प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधा नहीं जाता।

भवान्तरावाप्तिरूप ससारतत्त्वकी आगमप्रमाणसे सिद्धि—देखिये! भवान्तरावाप्तिरूप ससारतत्त्वकी सिद्धिमे प्रत्यक्ष प्रमाणसे अब कोई बाधा नहीं आई और न अनुमान प्रमाणसे बाधा आती है। जो पहिले चार्वाकने अनुपलब्धि हेतु देकर चेतनके अभावको सिद्ध करना चाहा था वह अनुमान अब युक्तिसगत न रहा। इस विषयमें बहुत विवेचन किया जा चुका है। अब बताते हैं कि आगमके द्वारा ऐसे चेतन तत्त्वकी सिद्धिमें कोई बाधा नहीं है। आगम तो उस चैतन्यस्वरूपका प्रतिपादन करने वाला है। कहा भी है तत्वार्थमहासूत्रमें कि 'ससारिणस्त्रसस्थावरा.'—जीवके मुक्त और ससारी ऐसे दो भेद बताये गये। उनमे ससारी जीवका प्रतिपादक यह सूत्र है। ससारी जीव दो प्रकारके हैं—त्रस और स्थावर। ससारी जीवोंका सद्भाव भी इस सूत्रसे सिद्ध है और त्रस स्थावरोंके रूपमें ये बहुतसे जीव विदित भी हो रहे हैं। ससारी उसे कहते हैं जो एक भवसे दूसरे भवको ग्रहण कर रहे हो ऐसे जीव। और ऐसे जीव दो प्रकारके पाये जा रहे हैं—त्रस और स्थावर। स्थावर नाम है उन जीवो का जिन जीवोंके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय है। और त्रस कहलाते हैं वे जीव जिन

जीवोंमें स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र ये ५ इन्द्रियाँ हैं। इस प्रकारके संसारी जीवोंका वर्णन आगमसे सिद्ध है।

संसारके उपायतत्त्वोंके स्वरूपकी प्रमाणसे अबाधितता—जैसे संसार-तत्त्व अबाधित है उस ही प्रकार संसारका उपाय तत्त्व भी प्रमाणसे बाधित नहीं होता, संसार हुआ परिभ्रमण और संसारका उपाय तत्त्व हुआ कारणभूत परिणाम—मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चारित्र। इन ही तीन परिणामोंके कारण यह जीव संसारमें परिभ्रमण कर रहा है। अपने आपके चैतन्यस्वभावका श्रद्धान न होना और भौतिक शरीरादिकमें यह मैं हूँ, इस प्रकारका अनुभव करना, इसीका नाम मिथ्यादर्शन है और ऐसा ही ज्ञान बनाये रहना सो मिथ्याज्ञान है। शरीरको आत्मा समझकर शरीरके पोषणसे आत्माका पोषण होगा, ऐसी बुद्धि रखकर शरीरके पोषणके साधनमें ही रमना, शरीरके इन्द्रिय विषयोंमें ही रमना यह है मिथ्याचारित्र। याने जो आत्मा का शील स्वभाव है केवल ज्ञाता हुआ रहना, इसमें तो उपयोग लगता नहीं और स्वरूप से अत्यन्त भिन्न इन रूपादिक विषयोंमें उपयोग रमाना यह है मिथ्या चारित्र। ये संसारके विषय तत्त्व भी प्रमाणसिद्ध हैं, प्रमाणसे बाधे नहीं जाते। प्रत्यक्ष तो इस उपाय तत्त्वका बाधक होता ही नहीं है। तो संसार भी सिद्ध है और संसारका उपाय तत्त्व भी प्रमाणसे सिद्ध है। तो अरहंत प्रभुने जो इन पदार्थोंका उपदेश किया है वह प्रमाणसे बाधित नहीं होता।

संसारकारणतत्त्वके स्वरूपको बाधित करनेका प्रयास व उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि संसार निर्हेतुक है अनादि अनन्त होनेसे आकाशकी तरह चूंकि संसार अनादि कालसे चला आ रहा है और और अनन्त काल तक रहेगा इस कारण यह संसार निर्हेतुक है। जैसे आकाश अनादि अनन्त है तो वह निर्हेतुक है ऐसे ही संसार निर्हेतुक है। इस अनुमानसे तो संसारकी सहेतुकतामें बाधा आती है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। पर्यायार्थिक दृष्टिसे संसारका अनादि अनन्तपना सिद्ध नहीं है अर्थात् संसारका परिणाम संसारकी अवस्था जो कोई एक एक होती रहती है उसका अन्त है फिर नवीन संसार पर्याय होती है। अथवा किसी जीवका संसार परिणमन सदाके लिये नष्ट होना भी देखा जाता है। जो जीवमुक्त हो गया उसके फिर संसार कहाँ रहा? तो यों पर्यायार्थिकनयसे संसारमें अनादि अनन्तपना असिद्ध है। और जो संसारका निर्हेतुक सिद्ध करनेके लिये अनुमान दिया है कि संसार निर्हेतुक है अनादि अनन्त होनेसे आकाशकी तरह। इसमें जो दृष्टान्त दिया है आकाश वह साध्य साधनसे विकल है। कोई भी वस्तु हो उसका परिणमन अनादि अनन्त नहीं हो सकता। आकाशका प्रतिक्षण स्वभावपरिणमन है, अगम्य है, फिर भी है ही। तो पर्यायार्थिक दृष्टिसे आकाशको अनादि अनन्त नहीं कह सकते। हाँ द्रव्यार्थिक नयसे संसारको अनादि अनन्त माननेमें नित्यपना माननेमें तो सही बात

है। सिद्ध साधन है जो बात सही है वह बराबर सिद्ध होती है। किन्तु सुख दुःख आदिक भवोरूप जो ससार है वह तो निर्हेतुक नहीं है याने प्रत्येक परिणति सहेतुक है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भवविशेषके निमित्तसे ससार होनेकी प्रतीति है। इस तरह ससारको अहेतुक सिद्ध करने वाला अनुमान निर्दोष नही है। यो कोई भी अनुमान ससारके कारण तत्त्वका बाधक नही है जब ससार सहेतुक सिद्ध हो रहा है तो जो हेतु है वही ससारका कारण है। तो जैसे ससार तत्त्वकी सिद्धिमे कोई प्रमाण बाधा नही दे पाता इसी प्रकार ससारके कारणतत्त्वकी सिद्धिमें भी किसी प्रमाणसे बाधा नहीं आती।

ससारतत्त्वके कारणतत्त्वोंकी आगम प्रमाणसे अबाधितता—ससार तत्त्वके कारणोका बाधक आगम प्रमाण भी नहीं है। आगम तो ससारके कारण तत्त्वोका साधक है। तत्त्वार्थ महासूत्रमें कहा है कि 'मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाय-योगा बन्धहेतव." इस सूत्रके अनुसार बधके हेतु मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग बताये गए हैं। जो बधके हेतु हैं वे ही तो ससारके हेतु हैं। तो इस तरह मोक्ष और मोक्षका कारण तत्त्व ससार और ससारका कारणतत्त्व जो भगवानका अभिमत है वह प्रसिद्ध प्रमाणसे युक्ति शास्त्रसे बाधित नहीं होता, यह बात सिद्ध हो रही है। तब अबाधित इन तत्त्वोके स्वरूपके सम्बन्धमें अर्हन्तका जो उपदेश है वह युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध है, इस बातको सिद्ध करता है और युक्ति शास्त्रका अवि-रोधीपना निर्दोषपनेको सिद्ध करता है। चू कि प्रभुके वचन युक्ति शास्त्रसे अविरुद्ध हैं अतएव प्रभु निर्दोष हैं। यो हे प्रभो! तुम ही वह सर्वज्ञ हो और वीतराग हो! तुम ही स्तवनके योग्य हो अन्य कोई नहीं। यह बात जो कारिकामे कही गई है पूर्ण-तया वह युक्त है।

विप्रकर्षी पदार्थोंकी प्रत्यक्षविषयताकी सिद्धि—सूक्ष्म अतरित दूरवर्ती पदार्थ ये विप्रकर्षी हैं, फिर भी ये किसीके प्रत्यक्ष हैं। जैसे परमाणु आदिक ये स्वभाव विप्रकर्षी हैं। दृश्य जो पदार्थ हैं, उनमें जो लक्षण पाया जाता उससे भिन्न लक्षण है परमाणु आदिकका। घट आदिक हैं दृश्यस्वभाव तो परमाणु आदिक हैं अदृश्यस्वभाव, इस अदृश्य स्वभावके सम्बन्धीपनेसे विप्रकर्षी हैं परमाणु आदिक तथा रावण, शख आदिक किस प्रकार भिन्न लक्षणसे सम्बन्धित हैं सो सुनो! वर्तमान काल जैसा जो कुछ है सब जानते ही हैं। उससे भिन्न है अतीत और अनागतकाल। जो वर्तमानकाल का लक्षण है उससे भिन्न है अतीत और अनागत कालका लक्षण। उस भिन्न लक्षणसे सम्बन्धित होनेसे रावण आदिक ये विप्रकर्षी पदार्थ हैं। विप्रकर्षीका अर्थ यह है कि जो अविप्रकर्षी नहीं है, जो हम आप सब छद्मस्थोंके जाननेमें आते हैं उनसे भिन्न लक्षण होना वह विप्रकर्षी और रावण शख आदिक हुए कालविप्रकर्षी और कुछ होते हैं दूरवर्ती। जो दर्शन योग्य साधनसे भिन्न देश है तो वह भिन्न लक्षण वाला है। जो

क्षेत्र यहाँ हम आप छद्मस्थोंका दिखता है वह तो है उपलब्धि योग्य और उससे भिन्न देश जो दृष्यमान नहीं, अति दूर है वह है अनुपलब्धि योग्य। तो अनुपलब्धि योग्यके सम्बन्धीपनसे समुद्र पर्वत द्वीप आदिक क्षेत्र ये सब दूरवर्ती पदार्थ अनुपलब्धि योग्य विप्रकर्षी हैं। तो यों भिन्न लक्षणसे सम्बन्धीपना होनेसे स्वभाव विप्रकर्षी काल-विप्रकर्षी होनेपर भी ये सब किसीके प्रत्यक्ष सिद्ध होते ही हैं और जिनके ये सब प्रत्यक्ष हैं वे हुए अरहत, अन्य कोई आप्त नहीं है।

अवीतरागोंके न्यायागमविरुद्धभाषी होनेसे वीतराग अर्हन्तके ही सर्वज्ञत्वकी सिद्धि—यहाँ कोई शका करता है कि यह कैसे निश्चित् किया कि जिस के ये समस्त विप्रकर्षी पदार्थ प्रत्यक्ष हैं वे भगवान अरहत ही हैं? उत्तरमें कहते हैं कि इस हेतुसे निश्चित है कि वे न्याय और आगमके अविरुद्ध भाषी हैं और इनसे भिन्न अन्य अवीतराग पुरुष न्याय और आगमसे विरुद्ध कहने वाले है। तो जो न्या-यागमसे अविरुद्ध भाषण करने वाले होते हैं वे निर्दोष नहीं होते। जैसे कि खोटे वैद्य-आदिक। वे न्याय और आगमके विरुद्ध भाषण करते हैं अतएव निर्दोष नहीं हैं। इस प्रकारसे अन्य सराग ऋषिजन भी न्याय और आगमसे विरुद्धभाषी हैं अतएव वे निर्दोष नहीं है। भगवान जो न्याय और आगमके अविरुद्ध कहने वाले हैं उनमें ही निर्दोषता निश्चित होती है। शकाकार कहता है कि यह तुमने कैसे समझा कि अन-र्हन्त न्याय और आगमके विरुद्धभाषी हैं? सो उत्तरमें कहते हैं कि अनर्हन्त न्यायागम के विरुद्धभाषी हैं यह बात असिद्ध नहीं है। क्योंकि उनके द्वारा अभिमत माने गए मोक्ष और मोक्षके कारण तत्त्व ससार और ससारके कारणतत्त्वमें प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधा आती है। अब किस तरहसे प्रसिद्ध प्रमाणसे उन चार तत्वोंमें बाधा आती है उनको क्रमश सुनो।

अनार्हत मोक्षस्वरूपमें न्यायागमविरुद्धताका कथन—देखिये! मोक्षके स्वरूपके सम्बन्धमें किन्हींने माना है कि चैतन्यमात्र स्वरूपमें आत्माके अवस्थान होने का नाम मोक्ष है। वह प्रमाणसे बाधित होता है। चैतन्य विशेष जो अनन्त ज्ञाना-दिक हैं उस स्वरूपमें अवस्थित होनेको मानना युक्ति सगत है उन अनन्त ज्ञाना-दिकोंको छोड़कर चैतन्यमात्र स्वरूप और कुछ क्या है? अर्थात् पर्यायोंको छोड़कर निष्पर्यायरूपमें क्या स्वभाव रहा करता है इसकी क्या कल्पना की जा सकती है? अनन्तज्ञानादिक उस चैतन्य मात्र स्वरूपके परिणमन हैं। परिणमन रहित कोई चैतन्यमात्र स्वभाव है और उस स्वभावमें अवस्थित होनेका नाम मोक्ष है, यह बात युक्त नहीं बनती। अनन्त ज्ञानादिक आत्माके अस्वरूप नहीं हैं। वे आत्माके स्वरूप ही हैं। यदि अनन्त ज्ञानादिक आत्माके स्वरूप न माने जायें तो सर्वज्ञपनेका विरोध आता है। फिर सर्वज्ञता ही क्या रही? और सर्वज्ञताकी सिद्धिके सम्बन्धमें काफी प्रकाश डाला जा चुका है सर्वज्ञकी सिद्धि अबाधित होती है तो तथ्य यों स्वीकार करना चाहिए कि चैतन्यमात्र तो आत्माका शाश्वत स्वरूप है। पर वह चैतन्यमात्र-

परिणतियोंसे रहित निष्परिणाम कुछ हो सो बात नही। उसका विशेष है और वह विशेष है ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक, तो शुद्ध ज्ञान दर्शन आनन्द आदिकमे आत्माके अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है, यह बात तो सगत बनती है। पर जिसका कुछ परिणाम हो नही, केवल कथन मात्र है, ऐसे चैतन्यमात्रमें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष नही बनता।

प्रधानमे सर्वज्ञत्व माननेकी प्रधानवादीकी शका व उसका समाधान—यहाँ प्रधानवादी शका करते हैं कि सर्वज्ञपना तो आत्माका स्वरूप नही है सर्वज्ञत्व तो प्रधानका स्वरूप है प्रकृतिका है। पुरुष सर्वज्ञ नही हुआ करता, क्योंकि आत्मा तो अचेतन है। साख्य सिद्धान्तमें दो तत्व माने गये हैं पुरुष और प्रकृति। तो पुरुष तो अचेतन है और प्रकृतिमें महान् धर्म आता है, अर्थात् एक बुद्धि नामका धर्म आता है। फिर उससे अहङ्कार बनता है। अहंकारसे गण आदिककी उत्पत्ति होती है। फिर यहाँ रूप विषय इन्द्रिय ये सब सृष्टि बनते हैं। तो यो सारी सृष्टिका मूल कारण प्रकृति है और प्रकृतिसे सर्वप्रथम ज्ञान प्रकट होता है तो ज्ञान प्रकृतिका धर्म है। अतएव पुरुष सर्वज्ञ नहीं बनता। जिसके ज्ञान प्रकट हो वही तो सर्वज्ञ कहला सकता है। ज्ञान प्रकृतिसे ही प्रकट होता है इस कारण आत्माको सर्वज्ञ नही बताया जा सकता है। इस शकाके उत्तरमे कहते हैं कि प्रकृति स्वरूपत अचेतन है अतएव प्रकृति सर्वज्ञ नही बन सकती। जैसे कि आकाश स्वरूपतः अचेतन है तो आकाश सर्वज्ञ नहीं हो सकता यों ही प्रकृति भी सर्वज्ञ नहीं हो सकती।

प्रकृतिवादियों द्वारा ज्ञानादिकको अचेतन सिद्ध करनेका प्रयास व उसका समाधान—यहाँ सांख्यसिद्धान्तानुयायी शका करता है कि ज्ञानादिक तो अचेतन हैं इस कारण ज्ञानादिक भी अचेतन प्रधानके स्वभाव हैं यह बात युक्तिसगत है। और तब ज्ञानादिकका प्रधानसे उत्पन्न होना और प्रधानका स्वरूप बनना यह सिद्ध हो जायगा। उत्तरमे पूछते हैं कि यह ज्ञान अचेतन है, यह सिद्ध किस तरह होगा? ज्ञान की अचेतनता सिद्ध नही है। इस आक्षेपके उत्तरमे शकाकार कहता है कि सुनो! ज्ञानादिक अचेतन है उत्पत्तिमान होनेसे। जो जो वस्तुवें उत्पन्न होती हैं वे सब अचेतन हैं जैसे घट पट आदिक। घट आदिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं अतएव वे अचेतन हैं। ऐसे ही ये ज्ञानादिक भी उत्पन्न होते हैं इस कारण अचेतन हैं। यो अनुमान प्रयोगसे ज्ञानादिकका अचेतनपना सिद्ध हो जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि इस अनुमान ज्ञानादिककी अचेतनता यदि सिद्ध करोगे तो इस हेतुका अनुभवके साथ व्यभिचार आयगा, अर्थात् अनुभव उत्पन्न तो होता परन्तु अचेतन नहीं है। जहाँ हेतु पाया जाय और साध्य न पाया जाय उसे व्यभिचार दोष कहते हैं। तो इस अनुमानमे कि ज्ञानादिक अचेतन हैं उत्पत्तिमान होनेसे। व्यभिचार दोष यो आता है कि अनुभव उत्पत्तिमान तो है किन्तु अचेतन नहीं है, चेतन है। शकाकारने भी अनुभवको चेतन माना है। शकाकार पूछता

है कि अनुभव उत्पत्तिमान कैसे है ? उत्तरमें कहते हैं कि अनुभव उत्पत्तिमान है सापेक्ष होनेसे। जो जो वस्तुवें परापेक्ष होती हैं वे सब उत्पत्तिमान हैं, जैसे बुद्धि आदिक। सांख्यसिद्धान्तानुयायी मानते हैं कि बुद्धि अचेतन है और बुद्धिको ही अचेतन सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास है। तो जैसे बुद्धि परापेक्ष है, प्रकाश, इन्द्रिय मन आदिक अनेककी अपेक्षा रखता है इस कारणसे वह उत्पत्तिमान है। यों ही अनुभव भी परकी अपेक्षा रखता है, बुद्धिकृत अध्यवसायकी अपेक्षा रखता है यह बात शंकाकारके सिद्धान्तसे भी सिद्ध होती है। देखिये ! अनुमान प्रयोग अनुभव परापेक्ष होता है क्योंकि बुद्धिके अध्यवसायकी अपेक्षा रखनेसे। शंकाकार स्वयं यह मानता है कि बुद्धिके द्वारा प्रतिनियत अर्थसे पुरुष जानता है ऐसा उनका सूत्र है बुद्ध्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतयते। इस सूत्रके अनुसार यह सिद्ध होता है कि अनुभव बुद्धिके अध्यवसाय की अपेक्षा रखता है, जिसका तात्पर्य यह है शंकाकारके सिद्धान्तके अनुसार कि जानन-हार चेतने वाला तो आत्मा है, किन्तु जब बुद्धि द्वारा कोई पदार्थ अध्यवसित हो जाय बुद्धि जब पुरुषको समर्पण करदे किसी पदार्थको तब पुरुष चेतन करता है, जानता है। तो इस तरह यहाँ यह बात प्रकट होती है कि चेतना, जानना, अनुभवना आदि जो पुरुषको हो रहे हैं वे बुद्धिके अध्यवसायकी अपेक्षा रख रहे हैं। और, जब बुद्धिक अध्यवसायकी अपेक्षा रखता है अनुभव तो उत्पत्तिमान सिद्ध हो ही गया। जब उत्पत्ति-मान सिद्ध हो गया तो इस अनुभवके साथ आपके अनुमानका व्यभिचार आयगा ही। देखिये ! यदि अनुभवको बुद्धिके द्वारा अवसित अर्थकी अपेक्षा न रखने वाला माना जाय तो फिर सब जगह सब समय सब जीवोंके अनुभवका प्रसंग आ जायगा और जब सभी जीव सब समय सब पदार्थोंका अनुभव करने लगे तो इससे सिद्ध हुआ कि संसार के सभी जीव सर्वदर्शी बन गए और जब सभी जीव सर्वदर्शी बन गए तो सर्वदर्शी बननेके जो उपाय बताये गए हैं शंकाकारके सिद्धान्तमें भी कि ध्यान रखे, योग रखे तो इन सब उपायोंका करना व्यर्थ हो जायगा। फिर ये सब कारण क्यों किए जायें ? सभी पुरुष सदा ही सर्वज्ञ बन गए, फिर सर्वज्ञ बननेके उपाय मिलनेकी आवश्यकता ही क्या है ? इससे सिद्ध है कि अनुभव बुद्धिकृत अध्यवसायकी अपेक्षा न रखे यह न होगा और, जब अनुभवने बुद्धिके अवसायकी अपेक्षा रखी तो परापेक्षा हुई। परापेक्षा होनेसे अनुभव उत्पत्तिमान हुआ और उन उत्पत्तिमान अनुभवोंके साथ ज्ञानादिककी अचेतनता सिद्ध करने वाले उत्पत्तिमत्त्व हेतुमें दोष आ गया, तब ज्ञानादिक अचेतन सिद्ध न हो सकेंगे।

ज्ञानादिको अचेतन सिद्ध करनेके लिये शंकाकार द्वारा दिये गए हेतुमे व्यभिचारिताका निराकरण करनेके सम्बन्धमें चर्चा समाधान—यहाँ शंकाकार कहता है कि भाई आत्माका जो अनुभव सामान्य है वह तो नित्य है, अनु-त्पत्तिमान है उसके साथ व्यभिचार न आयगा। उत्तरमें कहते हैं कि जैसे अनुभव सामान्यको नित्य और अनुत्पत्तिमान् मानते हैं इसी प्रकार ज्ञानादिक सामान्य भी

नित्य होनेसे अनुत्पत्तिमान ही सिद्ध होगा और जब अनुत्पत्तिमान सिद्ध हो गया तो यह अनुमान बनाना कि ज्ञानादिक अचेतन है उत्पत्तिमान होनेसे तो यहाँ हेतु असिद्ध हो गया। शंकाकार कहता है कि ज्ञानादिक विशेष तो उत्पत्तिमान हैं ना! फिर तो हेतु असिद्ध न बना। ज्ञानादिक सामान्यको भले ही नित्य और अनुत्पत्तिमान कह लो, लेकिन ज्ञानादिक विशेष तो उत्पत्तिमान हुआ करते है। तब यहाँ हेतु असिद्ध न रहा अर्थात् ज्ञानादिक अचेतन हैं उत्पत्तिमान होनेसे, इस अनुमानमें ज्ञानादिक कहनेसे ज्ञानविशेषका ग्रहण करियेगा तब इसमे साधन भी आ गया और साध्य भी आ गया। अब तो असिद्ध न कहलायेगा। अनुमान सही बन जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो इस तरह अनुभव विशेष भी उत्पत्तिमान है। अतएव अनुभव विशेषके साथ आपके हेतुमें अनैकान्तिक दोष आ ही जायगा। याने अनुभव विशेष उत्पत्तिमान तो है लेकिन अचेतन नहीं है, चेतन माना गया है। तो यो हेतु तो घटित हो गया अनुभव विशेषमें कि वह उत्पत्तिमान है, किन्तु साध्य नहीं आ पाया। साध्य है शंकाकारके सिद्धान्तमें अचेतनपना सो अनुभवमें तो अचेतनपना नहीं आया। अनुभव विशेष हो गया विपक्ष और विपक्षमें हेतु देखा जाय तो अनैकान्तिक दोष होता है। अनुभवको विपक्ष यों कहा कि साध्य बनाया है शंकाकारने अचेतन और साध्यधर्म विपरीत है अनुभव, इस कारण अनैकान्तिक दोष तो हो ही जायगा। यहाँ यह नहीं कह सकते कि अनुभवके विशेष हुआ ही नहीं करते, अनुभव तो केवल सामान्यरूप रहता है। यह बात यों नहीं कह सकते कि यदि अनुभव विशेष न हुआ करे तो अनुभव वस्तु नहीं ठहर सकता फिर तो अनुभवको कुछ चीज सिद्ध करनेके ही लाले पड जायेंगे क्योंकि विशेष रहित अनुभवको माननेपर अनुमान प्रयोगसे अवस्तुपना सिद्ध होगा। अनुभवके जब कोई विशेष ही नहीं माने जाते तो अनुभव वस्तु नहीं रहता, क्योंकि जो विशेषरहित हुआ करता है वह खरविषाणवत् असत् है जो वस्तुरहित है ऐसी कल्पना की जाय तो वह सामान्य खरविषाणवत् असत् है। अनुभव विशेष न माना जाय और केवल अनुभव सामान्य माना जाय तो विशेषरहित होनेसे अनुभव विशेष न ठहरेगा।

सकलविशेषरहितके अवस्तुत्वप्रसंग निवारणके प्रयासमें शंकाकारकी शंका व उसका समाधान—शङ्काकार कहता है कि इस अनुमान प्रयोगमें हेतुका आत्माके साथ अनैकान्तिक दोष होगा। जो अनुमान प्रयोग किया गया है कि अनुभव विशेष नहीं है समस्त विशेषोंसे रहित होनेसे। तो देखिये! आत्मामें हेतु तो पाया गया, पर साध्य नहीं पाया गया। हेतु तो है समस्त विशेषोंसे रहित होनेसे, सो आत्मा समस्त विशेषोंसे तो रहित है, पर अवस्तु नहीं है, वस्तुभूत पदार्थ है। तब उस अनुमानमें दिए गए हेतुमें अनैकान्तिक दोष आता है। उत्तरमें कहते हैं कि समस्त विशेष रहित होनेसे अनुभवको अवस्तु सिद्ध करने वाले अनुमानमें हेतु अनैकान्तिक दोषसे दूषित नहीं है क्योंकि आत्मा भी सामान्य-विशेषात्मक है। वहाँ हेतु रहता हो, साध्य न रहता हो, यह बात घटित नहीं होती। याने समस्त विशेषों रहितपना हो आत्मामें

और फिर भी आत्मा वस्तु हो, ऐसी बात नहीं। आत्मा वस्तु भी है और विशेषसहित भी है। आत्मा भी सामान्य-विशेषात्मक है। यदि आत्मा सामान्य-विशेषात्मक न हो तो खरविषाणकी तरह वह भी अवस्तु बन जायगा। साथ ही यह भी समझें कि ज्ञान आदिक अचेतन सिद्ध करनेके लिए जो उत्पत्तिमान हेतु दिया है वह उत्पत्तिमान हेतु कालात्ययापदिष्ट है अर्थात् प्रत्यक्षबाधित पक्ष हुआ और पक्षके प्रत्यक्षबाधित होनेके बाद उसमें कोई अनुमानका प्रयोग बने तो वह हेतु कालात्ययापदिष्ठ कहलाता है। देखिये— शंकाकारके अनुमानमें पक्ष बनाये गए हैं कि ज्ञानादिक अचेतन हैं उत्पत्तिमान होनेसे। तो ज्ञानादिक अचेतन है ही नहीं। स्वसम्वेदन प्रत्यक्षरूप होनेसे ज्ञानादिकमे चेतनता की प्रसिद्धि है ज्ञानादिक अचेतन हैं ही नही। तो ज्ञानादिककी अचेतनता स्वसम्वेदन प्रत्यक्षसे बाधित है और प्रत्यक्षबाधित पक्षमें यह हेतु देकर साध्य सिद्ध किया जा रहा है। तो प्रत्यक्ष बाधित पक्षमें जो हेतुका प्रयोग होगा वह हेतु कालात्ययापदिष्ठसे दूषित है। तो इस प्रकार भी ज्ञानादिककी अचेतनता सिद्ध नहीं की जा सकती। और, जब ज्ञानादिक अचेतन न ठहरे तो वे प्रधानके स्वरूप नहीं कहे जा सकते। जब प्रधानके स्वरूप न रहे तो वे आत्माके स्वरूप कहलाये। और, यों आत्माका स्वरूप सिद्ध होनेसे फिर मोक्ष तत्त्व, ससारतत्व और उनका कारणतत्व ये सब अबाधित सिद्ध होते हैं।

ज्ञानको चैतन्य स्वभाव न मानकर चेतनात्मससर्गसे अचेतन ज्ञानमे चेतनताकी प्रतीति माननेपर दोषापत्तियाँ—अब सांख्य कहते हैं कि चेतन आत्मा के ससगसे अचेतन होनेपर भी ज्ञानादिककी चेतनपनेके रूपसे प्रतीति होती है सो वह प्रत्यक्षसे तो भ्रान्त ही है। इसी बातको सांख्य ग्रन्थोंमें भी कहा है कि चूकि आत्मामे चेतनता सिद्ध है इस कारणसे इस चेतनके ससर्गसे अचेतन ज्ञानादिक भी चेतनकी तरह होते हैं। बस यही ज्ञानादिककी चेतनता लगनेकी बात जाननी चाहिये। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बिना सोचे विचारे कही हुई बात है। यदि चेतनके ससगसे अचेतन चेतनको तरह लगे तो शरीरादिकका तो चेतनसे ससर्ग है। तब शरीरादिकमें भी चेतनताकी प्रतीतिका प्रसग आ जायगा। इस कारण यह बात कहना अयुक्त है कि चेतनके ससगसे अचेतन ज्ञान चेतनकी तरह जचता है। ज्ञान स्वय-स्वभावसे चेतन है। सम्बन्ध होनेपर भी जिसका जो स्वरूप है उस स्वरूपको तजता नहीं है। यहाँ सांख्य कहते हैं कि शरीरादिकमें आत्माका ससग विशेष असमव है, बुद्धि आदिक भी शरीरादिकमें हो ही नहीं सकते। अतएव बुद्धि आदिकका आत्माके साथ ससग विशेष है। शरीरमें बुद्धि होती ही नहीं और तब न शरीर चेतनकी तरह जच सकेगा और न आत्माके बुद्धि आदिकके ससर्ग विशेषमे कोई बाधा आयगी। समाधानमे पूछते हैं कि यदि यह बात मान रहे हो हो कि आत्माका शरीर आदिकमें ससर्गविशेषकी असभवता है बुद्धि आदिकमे सम्भवता है सो बुद्धिका आत्मासे ही-ससर्ग विशेष है। तो फिर वह ससर्ग विशेष कहलाया क्या ? सिवाय एक कथंचित् तादा-

त्म्य माननेके। जब आत्माके क्षेत्रमें शरीर भी है और आत्माके ससर्गसे शरीर चेतन की तरह जचता नहीं और बुद्धि ही चेतनवत जचती है तो इसमें जो ससर्ग विशेष है वह भी कथचित् तादात्म्य ही तो है और कथचित् तादात्म्य होनेका भाव यह है कि ज्ञान चैतन्यस्वरूप है। अब यहाँ सांख्य यह मनमें सोच सकते हैं कि बुद्धि तो पुण्य पाप आदिकके द्वारा रची गई है। तो अदृष्टकृत होनेके कारण आत्माके साथ बुद्धिका समर्ग विशेष बनेगा। इसमें तादात्म्य माननेकी जरूरत ही नहीं। तो समाधानमें कहते हैं कि जैसे यह कर रहे हो कि पुण्य पाप आदिकके द्वारा किया गया होना यह विशेषता शरीरादिकमें नही है तो यह बात अपने सिद्धान्तसे ही विरुद्ध है। जैसे बुद्धि पुण्य पाप आदिकके द्वारा रचित मानते हो उसी प्रकार शरीरादिक भी पुण्य पाप आदिकके द्वारा रचित माने गए हैं, इस कारण ज्ञानादिक अचेतन नहीं हैं। क्योंकि ज्ञानादिकमे स्व सम्विदितपना है। जैसे कि अनुभव अचेतन नहीं है। सांख्य सिद्धान्तके अनुसार भी अनुभव अचेतन नही है क्योंकि वह स्वसम्विदित है। तो इसी प्रकार ये ज्ञानादिक भी स्वसम्विदित है फिर ज्ञानादिक अचेतन नही हो सकते।

परसवेदनान्यथानुपपत्तिसे ज्ञानमे स्वसवेदनताकी सिद्धि और अनन्तज्ञानादि स्वरूपमे अवस्थान होनेसे मोक्षस्वरूपकी सिद्धि—यदि कोई यहाँ यह जानना चाहे कि ज्ञानादिक स्वसम्वेदन कैसे हैं तो इस विषयमें तो बहुत कुछ वर्णन किया है। सामान्यतया इतना ही समझलो कि वे ज्ञानादिक स्वसम्विदित हैं अन्यथा परसम्वेदनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती थी। ज्ञान चू कि परपदार्थका सम्वेदन करता है तो यह परकी जानकारी तभी ज्ञानमें बनती है जबकि ज्ञान स्वसम्विदित हो। और, जब ज्ञान स्वसम्विदित सिद्ध हो गया कि ज्ञानादिक आत्माके स्वभाव है चेतन होनेसे, जैसे कि अनुभव। अनुभव चेतनरूप है अतएव अनुभवको आत्माका स्वभाव माना है। इसी प्रकार ज्ञानादिक भी चेतनरूप हैं। अतएव ये भी आत्माके स्वभाव हैं। इस तरह जब ज्ञानादिक आत्माके स्वभाव बन गए तब यह कहना कि चैतन्यमात्रमे अवस्थान होना मोक्ष है याने ज्ञानादिक विशेषोसे रहित केवल चैतन्यमात्रमें ठहरना इसका नाम मोक्ष है, सो यह बात युक्त नही बनती, क्योंकि ज्ञानादिक विशेषोसे रहित चैतन्यमात्र कुछ वस्तु ही नही है। तब अनन्तज्ञान आदिक जो चैतन्य विशेष हैं उनमें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है, यह बात सिद्ध होती है।

बुद्ध्यादि गुणोच्छेदरूप मुक्तिस्वरूपके मन्तव्यकी मीमासा—अब इस प्रकरणको सुनकर वैशेषिक और नैयायिक सिद्धान्तके अनुयायी कहते हैं कि बात ठीक ही कही गई कि चैतन्यमात्रमें अवस्थान होनेका नाम मोक्ष नही है। बात यह है कि बुद्धि आदिक जितने भी विशेष गुण हैं जब उनका उच्छेद हो जाय तब आत्मस्वभावमें अवस्थान होनेका नाम मुक्ति है। न तो वहाँ चैतन्यमात्र कुछ है और न अनन्त ज्ञानादिक चैतन्यविशेष कुछ है। समग्र गुणोका विनाश हो जानेसे जो आत्मस्वरूपमें अव-

स्थान होता है उसका नाम मोक्ष है। सो उत्तरमें कहते हैं कि यह मन्तव्य तो स्पष्ट बाधित है। इस विषयमें पहिले भी खूब वर्णन किया जा चुका है और जब कि आत्मा अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप है और इसीसे यह सिद्ध होता है कि आत्माके स्वरूपकी उपलब्धिका नाम मुक्ति है और वह उपलब्धि है अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनंद, अनन्त शक्तिरूपमें। सब गुणोंके उच्छेदका नाम मुक्ति नहीं है किन्तु गुणोंके शुद्ध पूर्ण विकासका नाम मुक्ति है।

विरुद्धधर्माधिकरणत्व हेतुसे ज्ञानादिकको आत्मासे भिन्न बताकर आत्माके ज्ञानस्वभावताकी सिद्धिका शंकाकार द्वारा कथन—अब यहाँ योग और वैशेषिक कहते हैं कि बुद्धि आदिक आत्माके स्वरूप ही नहीं है, फिर उनके विकासका नाम मोक्ष है यह कथन कैसे युक्त हो सकता है? देखिये—अनुमान प्रयोगसे यह बात सिद्ध है कि बुद्धि आदिक आत्माके स्वरूप नहीं है क्योंकि आत्मासे भिन्न होनेसे। जैसे घट पट आदिक पदार्थ ये एक दूसरेसे भिन्न हैं तो घटका स्वरूप पट नहीं है, पटका स्वरूप घट नहीं है, इसी प्रकार बुद्धि आदिक गुण भी आत्मासे भिन्न हैं अतएव बुद्धि आदिक पुरुषके स्वरूप नहीं हैं। ये ज्ञानादिक पुरुषसे भिन्न हैं यह बात भी अनुमान प्रमाणसे सिद्ध होती है। अनुमान प्रयोग है कि ज्ञानादिक गुण आत्मासे भिन्न है, क्योंकि आत्मासे विरुद्ध धर्मका आधार होनेसे, घट पट आदिककी तरह। जैसे घटका धर्म है मिट्टीपन, पटका धर्म है तंतुवोंसे जैसा निर्माण हुआ है ऐसा पटत्व धर्म सो घटसे विरुद्ध धर्म है ना पटमें। तो घट और पट ये दोनों परस्पर भिन्न हैं, इस ही प्रकार आत्माका स्वरूप तो है उत्पादविनाश न होनेका, अनुत्पन्न अविनाशीपना रहनेका और बुद्धि आदिक गुणोंका धर्म है उत्पादविनाश धर्म वाला होना, तब ये विरुद्ध धर्मके अधिकरण हैं ना। अतएव सिद्ध है कि ज्ञानादिक गुणोंमें आत्मासे विरुद्ध धर्मोंकी अधिकरणता है और इस कारण ज्ञानादिक गुण आत्मासे भिन्न हैं।

शंकाकार द्वारा प्रस्तुत विरुद्धधर्माधिकरणत्व हेतुकी व्यभिचारिता बताकर कथंचित् विरुद्ध धर्माधिकरणत्व होनेपर भी भिन्नवस्तुत्वकी सिद्धिका अनियमन—उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि उक्त कथन अयुक्त है। विरुद्ध धर्मोंका अधिकरणपना होनेपर भी सर्वथा भेद सिद्ध नहीं होता। जैसे कि मेचक ज्ञान और मेचक ज्ञानके विभिन्न आकार। मेचक ज्ञान उसे कहते हैं कि समस्त पदार्थोंको एक साथ जाननेके कारण जो ज्ञानका एक मिश्र स्वरूप हुआ, सारे पदार्थ प्रतिबिम्बित होनेसे जैसे यहाँ मेचक ज्ञानमें एकपना मानते हैं तो है एक और उसमें जिन आकारोंकी प्रतिबिम्बितता हुई है या इस मेचक ज्ञानकी जो व्यक्तियाँ बनी हैं वे हैं अनेक, जैसे नील पीत आदिक पदार्थ प्रतिभासमें आये तो मेचक ज्ञान एक है और उस ज्ञानके आकार अनेक हैं। तो इसमें विरुद्ध धर्मकी अधिकरणता बन गयी ना। मेचक ज्ञानमें एकत्व धर्म है और ज्ञानाकारमें अनेकत्व धर्म है, सो विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना

मेचक ज्ञान तो है पृथक् चीज और शक्तियाँ जो कि अनेकत्व धर्मके आधारभूत हैं वे हैं पृथक्। तब एक वस्तुमें विरुद्ध धर्मकी उपलब्धि कैसे हुई, और जब एक वस्तुमें विरुद्ध धर्म नहीं पाये गए तो भिन्नत्व साध्यमें प्रयुक्त धर्माधिकरणत्व हेतुको दोष देना और दोष देकर फिर यह सिद्ध करना कि आत्माके अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप हैं, यह कैसे युक्त हो सकता है ? इस प्रश्न पर उत्तरमें पूछते हैं कि यदि उस मेचक ज्ञानमें अनेक शक्तियाँ मेचक ज्ञानसे पृथक हैं तो वे अनेक शक्तियाँ इस मेचक ज्ञानकी हैं ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है ? मेचक ज्ञानका अर्थ है चित्रज्ञान याने ऐसा ज्ञान जिसमें विभिन्न अनेक पदार्थ एक साथ प्रतिबिम्बित होते हैं और वे चित्रविचित्र रूपवाले ज्ञान बन जाते हैं, ऐसे चित्रज्ञानका नाम है मेचक ज्ञान। अब मेचक ज्ञानमें जो अनेक पदार्थोंको एक साथ ग्रहण करनेकी बात बन रही है उस सम्बन्धमें पूछा जा रहा है कि जब वे अनेक शक्तियाँ जिनके द्वारा यह मेचक ज्ञान समस्त पदार्थोंको प्रतिबिम्बित कर रहा था वह है भिन्न तो अब यहाँ यह कैसे कहा जायगा कि ये अनेक शक्तियाँ इस मेचक ज्ञानकी हैं क्योंकि अब वे अनेक शक्तियाँ तो मेचक ज्ञानसे पृथक् हैं, जैसे कि घट पट आदिक अनेक पदार्थ मेचक ज्ञानसे पृथक् हैं ना, तो उनमें यह तो नहीं कहा जा सकता कि इस ज्ञानके ये घट पट आदिक पदार्थ हैं, उनमें कोई सम्बन्ध ही नहीं, भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। तो इस ही प्रकार जब मेचक ज्ञानकी अनेक शक्तियाँ उस ज्ञानसे भिन्न मान ली गई तो वे अनेक शक्तियाँ इस चित्रज्ञानकी हैं यह कैसे कहा जा सकेगा ?

अनेक शक्तियोंका मेचकज्ञान सम्बन्धित्व सिद्ध किये जानेकी अशक्यता की नौबत—शंकाकार कहता है कि ये शक्तियाँ मेचक ज्ञानकी हैं यह बात समवाय सम्बन्धसे कही जायगी। मेचक ज्ञानका इन शक्तियोंके साथ है समवाय सम्बन्ध इस कारण यह कहा जा सकता है कि ये अनेक शक्तियाँ मेचक ज्ञानमें हैं। इसपर उत्तरमें पूछते हैं कि अनेक शक्तियोंके साथ जो मेचक ज्ञानका सम्बन्ध माना जा रहा है तो जो इस मेचक ज्ञानका अनेक शक्तियोंके साथ जो समवाय सम्बन्ध बनाया जा रहा है सो वह क्या एक रूपसे बनाया जा रहा है या अनेक रूपसे बनाया जा रहा है ? यदि कहो कि मेचक ज्ञानका अनेक शक्तियोंके साथ समवाय सम्बन्ध एक रूपसे बनाया जा रहा है तब तो वह मेचक ज्ञान अनेक रूप कैसे कहा जा सकता है। जब एक रूपसे अथवा अनेक शक्तियोंके साथ चित्रज्ञानका सम्बन्ध है तो एकरूपसे है ना, तब मेचक ज्ञान अनेक रूप कैसे हो जायगा ? यदि कहो कि चित्रज्ञान सम्बन्धी जो अनेक रूप हैं अर्थात् अनेक विभिन्न पदार्थोंको ग्रहण करनेसे चित्रज्ञानमें जो अनेकाकारता आयी है वह अनेक रूप भी उस चित्रज्ञानसे भिन्न है इस कारण चित्रज्ञान एक ही कहलायेगा। यदि ऐसा कहते हो तब फिर यह भी बताओ कि अनेक रूप चित्रज्ञानका है यह कैसे व्यपदेश किया जा सकता है ? जब वह अनेक रूप भी चित्रज्ञानसे पृथक् मान लिया गया तो वह अनेक रूप चित्रज्ञानका है ऐसा कैसे कहा जायगा ? और, जब न कहा जायगा तो चित्रज्ञान ही क्या रहा ? चित्रज्ञान तो तब कहलाता है जब कोई ज्ञान नाना

आकारोंमे प्रतिबिम्बित होता हो। अब ये अनेक रूप भी चित्रज्ञानके न माने जायें तो चित्रज्ञानका अर्थ ही क्या रहा ? और, माना जाता है तो किस तरह माना जायगा ? क्योंकि अब ये अनेक रूप भी चित्रज्ञानसे पृथक् मान लिए गए। यदि कहो कि यह भी सम्बन्धसे मान लिया जायगा याने चित्रज्ञानमें जो अनेकरूपता है वह भी समवाय सम्बन्धसे है तब तो इसमें वही दोष लगेगा जिस दोषकी चर्चा की जा रही है और फिर उसमे विकल्प उठाते जायें, कभी समाधान ही नहीं हो सकता। इस कारण अनेक शक्तियोंके साथ मेचक ज्ञानका समवाय सम्बन्ध एक रूपसे होता है यह तो नहीं कह सकते।

एक ही रूपसे अनेक शक्तियोका मेचकज्ञानसे सम्बन्ध माननेमें दोषापत्ति—अब यदि यह मानोगे कि अनेक शक्तियोंके साथ मेचक ज्ञान एक ही रूपसे सम्बन्धित होता है तब तो फिर मेचक ज्ञानका अनेक विशेषणत्व कहना विरुद्ध है। अर्थात् यह मेचक ज्ञान अनेक शक्तियों वाला है, अनेक शक्तियोंसे एक साथ अनेक पदार्थोंका ग्रहण करता है। यह सारा कथन विरुद्ध बन जायगा। देखिये ! पीत पदार्थको ग्रहण करनेकी शक्तिके साथ यह मेचक ज्ञान जिस स्वभावसे सम्बन्धित होता है यदि उस ही स्वभावसे नील आदिक अनेक पदार्थोंको ग्रहण करनेकी शक्तिके साथ मेचक ज्ञान सम्बन्धित होता है तब तो पीतका ग्रहण करने वाला है मेचक ज्ञान यह विशेषण ही रहेगा, किन्तु यह मेचक ज्ञान नील आदिक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला है यह विशेष न बन सकेगा तब तो यह मेचक ज्ञान एक पीत ज्ञान ही हुआ, किन्तु मेचक न रह सका क्योंकि वह तो एक पीले पदार्थको ही ग्रहण कर रहा है, अन्य पदार्थका तो ग्रहण हो ही न हो सका तो अनेक शक्तियोंके साथ मेचक ज्ञानका सम्बन्ध अनेक रूपसे भी न बन सका।

मेचक ज्ञानको एक शक्तिके द्वारा अनेक अर्थोंको ग्रहण करने वाला माननेरूप द्वितीय विकल्पका निराकरण—अब शंकाकार कहता है कि वह मेचक ज्ञान एक शक्तिसे अनेक अर्थोंका ग्रहण करता है ऐसा दूसरा विकल्प मान लीजिए। तो इसपर उत्तर देते हैं कि यदि ऐसा मान लिया जाता है कि मेचक ज्ञान अनेक शक्तियोंके द्वारा अनेक अर्थोंको ग्रहण करता है तो भी यह प्रसंग तो आयगा ही कि मेचक ज्ञान समस्त पदार्थोंको ग्रहण करले। फिर तो कोई असर्वज्ञ न रहेगा। मेचक ज्ञान नील पीत आदिक किसी प्रतिनियत केवल पदार्थको ही ग्रहण नहीं करता किन्तु समस्त पदार्थोंका ग्रहण करने वाला हो जायगा। किस तरह सो सुनो ! जैसे कि पीतको ग्रहण करने वाले शक्तिके द्वारा नील आदिक अनेक पदार्थोंका ग्रहण कर लिया उसी प्रकार उस ही एक पीत ग्रहण करने वाली शक्तिके द्वारा अतीत अनागत वर्तमान समस्त पदार्थोंको ग्रहण करले इसका कैसे निवारण किया जायगा ? और, फिर इस तरह देखिये ! उस एक मेचक ज्ञानके द्वारा विश्वके समस्त अर्थोंका ग्रहण करनेका

प्रसंग आ गया ना, तो यह भी बात नहीं बन सकती कि मेचक ज्ञान एक शक्तिके द्वारा अनेक अर्थोंको ग्रहण करले यह भी विकल्प नहीं बन सकता।

मेचकज्ञानमें अर्थग्राहिता सिद्ध करनेका शंकाकारका अन्तिम कथन और उसका समाधान व निष्कर्ष—अब यहाँ शंकाकार कहता है कि बात यह है कि न तो हम लोग यह मानते हैं कि पीत पदार्थोंको ग्रहण करने वाला मेचक ज्ञान है, और न हम यह मानते हैं कि नीलको ग्रहण करनेकी शक्तिके द्वारा पीत नील आदिक अनेक अर्थोंको ग्रहण करने वाला मेचक ज्ञान है तो फिर क्या माना है? यह माना है कि नील पीत आदिक प्रतिनियत अनेक अर्थोंको ग्रहण करने वाली एक शक्ति के द्वारा अनेक अर्थोंको मेचक ज्ञान ग्रहण करता है। इस चर्चाके उत्तरमें कहते हैं कि तब तो कार्यभेद न रहा। कार्यभेद होता है कारण शक्तिकी भेद व्यवस्थाके हेतुसे। अर्थात् जहाँ कारण शक्तियां भिन्न हैं वहाँ ही तो कार्यका भेद बताया जा सकता है। अब मेचक ज्ञानमें शक्ति तो एक ही मानी, समस्त पदार्थों को ग्रहण करनेके लिये। शक्तियाँ वहाँ अनेक है नहीं। तब कारण शक्तिका भेद न माननेपर घट पट आदिक कार्यभेद कैसे बन जायेंगे? याने इस मेचक ज्ञानने घटको जाना, पटको जाना, इस प्रकारका विभिन्न कार्यभेद बन कैसे जायगा? और, जब कार्यभेद न बना तब सारा विश्व समस्त विश्वरूप हो जायगा, क्योंकि हेतु एक है। अब वहाँ यह निर्णय कैसे हो कि यह घड़ा है यह कपड़ा है तब तो सब कुछ सब रूप हो जायगा। वहाँ कुछ भी भिन्नता न रहेगी। और, जब सब कुछ सब रूप हो जायगा, तब यह कथन करना कि समस्त कार्योंकी उत्पत्तिमें ये सब भिन्न-भिन्न कारण हुआ करते हैं, यह विरुद्ध हो जायगा। योग मतमें जो इसका कथन है कि जितने भी कार्य होते हैं उतने ही कारण हुआ करते हैं। अब यह सिद्धान्त कहाँ रहा? तब इस सिद्धान्तको माननेके लिये यह मानना होगा कि मेचक ज्ञान अनेक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला है और वह नाना शक्त्यात्मक है।

शंकाकारतप्रस्तु विरुद्धधर्माधिकरणत्व हेतुकी मेचकज्ञानके साथ व्यभिचारिता होनेसे भेद सिद्धि करनेमें अक्षमता—शंकाकारके द्वारा माना गया मेचक ज्ञान अनेक अर्थोंको ग्रहण करने वाला और नाना शक्त्यात्मक सिद्ध हुआ है तब देखिये ना कि विरुद्ध धर्मके अधिकरण रूप एक इस मेचक ज्ञानके द्वारा प्रकृत हेतुमें अनैकान्तिक दोष आ ही गया। हेतु है शंकाकारका विरुद्ध धर्मका अधिकरण होनेसे। उसकी मीमांसामें अभी यह बताया था कि विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना अभेदमें भी हो सकता है तब उस प्रसंगमें यह सब विवरण चल रहा है। देखिये—विरुद्ध धर्मका अधिकरण होनेपर यदि भेद ही रहे तो विरुद्ध धर्मका अधिकरणपना मेचक ज्ञानमें आ गया पर शंकाकारने मेचक ज्ञान और ज्ञानाकारविशेषोंमें भेद नहीं माना है। इसी प्रकार ज्ञानादिकका आत्माके साथ भेद एकान्तकी सिद्धि नहीं होती है। और जब आत्माका ज्ञानादिकके साथ भेद सिद्ध न हुआ तो ऐसा कहा जा सकता

है कि आत्मा अनन्तर ज्ञानादिक रूप नहीं होता। आत्मा अनन्त ज्ञानादिक रूप है। और गुण गुणीमे भिन्नताकी शंका तो आगे कारिकामें निराकरण किया जायगा। जब यह कारिका आयगी, एक स्यानेकवृत्तिन, आदिक वहाँ इसका निराकरण किया जायगा तो गुण गुणीमे भेद नही है किन्तु समझनेके लिये उसमे भेद व्यवहार किया जाता है। ज्ञानादिक गुण आत्मासे सर्वथा भिन्न है ऐसा कहा नही जा सकता। तब फिर विशेष गुणोकी निवृत्ति होनेका नाम मुक्ति है यह कैसे युक्त होगा? यहाँ वैशेषिक और नैयायिक बुद्धि आदिक समस्त गुणोके उच्छेद को भी मोक्ष मान रहे है। उसकी असंगतता दिखाई जा रही है। आर्हत उपदेशमे जो अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप के लाभका नाम मोक्ष कहा है उसके विरुद्धमे यह शंका थी कि गुणोका लाभ तो क्या गुणोके उच्छेद होनेको मोक्ष कहते हैं। उसके निराकरणमे यह सिद्ध किया है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। और जब उस ज्ञानस्वभावका शुद्ध विकास होता है तब वह अनन्त ज्ञानादिक स्वरूप बन जाता है, उस हीका नाम मुक्ति है।

मुक्तिमे धर्म अधर्मका अभाव होनेसे व मुक्त आत्माके मनका सयोग न रहनेसे ज्ञानादिगुणोके उच्छेदमे ही मुक्तिकी सिद्धिका योग द्वारा कथन— अब यहा योग कहते हैं कि देखिये – धर्म और अधर्मकी, पुण्य और पापकी पूर्णतया निवृत्ति मुक्तिमें मानी ही जानी चाहिए जिस आत्माकी मुक्ति हुई है उस आत्माके धर्म अधर्म रच मात्र भी नही रहते, यह तो मानना ही पडेगा, अन्यथा अर्थात् मुक्तिमें भी धर्म और अधर्मका सद्भाव माना जाय तो मुक्ति बन ही नही सकती क्योकि धर्म अधर्म याने पुण्य पाप मुक्तिमे माननेसे वहा पुण्य पापका फल भी होगा और उससे पुण्य पाप फिर बँधेंगे तब मुक्ति कहाँ रही? वह तो ससार ही रहा। तो इतना तो अवश्य करके मानना ही पडेगा कि मुक्तिमें धर्म और अधर्मकी पूर्णरूपसे निवृत्ति होती है। और जब धर्म अधमकी निवृत्ति हो गई तो उनका फल जो ज्ञानादिक हैं उनकी भी निवृत्ति अवश्य होगी ही। क्योकि निमित्तके हटनेपर नैमित्तिककी कभी उत्पत्ति नही होती। ज्ञानादिक उत्पन्न होनेका निमित्त है धर्म और अधर्म। जब धर्म और अधर्म ही न रहे तो ज्ञानादिक गुण कैसे ठहर सकते हैं? और भी समझिये! मुक्त जो आत्मा हो गया है उसके अब अन्त करणका सयोग नहीं रहा मन और आत्माका वियोग हो जानेसे ही तो मुक्ति होती है। क्या मुक्त आत्माके साथ भी मन लगा रह सकता है? इसे कोई नहीं मान सकता। आत्मामें जब तक मनका ससर्ग है तब तक तो उसका ससार ही है। तो अत करणके वियोग हो जानेका नाम मुक्ति है। मुक्त आत्मामें मनका सयोग नही रहा। जब मनका सयोग नहीं है तो अत करण और आत्माके सयोगसे ही तो ज्ञानादिक कार्य उत्पन्न होते थे। अब वे ज्ञानादिक कार्य किसी भी प्रकार उत्पन्न नही हो सकते। इस तरह जब मुक्त जीवमे धर्म अधर्म है नहीं और मन और आत्माका सयोग है नहीं तो बुद्धि आदिक भी न होगे, फिर तो समस्त विशेष गुणोकी निवृत्ति मुक्तिमे सिद्ध होती ही है। ऐसी योग

सिद्धान्तके अनुसार शका की जा रही है।

मुक्तिमे कथचित् गुणोच्छेद व कथचित् गुणानिवृत्तिके प्रतिपादन द्वारा उक्त शकाका समाधान—अब उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि देखिये! यदि ऐसी बुद्धि आदिक भी मुक्तिमें हो जाना बताया जा रहा है जो कि पुण्य पापके कारण बनते हैं अथवा आत्मा और मनके सयोगमे बनते हैं तो ऐसी बुद्धि आदिकके हो जानेका हम निवारण नही कर सकते यह सही बात है, किन्तु जो कर्मके उदय उपशम क्षयोपशमसे उत्पन्न हुई बात है वह तो विनाशीक है, नैमित्तिक है। यों ही आत्मा और मनके सयोगके समय इस सयोगके कारण जो भाव उत्पन्न होते हैं वे भी विनाशीक हैं। उनकी तो मुक्तिमें निवृत्ति है इसका तो निराकरण नहीं किया जा रहा है। अदृष्ट हेतुक बुद्धि आदिकका मुक्तिमें न होनेका निवारण नही करते परन्तु जो कर्म क्षयके कारण उत्पन्न हुए हैं ऐसे आनन्द शान्ति अनन्तज्ञान इनकी निवृत्तिको यदि कोई कहे तो वे विवेकहीन हैं, उनकी बुद्धि काबूमे नहीं है। कर्मक्षयके कारणसे उत्पन्न होने वाले ज्ञानादिककी निवृत्ति मानना प्रमाणसे विरुद्ध है। इस सम्बन्धमे यह प्रयोग किया जा सकता है कि मुक्त आत्मा गुणवान है, आत्मत्व होनेसे मुक्त आत्मा की तरह। सो गुणोंका निराकरण नही किया जा सकता है। हाँ जो गुण ऐसे हैं जो औदयिक हैं कर्मोंके उदय क्षयोपशम आदिकसे हुए हैं उनकी निवृत्ति तो स्वीकार की ही गई है। तब इस प्रकार कथचित् तो बुद्धि आदिक विशेष गुणोकी निवृत्ति मुक्ति में है और कथचित् बुद्धि आदिक विशेष गुणोंकी मुक्तिमे निवृत्ति नहीं है, यह सिद्ध होता है। जो निरुपाधि स्वाभाविक गुण हैं उनकी निवृत्ति मुक्तिमें नही है ? जो औपाधिक विनाशीक गुण प्रकट हुए हैं उनकी मुक्तिमें निवृत्ति है।

कथचित् गुणनिवृत्ति व कथचित् गुणानिवृत्तिकी आगम प्रमाणसे भी प्रसिद्धिता—गुणोंकी कथचित् निवृत्ति और अनिवृत्ति माननेमें सिद्धान्तसे कोई विरोध नही है। तत्त्वार्थ महाशास्त्रमे कहा गया है कि "बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष" बधके कारणोका अभाव होनेसे कर्मोंके छूट जानेका नाम अलग हो जानेका नाम मोक्ष है। इसी प्रकरणमे वहाँ खुलासा किया गया है दो सूत्र देकर एकतो सूत्र है "औपशमिकादिभव्यत्वाना च"—और दूसरा सूत्र है "अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्य" इन दोनो सूत्रोंका भाव यह है कि मुक्त अवस्थामें औपशमिक आदिक भावोका और भव्यत्व भावका तो अभाव होता है अर्थात् निवृत्ति हो जाती है, पर केवल ज्ञान, सम्यक्त्व, केवल दर्शन सिद्धत्व, इन गुणोकी निवृत्ति नहीं होती। इन स्वाभाविक गुणोंके अतिरिक्त अन्य जो औपाधिक भाव हैं उनकी निवृत्ति हो जाती है। इस आगम वाक्यसे यह सिद्ध होता है कि मुक्तमें ज्ञानादिक गुणोंकी कथचित् निवृत्ति है और कथंचित् अनिवृत्ति है। जो औपाधिक गुण हैं उनकी तो निवृत्ति हो जाती है किन्तु जो स्वाभाविक हैं उनकी निवृत्ति नहीं होती। इन औप-

शमिक आदिक भावोमे क्या क्या आया, जिनकी निवृत्ति मानी है ? औपशमिक, औदयिक और अशुद्ध परिणामिकभाव । अभव्यत्व तो पहिलेसे ही न था जो, मुक्त हुए हैं उन आत्माओंमे । अब भव्यत्वभाव और दस प्राणोंपर जीवनेरूप जीवत्वभाव इनका अभाव हो जाता है। तो जैसे औपशमिक सम्यग्दर्शन, क्षायोपशमिक ज्ञानोपयोग और औदयिक कषाय आदिक भाव इनका मोक्ष अवस्थामे सद्भाव नहीं है और पारिणामिक भावमेंसे भव्यत्व भावका भी सद्भाव नही है । भव्यत्वभाव उसे कहते हैं जो अप्रकट रत्नत्रय है उसके प्रकट होनेकी योग्यता रूप फल होना सो भव्यत्व है । जब रत्नत्रय पूर्णतया प्रकट हो चुका मोक्ष हो गया तो भव्यत्वभाव पक गया, अब नही रहा । जैसे किसी चौथी क्लासमें पढने वाले बालकको कहा जाय कि यह चौथी क्लासके योग्य है तो ठीक है । जब चौथी क्लास अच्छे नम्बरसे पास कर चुके तब तो उसे यो न कहा जायगा कि यह चौथी क्लासके योग्य है । ऐसे ही रत्नत्रयके प्रकट होनेके योग्यको भव्यत्वभाव कहते है । जहाँ रत्नत्रय प्रकट हो चुका वहाँ भव्यत्वभावका व्यपदेश नहीं किया जा सकता है यह बात तो निवृत्तिकी बतायी । अब दूसरे सूत्रमे तुरन्त ही यह बात बता रहे है कि केवल ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, सिद्धत्व उनके सिवाय अन्यकी निवृत्ति है । अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन, सिद्धत्वभाव और क्षायिक सम्यक्त्व इनकी निवृत्ति मुक्तिमे नही होती ऐसा आगममे भी कहा गया है । अतः विशेष गुणोंके उच्छेदका नाम मुक्ति नही है । यहाँ कोई यदि यो शका करे कि फिर अनन्त सुखका सद्भाव मुक्तमे कसे सिद्ध होगा ? तो उत्तर यह है कि इस ही सूत्रमें सिद्धत्व शब्द भी तो दिया है । सिद्ध हो गए प्रभु । तो जहाँ समस्त दु खोकी निवृत्ति है पूर्णतया वही तो भगवानका सिद्धपना है और जो सिद्धपना है, सकल दु खोकी निवृत्ति है वही अनन्त आनन्द है । तो आनन्दकी भी निवृत्ति नही है मगर सासारिक सुखोकी निवृत्ति भी मुक्तिमें मानी गई है । तो इससे यह सिद्ध हुआ कि औपाधिक गुणोंके उच्छेदका नाम मुक्ति है और स्वाभाविक गुणोंके पूर्ण विकासका नाम मुक्ति है ।

ज्ञानरहित आनन्दाभिव्यक्तिरूप मोक्षस्वरूपकी मीमासा--अब वेदान्ती कहते हैं कि मुक्तिका स्वरूप मात्र अनन्त सुख ही है, ज्ञानादिक नही है और इसके मोक्षका लक्षण यह बना—आनन्दमात्र एक स्वभावकी अभिव्यक्ति होनेको मोक्ष कहते हैं । इस शकाके समाधानमे कहते हैं कि यद्यपि आनन्दस्वभावकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष हैं, इसमें बाधा नही है किन्तु मात्र आनन्दकी ही अभिव्यक्ति हुई, ज्ञान स्वभावकी अभिव्यक्ति नही है ऐसी आनन्दकी अभिव्यक्तिको मोक्षस्वरूप माननेमे युक्ति और आगमसे बाधा आती है । भला मात्र आनन्दस्वरूपकी व्यक्तिको मोक्ष मानने वाले बतायें कि यह अनन्त सुख जो मुक्तिमें बताया गया है वह सम्वेद्यमात्र वाला है या असम्वेद्य स्वभाव वाला है याने वह सुख जो मुक्तिमें मिला वह वहाँ ज्ञेयस्वभाव है अथवा अज्ञेय स्वभाव है, उस सुखका वे अपने आप सम्वेदन कर पाते

हैं अथवा वे उस सुखका सम्वेदन नहीं करते हैं ? यदि कहा जाय कि वह सुख असम्वेद्यस्वभाव है, तो अनन्त सुखका सम्वेदन करनेके लिए अनन्त सम्वेदनकी सिद्धि होती ही है। जब विषयरूप सुख अनन्त है तो सुखको विषय करने वाला, अनुभवने वाला उस सुखका सम्वेदन भी अनन्त है। यदि प्रभुमें सम्वेदन न हो तो अनन्त सुख सम्वेदन बन ही नहीं सकता। जब मुक्तिमें सुखका सम्वेदन माना है तो वह अनन्त सुख है, तो अनन्त ही सम्वेदन बना। सुख तो हो अनन्त और सम्वेदन अनन्त न हो तो वह सुख सम्वेद्य नहीं हो सकता। यदि यह विकल्प कहोगे कि मुक्तात्माओंको वह अनन्त सुख असम्वेद्य ही है ज्ञेयस्वभाव नहीं, ज्ञानमें आता नहीं। तो जब सुख असम्वेद्य है तो सुख नाम किसका रहा ? आत्माका सम्वेदन होनेमें ही तो सुखपनेको प्रतीति की जाया करती है। जब सम्वेदन ही नहीं, सुख सम्वेदन ही नहीं, ज्ञानमें आता ही नहीं तो सुखकी मुद्रा और क्या होगी ?

वाह्यार्थके अभावसे परमात्माके सवेदनका अभाव माननेके मन्तव्य की मीमासा—अब यहां वेदान्तवादी कहते हैं कि परमात्माके अनन्त सुखका सम्वेदन माना ही है। केवल बाह्य पदार्थोंका ज्ञान हम मुक्त आत्माके नहीं मानते हैं। मुक्तात्माके सम्वेदन तो है, जिसके कारण वे अपने अनन्त सुखका अनुभव कर सकते, किन्तु लोकालोकवर्ती बाह्य पदार्थोंका ज्ञान भी मुक्त आत्माके हो जाय ऐसा हम नहीं मानते। इस शकापर उनसे पूछा जा रहा अथवा इस प्रकारसे यह विचार करना चाहिए कि यह बताओ कि उस मुक्त आत्माके जो बाह्य पदार्थोंके सम्वेदनका अभाव माना जा रहा है तो क्या बाह्य पदार्थोंके अभाव होनेसे बाह्य पदार्थोंके ज्ञानका अभाव माना जा रहा है या इन्द्रियके विनाश हो जानेसे बाह्यपदार्थोंके ज्ञानका अभाव माना जा रहा है ? इन दो विकल्पोंमेंसे यदि यह कहो कि बाह्यपदार्थोंका अभाव होनेसे मुक्त आत्माके बाह्य अर्थसम्वेदनका अभाव कहा गया है। जैसे कि अद्वैतवादकी प्रकृति है। जब केवल अद्वैत ही पदार्थ है, बाह्य कुछ द्वैत है ही नहीं तो बाह्यपदार्थोंका सम्वेदन भी क्या होगा ? यदि यह पक्ष रख लेते हैं तब तो मुक्त आत्माके सुखका भी सम्वेदन नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि सुख तत्त्व भी तो बाह्य पदार्थोंकी तरह असत् हो जायगा। अर्थात् जिस तरह पुरुषाद्वैतवादमें बाह्यपदार्थोंका अभाव मान लिया गया है उसी प्रकार सुखका भी अभाव मानना चाहिए। क्योंकि यदि सुख नामक कोई पदार्थ माना जाता है तो द्वैतका प्रसग आ गया। लो पुरुष हुआ और सुख हुआ। और सुखके सम्वेदनके लायक सम्वेदन भी माना तब वहाँ द्वैत प्रसग आता है। सुखके माननेपर भी जो द्वैत मानते हो, सुख मानते हो फिर समस्त बाह्य अर्थ भी मान लेने चाहिएँ क्योंकि जिस प्रकार ज्ञानमें सुख सम्वेद्य होता है उसी प्रकार ज्ञानमें इन सब बाह्य पदार्थोंका भी सम्वेदन हो रहा है।

इन्द्रियके अपायसे वाह्यार्थका सवेदन न माननेके मन्तव्यकी मीमासा

और अतीन्द्रियज्ञान परमात्माके बाह्यार्थ व अनन्त आनन्दके संवेदनका निष्कर्ष—अब यदि यह द्वितीय पक्ष स्वीकार करते हो कि मुक्त आत्माके इन्द्रियका विनाश होनेसे बाह्यअर्थका सम्वेदन नहीं होता है। जैसे कि द्वैतवादका आश्रय करने वाले भाट्ट आदिक दार्शनिकोंका सिद्धान्त है कि मुक्त आत्माके इन्द्रियके अपाय होनेसे, बाह्य अर्थोंका अभाव है। तो यह विकल्प भी असंगत है, क्योंकि जिस हेतुसे तुम बाह्य अर्थोंका असम्वेदन मान रहे हो उस ही हेतुसे अर्थात् इन्द्रियके उपायसे ही सुख सम्वेदनके अभावका भी प्रसंग आ जायगा। अब यहाँ शंकाकार कहता है कि मुक्त आत्माके अंत करणका तो अभाव है। मनका संयोग तो रहा नहीं, तब उनके अतीन्द्रिय ज्ञानसे ही सुखका सम्वेदन होता है। अतएव सुख सम्वेदनके अभावका प्रसंग नहीं आता। तो उत्तरमें कहते हैं कि फिर इस ही प्रकार तो बाह्य अर्थका भी सम्वेदन मुक्त आत्माके होता है यह मानना चाहिये। जैसे कि अतीन्द्रिय सम्वेदनसे मुक्त आत्मा के सुखका सम्वेदन होता है ठीक ऐसे ही अतीन्द्रियज्ञानसे ही बाह्य अर्थका सम्वेदन होता है। क्योंकि सुख सम्वेदनमें संवेदनत्वके नाते अविशेषता है। अर्थात् सम्वेदन यह भी है सम्वेदन यह भी है। तो जैसे अतीन्द्रिय संवेदनसे सुखका सम्वेदन होता है, वैसे ही बाह्य अर्थ भी सम्वेदनमें आया मानना चाहिए। यहाँ माना जा रहा है कि अतीन्द्रिय ज्ञानसे सुख सम्वेदन होता है तो ऐसे बाह्य अर्थका भी सम्वेदन अतीन्द्रिय ज्ञानसे होता है यह मान लेना चाहिए। तो यों अनर्हत सिद्धान्तमें मुक्तिका स्वरूप नहीं बनता केवल आनन्दस्वरूपकी अभिव्यक्तिका नाम मोक्ष है यह भी न बना। उस आनन्दस्वभावकी अभिव्यक्तिके साथ ही ज्ञानस्वभावकी भी अभिव्यक्ति माननी होगी तब यही तो निष्कर्ष निकला कि अनन्त ज्ञानादि स्वरूपमें आत्माके अवस्थान होनेका नाम मोक्ष है।

चित्तसंततिच्छेदरूप मुक्तिस्वरूपकी न्यायागम विरुद्धता—अब जो कोई भी दार्शनिक निरास्रव-चित्त संतानकी उत्पत्तिका नाम मोक्ष मानते हैं जैसा कि क्षणिकवादमें माना गया है तो उनके भी यहा ऐसा परिकल्पित मोक्षतत्त्व युक्ति और आगम से बाधित होता है। प्रदीपके निर्वाणकी तरह और उसे जैसे कि शान्ति निर्वाण माना है उसकी तरह यह युक्ति और आगमसे बाधित होता है। देखिये ! सो जितने भी ज्ञान हैं वे सब सान्वय हैं, अपना अन्वय रखते हैं। उन सब ज्ञान परिणतियो का आधारभूत जो एक शाश्वत स्वभाव है वह अन्वय रूपसे रहता है। तब संतानके उच्छेदकी उपपत्ति हीं नहीं हो सकती। निरन्वय क्षणिक एकान्तके आगमसे भी मोक्ष के माननेमें भी बाधा आती है यह बात स्वयं इस ग्रन्थमें भी कहेंगे। मोटेरूपसे यहाँ इतना मान लेना चाहिए कि कोई भी वस्तु जो भी सद्भूत है उसका निरन्वय विनाश नहीं होता न किसी असत्की उत्पत्ति होती है और न किसी सत्का समूल विनाश हो सकता है। अन्यथा कुछ युक्तिसे सिद्ध करके बताये कोई ! जो कुछ है ही नहीं, असत् है, अभावरूप है वह आ कहाँसे जायगा ? कुछ है, उसीका तो रूपान्तर बना करता है,

कुछ वस्तु अव्यक्त रूपसे भी सत् हैं और कोई व्यक्त रूपसे आ जाते हैं यह भी सम्भव है लेकिन किसी भी रूपमें कुछ भी न हो और एकदम बात बने यह नहीं हो सकता। और जब ऐसा हो नहीं सकता तब क्षणिकता सिद्ध हो ही नहीं सकती। क्षणिकता माननेके लिए न तो पूर्वसतान माना जा सकेगा, न उत्तरसन्तान माना जा सकेगा। जब पूर्वसंतान नहीं मानो तो उसका अर्थ यह हुआ कि असत्की उत्पत्ति हुई। सो किसी भी प्रकार सिद्धि नहीं हो सकती। और जब उत्तरसन्तान नहीं माना तो इसका अर्थ हुआ कि समूल नाश हो गया। पर ऐसा नहीं है। यो सिद्ध करनेके लिए जो क्षणिकवादमें दीपकका दृष्टान्त दिया है वह भी युक्तिसगत नहीं है। जैसे तेलयुक्त दीपक जला और वायुके वेगसे वह दीपक बुझ गया तो बुझ जानेपर पुद्गलके रूपमें किसी परमाणुके रूपमें वह अब भी रहा। और जो तेल जल रहा था अब नहीं जल रहा तो वह तेल भी रहा है और जो प्रकाशरूप परमाणु थे वे अब अन्धकाररूप हो गए। स्कन्धोंका समूल नाश तो यहाँ भी नहीं होता। सो जब निरन्वय नाश कभी भी किसी का है ही नहीं तो ज्ञानका जो अन्वय है, ज्ञानस्वभाव है, ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व है उसकी सतानका उच्छेद हो जाय, यह कभी भी नहीं हो सकता। अतः यह भी मोक्ष स्वरूप न बना कि निरास्रव ज्ञानकी सतान बनना अथवा ज्ञानसतति मिट जाना, ज्ञानका सिलसिला टूट जाना अथवा चित्तसतति नष्ट हो जाना सो मोक्ष है।

आर्हत तत्त्वकी युक्तिशास्त्राविरोधिताके प्रतिपादनका प्रकरण—इस कारिकाकी उत्थानिकामें यह प्रश्न किया गया था कि सर्वज्ञ [illegible] हो सकता है, पर यह कैसे निश्चित किया गया कि वह सर्वज्ञ अरहंत प्रभु [illegible] है। उसके उत्तरमें इस कारिकामें यह कहा गया कि विप्रकर्षी पदार्थ किसीके प्रत्यक्ष [illegible]ते ही हैं और जिसके समस्त विप्रकर्षी पदार्थ भी साक्षात् प्रसिद्ध हो रहे हैं ऐसे [illegible] हे अरहंत प्रभु आप ही हो क्योंकि आप निर्दोष हो। आप निर्दोष हो, यह बात यो समझी जा रही है कि आप युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध उपदेश करने वाले हो। तो युक्ति और आगमके अविरुद्ध प्रभुका उपदेश किस प्रकार है इस सम्बन्धमें चार तत्त्वोंकी बात बतायी गई है। जीवको शान्तिके लिये इन चार तत्त्वोका ही ज्ञान अच्छी प्रकार कर लेना पर्याप्त है अतएव यहाँ चार तत्त्वोकी बात कही है। आर्हत शासनमें मोक्ष, मोक्षका कारण संसार और संसारका कारण इन चार बातोंका जिस प्रकार विवरण किया गया है वह न युक्तिसे बाधित होता है और न आगमसे। इस बातकी सिद्धि करनेके बाद जब यह प्रश्न हुआ कि यह कैसे निश्चित किया जाय कि अरहन्तके सिवाय अन्य सर्वोंका भाषण युक्ति और आगमके विरुद्ध है। इस प्रसगको लेकर अभी बताया गया था कि कुछ लोग मोक्षका स्वरूप चैतन्यमात्रमें अवस्थित होना मानते हैं, कुछ लोग मोक्षका स्वरूप केवल आनन्द मात्रकी अभिव्यक्तिको मानते हैं और कोई ज्ञान सतानके उच्छेदका नाम मोक्ष मानते हैं। वह सब न्याय और आगमके विरुद्ध बताया गया है। तो जिस प्रकार अनार्हत मोक्षतत्त्व न्याय और आगमके विरुद्ध कहा गया है

उसी प्रकार अनार्हत मोक्ष कारण तत्त्वका जो कथन है, वह भी न्याय और आगमके विरुद्ध है।

अनार्हत मोक्षकारणतत्त्वकी न्यायागमविरुद्धताका दिग्दर्शन—कोई पुरुष मानते हैं कि विज्ञानमात्रसे ही परममोक्ष होता है। परम मोक्षका अर्थ यह है, कि जिसके बाद फिर कुछ भी और श्रेयोलाभके लिये बाकी नहीं रहता। यहां विज्ञान मात्रसे कहनेका उनका अर्थ यह है कि श्रद्धान और चारित्रसे कुछ सम्बन्ध नहीं। दर्शन और चारित्रसे मोक्ष नहीं किन्तु केवल ज्ञानमात्रसे मोक्ष है। तो यों मोक्षका कारण केवल ज्ञानमात्रको माना है, यह युक्तिसगत नहीं बैठता। क्योंकि जो ज्ञानमात्रको मोक्षका कारण मानते हैं उनके यहां भी जब वे किसीके सर्वज्ञकी अवस्था मानते हैं, समस्त पदार्थोंके साक्षात्कार करनेकी अवस्था मानते हैं उस समय शरीरके साथ आत्मा का अवस्थान है, तब परनिश्रेयस कहां रहा मिथ्याज्ञानकी तरह ? किन्तु जैसे कि मिथ्याज्ञान, मिथ्यामात्र है तो उस विज्ञानमात्रसे परनिश्रेयस तो न रहा और शरीरके साथ अवस्थान है तो यों ही जब तक विज्ञानमात्र है शाकाकारके द्वारा माने गए सर्वज्ञो मे और शरीरके साथ उनका अवस्थान है तभी तो उनको उपदेश किया है। तो अब यह बात कहाँ रही कि ज्ञानमात्र होनेसे परनिश्रेयस हो जाता है। अभी कहाँ हुआ परनिश्रेयस ?

दर्शनचारित्ररहित विज्ञानमात्रसे परनिश्रेयस माननेकी असगतता—यहां यह अनुमान प्रयोग किया गया है कि विज्ञानमात्र परनिश्रेयसका कारण नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट अवस्थामे भी अर्थात् सर्वज्ञताकी अवस्थामे भी आत्मामे तत्त्वज्ञानका, विज्ञानमात्रका शरीरके साथ अवस्थान पाया जाता है मिथ्याज्ञानकी तरह, तो इस अनुमानमे दिया गया हेतु असिद्ध नहीं है, क्योंकि शाकाकाराभिमत कपिल आदिक सर्वज्ञोंके भी स्वय प्रकर्ष पर्याप्त अवस्था प्राप्त होनेपर भी अर्थात् उनका सर्वज्ञत्व और मोक्ष माननेपर भी अभी ज्ञानका शरीरके साथ अवस्थान माना गया है। साक्षात् समस्त अर्थोंके ज्ञानकी उत्पत्तिके बाद यदि शरीर न रहे तो फिर आप्तका यह उपदेश कहाँसे चल सकेगा ? क्योंकि जब शरीर न रहा तो आप्त सर्वज्ञका उपदेश बन जाय यह नहीं हो सकता। जैसे शरीर रहित आकाश क्या कुछ उपदेश कर सकता है ? तो यों ही शरीररहित आप्त क्या कुछ उपदेश कर सकता है ? और उपदेश माना ही है शाकाकारने। तो शाकाकारने जिनको सर्वज्ञ माना है उनका उपदेश भी जरूर है। तो उससे सिद्ध है कि वे अभी तक शरीरमें रहे थे। और, जब विज्ञानमात्र हो जाने पर भी उनके माने गए सर्वज्ञको शरीरसे सहित स्वीकार किया गया है तो इससे सिद्ध है कि विज्ञानमात्रपर निश्रेयसता कारण नहीं हो सकती।

अनुत्पन्नसकलतत्त्वज्ञानके आप्तत्व माननेमे उसके उपदेशमे प्रामाणिकताका अभाव—अब सांख्य कहते हैं कि जिसको समस्त अर्थोंका ज्ञान नहीं

उत्पन्न हुआ है ऐसे आप्तका उपदेश चला करता है। अतएव विज्ञानमात्र परनिःश्रेयस का कारण है इसमें कोई बाधा नहीं आती। जब समस्त ज्ञान उस सर्वज्ञके उत्पन्न हो लेंगे तो परनिश्रेयस हो जायगा। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात तो बिल्कुल ही विरुद्ध है, क्योंकि जिसमें समस्त अर्थोंका ज्ञान नहीं उत्पन्न हुआ ऐसे पुरुष का उपदेश सत्य कैसे हो सकता है। पहिले समस्त अर्थोंका ज्ञान करले तब तो उसका उपदेश सत्य माना जायगा। और जहाँ ही समस्त अर्थोंका ज्ञान उत्पन्न कर लिया गया बस वहाँ विज्ञानमात्र हो जानेसे परनिश्रेयस हो जायगा फिर उपदेशकी परम्परा चल ही न सकेगी और जो शंकाकारके जितने भी आगम और उपदेश हैं वे सब अप्रमाण हो जायेंगे। क्योंकि समस्त अर्थोंका ज्ञान जिसके नहीं हुआ ऐसे आप्तके उपदेशमें अप्रमाणताकी शंका बराबर बनी रहेगी। जैसे कि अन्य अज्ञानी पुरुषोंके उपदेशकी अप्रमाणताकी शंका रहती है ना, तो बतलाओ अन्य अज्ञानी पुरुषोंके उपदेशोंमें अप्रमाणताका संदेह क्यों रहता है यों ही रहता ना, कि उनको समस्त पदार्थोंका ज्ञान नहीं है। और अब मान लिया अपने आप्तको ही ऐसा कि उसके समस्त पदार्थोंका ज्ञान नहीं है और उस आप्तके उपदेश चलते रहते, तो उस उपदेशसे प्रमाणता आ ही नहीं सकती।

गृहीतशरीरनिवृत्तिमें मोक्षस्वरूपका अभाव और शरीरान्तरानुत्पत्ति को मोक्षस्वरूप माननेरूप शंका—अब शंकाकार कहता है कि बात यह है कि अन्य शरीरकी अनुत्पत्तिका नाम निश्रेयस है, किन्तु गृहीत शरीरकी निवृत्तिका नाम निश्रेयस नहीं है। यान अब आगे कोई शरीर उत्पन्न न हो इस निश्चितिका नाम है मोक्ष, परन्तु जो शरीर ग्रहण किया गया था, जो जन्मसे है और जिस सतने आत्मयोग साधनासे निश्रेयसकी प्राप्ति की है तो गृहीत शरीरकी निवृत्ति तो फलोपयोगसे होगी, अतः गृहीतशरीरकी निवृत्तिका नाम निश्रेयस नहीं। वह शरीर जब तक रहे, रहे, पर मोक्ष नाम है इसका कि अन्य शरीर उत्पन्न न हो और शरीरान्तर उत्पन्न न हो, इस प्रकारके लक्षण वाला मोक्षका कारण है साक्षात् सकल तत्त्वका ज्ञान, किन्तु सकल तत्त्वका ज्ञान ग्रहण किए गए शरीरकी निवृत्तिका कारण नहीं है, क्योंकि गृहीत शरीरकी निवृत्ति तो फलके उपभोग करनेसे मानी गई है। ग्रहण किए गए शरीरकी निवृत्तिमें समस्त तत्त्वज्ञान कारण नहीं है, किन्तु गृहीत शरीरकी निवृत्तिमें पूर्वजन्ममें कमाये हुए कर्मोंके फलोंका उपभोग कर लेना कारण है। ऐसा शंकाकारका सिद्धान्त है कि ग्रहण किए गए शरीरकी निवृत्ति तो फल भोगनेसे ही होगी। समस्त कर्मोंका फल भोगा जा चुकनेपर अब वह शरीर छूटेगा। इस कारण पूर्व ग्रहण किए गए शरीरके साथ ठहर भी रहा है तत्त्वज्ञान तो ठहरे, उस तत्त्वज्ञानसे आप्तका उपदेश बन जाया करता है।

उक्त शंका समाधान और जीवनमुक्ति व परनिश्रेयसके स्वरूपका

समर्थन—शङ्काकारके उक्त कथनपर समाधानमें कहते हैं कि तुमने बहुत ठीक कहा कि शरीरके साथ अभी ठहरा हुआ है तत्त्वज्ञान और उससे ही सर्वज्ञका उपदेश बनता है तो यह बात तो स्याद्वादियोंका भी स्वीकार है कि प्रकर्षपर्यन्त अवस्थामें अर्थात् निर्मलता, निर्दोषता, सर्वज्ञता प्रकट हो जानेकी अवस्थामें भी आत्मामें ज्ञानका शरीरके साथ-साथ अवस्थान रहता है। जैसे कि सकल परमात्मा अरहंत कहे गए हैं। उन सकल परमात्माके निश्रेयस, जीवनमुक्ति, कैवल्यकी प्राप्ति हो गई है। केवल एक सर्व प्रकारसे द्रव्यकर्ममुक्ति और शरीरनिवृत्तिकी बात शेष रही है। तो वहाँ शरीर रहता हुआ भी अरहंत भगवानका उपदेश, दिव्यध्वनि बराबर चलती है। सो अब यह सिद्ध हुआ ना, कि तो अब तत्त्वज्ञान मात्र पर निश्रेयसका कारण न रहा। पर [illegible] तो शरीररहित कर्मरहित पूर्णतया निर्दोष आत्मामें स्थित होनेका नाम है, सकल परमात्मा मे परनिश्रेयस नहीं है। शरीर सहित सत्र देवके निश्रेयस है, कैवल्य है, किन्तु परनिश्रेयस नहीं है। जब भावी शरीरकी तरह प्राप्त किया हुआ शरीर भी न रहे तब परनिश्रेयसकी बात कही जाती है याने जैसे शङ्काकारने यह कहा कि आगे शरीर न मिले उसका नाम परनिश्रेयस है तो दोनों ही बातें हुई तो परनिश्रेयस हुआ। अन्य शरीर न मिले और पाया हुआ शरीर भी निवृत्त हो जाय उसको परनिश्रेयस कहा है, सो [illegible] हो जानेपर भी, सर्वज्ञता प्रकट हो जानेपर भी अब निश्रेयसपना तो न हुआ। [illegible] यह सिद्ध है कि केवल विज्ञानमात्र मोक्षका कारण नहीं है, किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंकी एकता मोक्षका कारण है। साक्षात्कार [illegible] वाले सर्वज्ञके सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी पूर्णता तो हो गई लेकिन अभी यो [illegible] शरीरके कारणभूत कर्मका सद्भाव होनेसे अभी परनिश्रेयस नहीं हुआ है। [illegible] ज्ञानकी पूर्णता हो जानेपर भी सम्यक्चारित्रकी पूर्णताके अभावमें जब परनिश्रेयस नहीं है तो आर्हत शासनमें जो यह कहा है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी परिपूर्णता मोक्षका कारण है, यह पूर्ण सत्य है।

फलोपभोगकृतकर्मक्षयसहित तत्त्वज्ञानमात्रको परनिश्रेयसकारण बतानेका प्रसंग व उसका समाधान—सांख्य कहते हैं कि कर्मोपभोग होनेसे जो कर्मक्षय [illegible] है उसकी अपेक्षा रखता हुआ तत्त्वज्ञान परनिश्रेयसका कारण होता है। शु[illegible] जो भी कर्म बाँधा था उन कर्मोंका जब उपभोग होता है उससे बनता है उपार्जित किए हुए कर्मोंका क्षय, उस कर्मक्षयसे सहित तत्त्वज्ञान परनिश्रेयसका कारण है [illegible] कारण तत्त्वज्ञान मात्र, विज्ञानमात्र अनुभवका कारण है, इस बातमें विरोध नहीं माना। समाधानमें कहते हैं कि यह भी बिना विचारे हुए कही हुई बात है। भला [illegible]—जो फलका उपभोग बताया है तत्त्वज्ञानियोंके कर्मक्षयके लिए, सर्वज्ञ भग[illegible] अवशिष्ट कर्मक्षयके लिये जो फलोपभोगकी बात कही है वह फलोपभोगकी बात नहीं है वह फलोपभोग वहाँ उपक्रमसे होता है या बिना उपक्रमके याने कुछ पुरुषार्थ करके बनता है या बिना पुरुषार्थके अपने आप ही होता है। यदि कहो

कि वहाँ फलोपभोग उपक्रमसे होता है तो यह बतलाओ कि वह उपक्रम कैसे हुआ और वह है भी क्या सिवाय तपश्चरणके अतिशयके। जब अतिशयरूपसे तपश्चरण होता है तो उससे प्रकृष्ट निर्जरा होती ही है यह बात मानी ही गई है। और, जब यह सिद्ध हो गया कि तत्त्वज्ञान और तपश्चरणका अतिशय इन कारणोंसे परनिश्रेयस होता है तब भी यह बात तो न रही कि विज्ञानमात्र परनिश्रेयसका कारण है। यह तपका अतिशय भी कारण हुआ।

समाधिबलसे उपात्तकर्मफलोपभोगके उपगमसे उपदेश व्यवस्था व परनिश्रेयसव्यवस्था माननेकी मीमांसा—अब सांख्य कहते हैं कि समाधि विशेष से समस्त कर्मोंके फलका उपभोग मान लिया गया है इस कारण यह दोष न आयगा। सिर्फ तत्त्वज्ञान व तपोतिशयके हेतुसे नहीं है मोक्ष यह तो हुआ ही है ज्ञानके कारण, किन्तु कैसे ज्ञानसे, सो इसपर कुछ विवेक करना होगा। यथा, कि यह तत्त्वज्ञान स्थिरीभूत हो जाय बस यह परनिश्रेयसका कारण है और यही है समाधि विशेष। सो जब समाधिविशेष होता है तब समस्त कर्मोंका फल क्षणमात्रमें ही भोग लिया जाता है। और, फिर परनिश्रेयस हो जाता है। ऐसी शंकापर समाधान किया जाता है कि फिर यह बतलाओ कि वह समाधि विशेष है क्या ? यदि कहा कि ज्ञान स्थिरीभूत हो गया इस हीका नाम समाधिविशेष है तो देखो तो सही विडम्बना कि ज्ञान स्थिरीभूत हो गया और स्थिरीभूत ज्ञान होनेपर बन गया परनिश्रेयस, अब स्थिरीभूत ज्ञान होनेपर परनिश्रेयस होनेपर आप्तका उपदेश कैसे हो सकेगा ? फिर तो शंकाकारके सिद्धान्तसे उनके ही आगमकी परम्परा न चल सकेगी। अब सांख्य कहते हैं कि समस्त तत्त्वज्ञानीकी जब अस्थिरताकी अवस्था होती है चलित अवस्था होती है तो वहाँ असमाधि उसके उत्पन्न हो जाती है और उस सकल तत्त्वज्ञानीके असमाधि दशा होनेपर उस योगीके तत्त्वका उपदेश करना युक्त बन ही जाता है। जब वह योगी, सकल तत्त्वज्ञानी असमाधि अवस्थामें है तब वह उपदेश किया करता है। समाधान करते हैं कि यह बात भी युक्त नहीं है क्योंकि जो सकल तत्त्वज्ञानी भगवान है उसके ज्ञानमें अस्थिरता का विरोध है। जो सर्वज्ञ है उसकी अस्थिरता हो ही नहीं सकती। क्योंकि सर्वज्ञता हो और अस्थिरता हो इसमें विरोध है कारण कि सर्वज्ञका तत्त्वज्ञान कभी भी चलित नहीं हो सकती है। वह क्यों नहीं चलित न बन सकेगा क्योंकि सकल तत्त्वज्ञान तो अक्रमसे है। क्रमपूर्वक नहीं होता। जो क्रमपूर्वक ज्ञान बने उनमें तो चलितपना सम्भव है, पर जो एक साथ ही समस्त विश्वका ज्ञान होता है उसमें चलितपनेका अवसर ही कहाँ है ? और वह ज्ञान अक्रमसे होता है यह कैसे सिद्ध है सो सुनो। सर्वज्ञका ज्ञान अक्रमसे होता है क्योंकि अन्य विषयोंमें संचरणका अभाव है। जब सकल तत्त्वज्ञानीने एक ही साथ समस्त तत्त्वोंको जान लिया, जब कोई तत्त्व अज्ञेय रहा ही नहीं तब विषयान्तर ऐसा है ही क्या जो सर्वज्ञके विषयमें न आया हो। तो विषयान्तर ही कुछ नहीं और उसमें फिर ज्ञान चलेगा ही क्या ? तो विषयान्तरमें

सचरणका अभाव होनेसे सकल तत्त्वज्ञान अक्रमसे है यह सिद्ध होता है। सकल तत्त्व-ज्ञान अक्रमसे है इस कारणसे वह ज्ञान कभी चलित नहीं होता। और, जो ज्ञान कभी चलित नहीं हो सकता वह अस्थिर कैसे माना जायगा। अन्यथा अर्थात् सकल तत्त्व-ज्ञान भी विषयान्तरमें चलने लगे अतएव अक्रम हो जाय तो फिर समस्त तत्त्वोंका ज्ञान होना असम्भव है। सर्वज्ञ सकल तत्त्वको जाने भी और फिर अन्य अन्य विषयोंमें लगे भी यह कैसे सम्भव है? जैसे हम लोगोंका ज्ञान विषयान्तरोंमें लग रहा है तो सकल तत्त्वका ज्ञान तो नहीं है। तो प्रभु सकल तत्त्वज्ञानी है तो उसमें अस्थिर अवस्था नहीं आ सकती। फिर उस योगीके तत्त्वोपदेश कैसे होगा? यह शंकाकारके यहाँ प्रसंग ज्योंका त्यों बना रहता है।

तत्त्वोपदेशकालमें सर्वज्ञके ज्ञानको असमाधिरूप व पश्चात् समाधान रूप माननेकी मीमांसा—अब सांख्य कहते हैं कि तत्त्वोपदेशकी दशामें उस योगीका भी ज्ञान शिष्यजनोंके समझानेके लिये व्यापार करता हुआ असमाधिरूप अस्थिर हो जाता है [illegible] पश्चात् जब समस्त व्यापार निवृत्त हो जाता है शिष्यको समझानेके लिये योगीकी [illegible] ष्ट ये ही रही थीं, जब वे सब चेष्टायें निवृत्त हो जाती है तो वह ज्ञान स्थिर हो [illegible] और वह समाधि नामसे पुकारा जाता है। ऐसी आशंकापर समाधान कि [illegible]। ठीक है तब तो [illegible] स [illegible] ही नाम चारित्र रख लीजिए, और यो फिर [illegible] में ही तो फर्क आया। अर्थ और अभिप्रायमें भेद न निकला। जाने तत्त्वज्ञा [illegible] पर भी जब तक समस्त व्यापार दूर नहीं होता। व्यापार बना रहता है तब त [illegible] उपदेश चलता है और जहाँ समस्त व्यापारकी निवृत्ति हुई, परम समाधि [illegible] तो फिर उपदेश नहीं होता सो ठीक है। तत्त्वज्ञानका तो यह फल है कि स [illegible] र [illegible] हो जायें और तत्त्वज्ञानसे जिसका जो चारित्र है उसका लक्षण है परम उपे [illegible] जाय। सो यद्यपि सर्वज्ञ प्रभुमें परम उपेक्षा हो गयी है फिर भी योग की दृष्टि [illegible] कि अभी व्यापार चल रहा है विहार दिव्य ध्वनि उपदेशका व्यापार चल रहा है [illegible] र दिव्य ध्वनि उपदेशका व्यापार चल रहा है अतएव समझिये कि अभी व्युपरत [illegible] निवृत्ति नामका परम शुक्लध्यान नहीं हुआ। उस हीका नाम रख लीजिये [illegible] अतिशय अथवा समाधि। जब तक यह अन्तिम शुक्ल ध्यान नहीं होता, [illegible] ध्यान आत्माका परनिःश्रेयस न होगा और उससे पहिले सर्वज्ञताके पश्चात् [illegible] उपदेश सम्भव है। तब यही बात तो हुई कि जिसमें तत्त्वार्थ श्रद्धान गर्भित है [illegible] चारित्र सहित तत्त्वज्ञान परनिःश्रेयस हुआ अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारि [illegible] एकीभाव परनिःश्रेयसका कारण बना। तो अब न चाहते हुए भी उन सभी दार्श [illegible] को यह बात मानना ही पड़ेगी और ये उनके ही अनेक कथन समाधान प्राप्त [illegible] पश्चात् यह बात सामने आ ही गई कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारि [illegible] एकीभाव परनिःश्रेयसका कारण है तब स्पष्ट हो गया ना, कि सर्वथा एकान्तवादि [illegible] द्वारा माना गया मोक्ष कारण तत्त्व भी न्यायके विरुद्ध है। जैसे कि

अभी यह माना गया था कि विज्ञानमात्र मोक्षका कारण है। मात्रका मतलब है कि श्रद्धान और आचरणसे रहित केवल ज्ञानमात्र हो गया वह मोक्षका कारण है, सो यह बात बन तो न सकी। तो सर्वथा एकान्तवादियोंका यह मोक्ष कारण तत्व कि विज्ञानमात्र ही मोक्षका कारण है यह न्याययुक्तिसे विरुद्ध सिद्ध हो गया।

एकान्तवादाभिमत मोक्षकारणतत्त्वकी आगमविरुद्धता—सर्वथा एकान्तवादियोंका अभिमत मोक्ष कारणतत्व उनके ही खुदके आगमसे विरुद्ध है, क्योंकि सभी दार्शनिकोंके आगममें दीक्षा आदिक क्रियाओंका और भीतर समस्त रागद्वेषादिक दोषोंके उपशम हो जानेको विधान किया गया है। सभीके ग्रन्थोंमें किसी न किसी रूप में यह उपदेश है ही कि वह दीक्षा ले, तपश्चरण करे यही तो बाह्य चारित्र हुआ और रागद्वेषादि समस्त दोषोंका अभाव करे, यही हुआ अन्तरङ्ग चारित्र। तब इन सब आगमोंसे यह दिशा तो सिद्ध हो ही जाती है कि बाह्य चारित्र और आभ्यन्तर चारित्र मोक्षका कारण है, ऐसी ध्वनि सभीके आगममें पाई जाती है। इस कारण एकान्तवादियोंका अभिमत "विज्ञानमात्र मोक्ष कारण है" यह आगमविरुद्ध भी है।

अनार्हत संसारतत्त्वस्वरूपकी भी न्यायागमविरुद्धता—जिस प्रकार मोक्षतत्व और मोक्षका कारणतत्व अनार्हत सिद्धान्तमें न्याय और आगमके विरुद्ध बताया गया है उसी प्रकार अनार्हत सिद्धान्तके अनुसार अभ्युपगत संसार तत्व भी न्याय और आगमके विरुद्ध है। यहाँ इस प्रकारका अनुमान प्रयोग है कि नित्यत्व आदिक एकान्तमें विक्रिया हो नहीं बन सकती अर्थात् अर्थक्रिया परिणति ही नहीं बन सकती। यदि कोई सर्वथा नित्य है अर्थात् उसमें कुछ परिणमन होता ही नहीं है तो उसमें परिणमन तो नहीं हुआ, फिर संसार कैसे बना? संसार तो तब बनता है कि कोई जीव है और उसको सुख दुःख रागद्वेष जन्म मरण आदिक होते रहें। तो जब जन्म मरण राग द्वेष आदिकका नाम संसार है तो वह तो नित्य एकान्त नहीं हो सकता। अनित्य एकान्तमें भी यही बात है। जब सब पदार्थ क्षण-क्षणमें नष्ट होने वाले हैं तो जीव भी क्षण-क्षणमें नया नया बना। अब हुआ, दूसरे क्षण मिट गया। उस जीवका संसार क्या हुआ? तो नित्यत्व आदिक एकान्तमें संसारके स्वरूपकी सिद्धि नहीं बनती। सो अनार्हत सिद्धान्तमें संसार तत्व भी न्यायसे विरुद्ध पड़ता है और इस बातका समर्थन आगे भी करेंगे जिससे यह सिद्ध होगा कि उनके एकान्तमें माने हुए संसार आदिक तत्वोंमें उनके आगमसे भी विरोध आता है और स्वयं ऐसा कहा भी है कि पुरुष न प्रकृति है, न विकृति है, केवल एक अद्वितीय ब्रह्म ही है, ऐसा बोलने वाले पुरुषोंने स्वयं स्वीकार किया है कि पुरुषके संसारका अभाव है। उनके इस प्रसंगमें दो तत्व माने गए हैं—प्रकृति और पुरुष। तो पुरुष न तो विकार करता है, न उसमें कुछ परिणमन होता है। एक अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप माना है तब उसके संसारका सद्भाव कैसे हो सकता है? और फिर उस ही सिद्धान्तमें संसार अगर बना तो गुणोंका संसा

बना क्योंकि प्रकृति भी मूलत पुरुषकी तरह अपरिणामी है। जब सत्व, रज, तम या अहकार आदिक इन गुणोका ही ससार बन सकता है। और, कुछ लोग ऐसे हैं कि जो ससार मानते ही नही। केवल कल्पनासे ससारकी व्यवस्था करते हैं। तो वह कल्पना भी नही बन सकती है। यो किसी भी एकान्तमे जैसे मोक्ष और मोक्ष कारण तत्वकी व्यवस्था न बन सकी इसी प्रकार ससार और ससार कारणतत्वकी भी व्यवस्था नही बनती। तो यहाँ इसमें यह कहा है कि उनके यहाँ ससार तत्वका स्वरूप भी न्याय और आगमके विरुद्ध है जो अनेकान्तवादसे विमुख चलकर एकान्तवादको अगीकार करते हैं।

अनार्हत ससारकारणतत्वके स्वरूपकी भी न्यायागमविरुद्धता—अब कहते हैं कि जिस प्रकार अनाहत सिद्धान्तमें मोक्ष, मोक्ष कारणत्व व ससार तत्व सिद्ध नही हो सकता इसी प्रकार ससारकारण तत्व भी अनेकान्तवादमे विमुख दार्शनिकोके न्याय और आगमसे विरुद्ध पडता है। ससार कारण तत्व माना है एकान्तवादमें मिथ्याज्ञान मात्र। सो देखिये मिथ्याज्ञान मात्रके कारणसे ससार नही होता, क्योकि जिस जीवके मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति हो जाती है न रहा मिथ्याज्ञान फिर भी तदनन्तर मोक्ष नहीं देखा गया, उसके ससारकी निवृत्ति न बननेसे यह सिद्ध होता है कि ससार मिथ्याज्ञान कारणपूर्वक नही है। अनुमान प्रयोग भी है कि जिसकी निवृत्ति होनेपर भी जो निवृत्त नही होता है वह तन्मात्रकारणक नही है। महलके निर्माणमें बढई आदिक बहुतसे काम करने वाले हैं तो बढई आदिककी कभी निवृत्ति हो जाय, वे न रहे तो घर, महल, देवालय आदिक तो निवृत्त नही होते। इससे सिद्ध है कि वे देव गृहादिक तक्षादिमात्रके कारणसे नही हैं। वहाँ जैसे कारीगर बढई आदिक एक निमित्त कारण हुए हैं, अन्य निमित्त भी हैं। तो केवल तक्षादिमात्र कारणक महलो को नही कहा जा सकता। क्योकि उनकी निवृत्ति होनेपर भी महलकी निवृत्ति नही देखी गई। यो ही यहाँ भी परखिये कि मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होनेपर भी ससार निवृत्त होता हुआ नही देखा गया। जीवोको जब तत्वज्ञान उत्पन्न होता है उसके बाद भी बहुत कुछ समय तक वे लोकमें रहते हैं, उनका ससार बना हुआ है। तो इससे सिद्ध है कि ससारका कारणतत्व केवल मिथ्याज्ञान मात्र नहीं है। इस अनुमान प्रयोग में जो हेतु दिया गया है कि मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होनेपर भी ससारकी निवृत्ति न होनेसे यह हेतु असिद्ध नही है क्योंकि सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर मिथ्याज्ञान तो अलग हट हो गया है, इसमे कोई विवाद नही। लेकिन सम्यग्ज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर मिथ्याज्ञानकी तो निवृत्ति हुई, किन्तु मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति होनेपर भी अभी रागद्वेष आदिक दोष निवृत्त नही हुए हैं और इसी कारण अभी ससार भी निवृत्त नही हुआ है, ऐसा साख्य आदिक दार्शनिकोने स्वय भी कहा है और युक्तिसे भी यह बात प्रसिद्ध होती है कि सम्यग्ज्ञान होनेपर मिथ्याज्ञान हो तो दूर हुआ। अभी जो वासनावश रागद्वेषादिक चल रहे हैं उनकी निवृत्ति नही हुई, उनको भी पूर्णतया निवृत्ति हो जाय

दी है कि वीतरागकी तरह सराग भी चेष्टा करता है तो कैसे यह निश्चय किया जाय कि यह ही प्रभु है ? अब तो ज्ञानवान पुरुषोंके भी विसम्वाद डाल दिया गया, फिर कहा हम जिज्ञासको प्राप्त करे कि यह ही गुरु हैं। देखिये—ज्ञानवान वीतराग पुरुषके विसम्वाद कभी भी किसी भी विषयमे सम्भव नही होता। यदि ज्ञानवान वीतराग पुरुषमे विसम्वादकी सम्भावनाकी जाने लगे तो सुगत आदिक अपने—अपने अभिमत गुरुजनोमे भी अविश्वासका प्रसग आ जायगा। और, फिर अपने—अपने अभिमत गुरुवो को अन्य अन्य गुरुवोसे एक विशेषरूपसे माननेकी अनर्थकता हो जायगी। सिद्ध ही नही कर सकते हैं। इससे विवेक करना होगा व्यापार और वचनालाप और आकार विशेषोका ज्ञानवान पुरुषोमे साकर्य सिद्ध नही होता। क्योकि उनमें विचित्र अभिप्राय की उत्पत्ति नहीं है। विचित्र अभिप्राय होना है तो रागादिमान अज्ञानी जनोंके प्रसिद्ध है, निर्दोष भगवानमे विचित्र अभिप्रायकी निवृत्ति है। तब इस ज्ञानवान आप्त सर्वज्ञदेव के यथार्थ प्रतिपादन करनेका अभिप्राय है अथवा यथार्थ प्रतिपादन है इस बातका निश्चय हो जाता है। तब यह निर्णय करना होगा कि यह चेष्टा विशुद्ध है, यह चेष्टा खोटे अभिप्रायसे है। ऐसा विवेक लिए बिना तो कुछ भी सत्य सिद्ध नही कर सकते।

शरीरित्व हेतु विचित्राभिप्रायताका निर्णय करनेमे शकाकारके मत मे स्वयमे विडम्बना— यहाँ क्षणिकवादी विचित्र अभिप्रायपनेका हेतु बताकर सर्वज्ञ से भी व्यापार वचन आदिककी सरागियोके साथ सकरता, सदृशता दिखाकर अरहन्त मे सर्वज्ञताके अनिश्चयकी बात कह रहे हैं। तो वे यही बतायें कि किस हेतुसे वे सभी पुरुषोंमे चाहे वे सर्वज्ञ हो अथवा असर्वज्ञ हो, विचित्र अभिप्रायपनेको किस तरह निश्चित करते हैं जो कि अदृश्य है और व्यापारादिककी सकरताका हेतु बनता हो। इस प्रकारका विचित्र अभिप्राय सबमें किस प्रकार निश्चय करोगे ? यदि कहो कि शरीरित्व हेतुसे हम उनके विचित्र अभिप्रायका निर्णय कर लेंगे ऐसा अनुमान प्रयोग बनाकर कि सर्वज्ञ वीतरागमे विचित्र अभिप्राय है शरीरी होनेसे हम लोगोकी तरह। जैसे कि हम लोग शरीरी हैं तो हम लोगोमे विचित्र अभिप्राय पाये जा रहे हैं, सर्वज्ञ भी शरीर है सकल परमात्मा तो शरीर सहित माना ही गया है। अतएव उनमे विचित्र अभिप्रायकी सिद्धि हो जाती है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि फिर तो शरीरी है इस ही हेतुसे सुगतके भी असर्वज्ञताका निश्चय हो जाय। वह भी शरीरी है अतएव वह भी विचित्र अभिप्राय वाला हुआ। तो जैसे कोई मायावी पुरुष अपना विचित्र अभिप्राय रख सकता है इसी प्रकारके विचित्र अभिप्रायकी वहाँ भी सिद्धि मान लीजिए।

स्वेष्ट गुरुमे आपत्तिनिवारणार्थ शरीरित्व हेतुको सदिग्धविपक्ष व्यावृत्तिक कहनेपर इसी कारण विचित्रा भिप्रायताके भी अनिश्चयकी सिद्धि— अब यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि सुगतमे तो शरीरित्व हेतुको सदिग्ध विपक्ष व्या-

व्यतिरेका है अर्थात् शरीरित्व हेतु सुगतमें है और उसमें असर्वज्ञपना हो निश्चय हो, यह बात नहीं बनती, क्योंकि शरीरी भी रहे सुगत और सर्वज्ञ भी रहा आवे, कुछ विरोध नहीं। तो सुगतमें तो इस हेतुकी विपक्ष व्यावृत्ति निश्चित नहीं है, संदिग्ध है इस कारण सुगतमें असर्वज्ञपनेका निश्चय नहीं बनता। कारण यह है कि ज्ञान खूब प्रकर्ष [illegible] प्राप्त हो जाय फिर भी सुगतमें शरीरादिकका अपकर्ष नहीं देखा जाता है। ज्ञान खूब बढ़ गया और शरीर मिट गया ऐसी बात नहीं देखी जाती इस कारण सुगतमें यह बात नहीं कह सकते कि यह शरीरी होनेके कारण असर्वज्ञ है। इस शंका के समाधानमें कहते हैं कि बस फिर इस ही कारण तो सर्वज्ञमें विचित्र अभिप्रायपनेका भी निश्चय मत हो जाये जैसे शरीरित्व हेतुका सुगतमें संदिग्ध विपक्ष व्यावृत्तिक बताया है तो यही बात तो पुरुषत्व हेतुमें भी लगेगी अर्थात् पुरुष होनेके कारण वहाँ विचित्र अभिप्राय वाला बताया जा रहा था, लेकिन पुरुष निर्दोषता भी रहे और विचित्र अभिप्राय वाला न रहे यह भी तो सम्भव है। तो [illegible] सुगतकी विचित्राभि-प्रायताका निर्णय न बनेगा। विचित्राभिप्रायत्व साध्यमें पुरुषत्व हेतु संदिग्ध विपक्ष व्या-वृत्तिक हो गया और फिर यह विडम्बनाकी बात तो देखो कि यह क्षणिकवादी विचित्र [illegible] लेकर सभीमें विचित्र अभिप्रायपनेका तो निश्चय कर रहा है, पर [illegible] सत्त्वादिक कार्योंकी अनिश्चयताका निर्णय नहीं करके सर्वज्ञत्व निर्दोष-त्व [illegible] अतिशयोंका निश्चय नहीं करता है तो उसे कैसे बुद्धिमान कहा जाय [illegible] यह भी बतायें कि किस चिन्हका आधार लेकर वे इन बातोंको सिद्ध कर सकेंगे? जैसे स्वसमान स्वर्गमें पहुँचनेकी शक्ति रखता है या संतानान्तर अन्य [illegible] शरीरोंमें [illegible] ज्ञानोंकी संतान चलाता है क्षण-क्षणमें नये-नये बनते हैं [illegible] स्वर्ग प्राप्त करानेकी शक्ति है या अपने शरीरमें जो ज्ञानोंकी संतानें चलतीं [illegible] है इन विशेषताओंको कैसे वे मान सकेंगे, क्योंकि विप्रकृष्ट स्वभाव-पना सर्वत्र है, जो इन्द्रियगम्य नहीं है, आगमोंसे जो सिद्ध नहीं सकता वह विप्रकृष्ट स्वभावी कहलाता है। तो स्वर्ग प्राप्त करानेकी शक्ति क्षण-क्षणमें नष्ट हो जानेकी बात ये सब विप्रकृष्ट स्वभाव हैं। इनका किस चिन्हका आधार लेकर निर्णय करेंगे? और, फिर ऐसे ज्ञानाद्वैतको कैसे मान सकेंगे? जो वेद्याकार व वेदकाकारसे रहित है याने वेद्यवेदकाकाररहित ज्ञानाद्वैतको किस चिन्हसे निरख करके मान सकोगे? अथवा ये [illegible]काकार अपने यहाँ प्रमाणभूतरूप माने गए सुगतको कैसे महत्त्वरूपसे मान सकोगे? जिसके सम्बन्धमें ऐसी स्तुति की है कि यह प्रमाणभूत है, जगतके हितैषी हैं, उपदेश करने वाले हैं और सुगत हैं, शोभाको प्राप्त हैं या सम्पूर्ण श्रेयको प्राप्त हैं। इस तरहसे जो क्षणिकवादियोंने सुगतके सम्बन्धमें स्तवन किया है, उनको अन्य सतोंसे अधिक विशेष करके माना है [illegible] किस चिन्हका आधार लेकर मान सकोगे, क्योंकि अब तो सभी बातें [illegible] होनेसे अनिर्णय बन गया। जैसे सर्वज्ञत्व आदिकके विषयमें अनिर्णय होने [illegible] नहीं मानते हो ऐसे ही ज्ञानाद्वैतके गुणमें भी और सुगतके गुणमें भी निर्णय न होगा। अनिश्चय ही रहा, कहीं भी विश्वास न हो सकेगा।

विना लिङ्गके स्वेष्टविशेष्टि मानने वालोके यहा अनुमानकी असिद्धि

अब यहाँ क्षणिकवादी कहते हैं कि सुगतकी विशेषताका मानना अनुमानसे बन जायगा। उत्तरमें कहते हैं कि पहिले विचित्र अभिप्राय दिखाकर कार्योंकी सकरता बताने वाले क्षणिकवादी लोग अनुमानको ही तो सिद्ध करले कि अनुमान भी कुछ हो सकता है क्या? इस तरह सदिग्ध अभिप्राय वालोके अनुमानकी सिद्धि नही हो सकती। अभी ऊपर तो एक चेतनके सम्बन्धमें बात कही, किन्तु जो चेतन नही है, जिसके कोई अभिप्राय नही है ऐसी अग्नि आदिकके भी कार्यहेतुपना स्वभावहेतुपनेका नियम नही बन सकता। किस प्रकार? सो सुनो! काष्ठ आदिक ईंधन सामग्रीके होनेपर कहीं अग्नि प्राप्त होती देखी गई है और कही काष्ठ आदिक सामग्रीके अभावमे प्राय करके अग्नि उपलब्ध होती हुई नही देखी गई ऐसी भी बात हो सकी है, पर यह भी होजाता है कि काष्ठादिक सामग्री विशेष नहीं है और मणि आदिककी जो अग्नि है याने सूर्यकांत मणिमें अग्नित्व सम्भव देखा गया है तो अभी तो आप चेतनकी बातमे शका कर रहे थे कि भाई सर्वज्ञ भी पुरुष है। तो विचित्र अभिप्राय पुरुषोमे हुआ करता है। जैसे कि हम लोगोमें नाना प्रकारके विचित्र अभिप्राय हो जाया करते हैं तो वहाँ भी विचित्र अभिप्राय होगा, फिर वह ही सर्वज्ञ है यह निर्णय कैसे होगा? उक्त प्रकार तो तुमने चेतनमें सदेह किया, किन्तु अब अचेतनमे भी सदेह बनने लगा कि देखो अग्नि काष्ठ आदिक सामग्रीसे उत्पन्न होती है और धूम होनेसे अग्निका अनुमान करते हैं, लेकिन अब तो वहाँ सूर्यकान्त मणिमे भी अग्नित्व पाया जा रहा और धूम है नही, तब अनुमान कुछ बन हो न सकेगा इस विधिमे। यदि कहो कि जिस जाति वाली जो बात जिसमे होती हुई देखी गई है उस जाति वाली वह बात उस जातिमे ही होती है। उत्तरमे कहते हैं कि यह भी तुम्हारा कठिन नियम है, इसमे भी अभी निर्णय होनेकी गुजाइस नहीं है। देखिये! धुआँ और अग्नि, इनमे जातिपनेका कहाँ निर्णय हो सकेगा? अब इनमें व्याप्य व्यापक भावका किस प्रकार निर्णय किया जा सकेगा? अथवा कोई अनुमान बनाया गया कि यह वृक्ष है आम्र होनेसे तो यह अनुमान भी न बन सकेगा? अनुमान तो किया कि यह वृक्ष है आम होनेसे, किन्तु आम नाम एक वृक्षका भी है और आम नामकी लता भी होती है। तो आम्रत्व तो लतामे भी पाया गया लेकिन वह वृक्ष तो नही है। तो इस तरह कही भी चित्त निशक नहीं होसकता, तो यो अदृष्टमें सशय मानने वाले एकान्तवादियोके यहाँ तो अपना ही विघात हो जाता है उनके ही कथनसे, इस कारण पुरुषत्व हेतु देकर विचित्र अभिप्रायका निर्णय बताना सर्वज्ञमे और उनकी सर्वज्ञतामें सदेह करना, अनिश्चय करना यह हठ क्षणिकवादीके सभी सिद्धान्तोका विघात कर देने वाली है। अत उन्हे मानना ही चाहिए कि जब साधारण पुरुषोमे विशेषता नजर आ रही है महान् पुरुषमें तब अन्य पुरुषोंकी भाँति असर्वज्ञत्व सदोषत्वकी वहाँ शका नही की जा सकती है।

अतरवित्त अनुमानमे व्याप्ति दर्शनकी शकाकारका प्रयास व उसका

निराकरण— शंकाकार कहते हैं कि काष्ठ आदिक सामग्रीसे उत्पन्न हुई अग्नि जिस प्रकारकी देखी गई है, उस प्रकार मणि आदिक सामग्रीसे उत्पन्न हुई अग्नि नहीं देखी गई इस कारण जिस जातिकी जो जितनी देखी जाती है वह उस ही जातिके पदार्थसे हो सकती है, अन्य प्रकारके पदार्थसे नहीं हो सकती । तब फिर धूम और अग्निमें व्याप्य व्यापक भावका निर्णय कैसे न होगा । और भी देख लीजिये कि जिस प्रकारका आम्रपना वृक्षत्व व्याप्त है उस प्रकारका आम्रपना लतारूपसे व्याप्त नहीं है, सो आम्रत्वका वृक्षत्वके साथ व्याप्य व्यापक भावका नियम कैसे दुर्लभ हो जायगा ? वह भी सिद्ध हो जायगा । तब यह दोष देना कि विचित्र अभिप्रायका हेतु बताकर किसी पुरुष विशेषमें सर्वज्ञत्वमें संदेह करनेकी सिद्धिमें व्यभिचार आता है, सो व्यभिचार नहीं आता । इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ऐसा कहने वाले क्षणिकवादी प्रत्यक्षका भी अपलाप करते हैं । देखिये—काष्ठादिक सामग्रीसे जन्य होनेके कारण यद्यपि वह अग्नि कार्य काष्ठ सामग्री जन्य रूपसे प्रतीयमान हो रहा है, सो होओ, लेकिन वह कारणविशेषका उल्लंघन भी कर देता है इसमें कारण विशेष है काष्ठादिक सामग्री । उसका भी उल्लंघन है । अन्य प्रकारकी अग्नि भी उस प्रकारसे पायी जाती है । तब विचित्र अभिप्रायकी बात कहकर जैसे सर्वज्ञत्वमें सन्देह डाला है इसी प्रकार प्रत्येक अनुमानमें व्याप्य व्यापक भावका अभाव घटित करलें, फिर अनुमानकी सिद्धि कैसे हो जायगी ।

यत्नत परीक्षित कार्यमे कारणसाधकता माननेपर सुव्यवस्थाकी सम्भतता—शंकाकार कहते हैं कि बडे यत्नसे प्रयोगसे परीक्षित किए गए कार्य कारणका उल्लंघन नहीं करता है सो उस अग्निके सम्बन्धमें परीक्षा करनेके बाद तो वहां कार्य कारणकी व्यवस्था सही बन जाती है । इसके समाधानमें कहते हैं कि ठीक है । तुमने जो कहा उसे हो तो हम कह रहे हैं । जैसे यत्नसे परीक्षा किए गए कार्य कारणका उल्लंघन नहीं करता इसी प्रकार यत्नसे पुरुषत्व आदिक स्वभावका निर्णय कर लेनेपर पुरुष विशेषत्वका सर्वज्ञत्वके साथ व्याप्य व्यापक भाव बन जायगा । उस का भी उल्लंघन न होगा । हां यत्नसे, परीक्षासे करनेकी बात जैसे सभी अनुमानोंमें बतायी जा रही है उसी प्रकार परीक्षा करनेकी बात यहां भी प्रधान है । जो व्यापार व्याहार आदिक विशेष है अल्पज्ञ रागादिमानमें जो सम्भव न हो ऐसे व्यापारादिक विशेषकी यत्नपूर्वक परीक्षा कीजिए । यत्नसे परीक्षित व्यापार व्यापार आदिक विशेष भगवानमें ज्ञानादिक उत्कृष्टताका उल्लंघन नहीं करते । परीक्षा करनेके बाद कि ऐसा अनुमान व्यापार व्यवहार अल्पज्ञ और बुद्धिमान जीवोंमें सम्भव नहीं होता । इससे सिद्ध है कि ऐसा व्यापार विशेष जहां पाया जाय वहां ज्ञानकी प्रकर्षता है । तब यों कहने वाले दार्शनिकोंके कि यत्नसे परीक्षित हुए व्याप्य व्यापकका उल्लंघन नहीं करता, यों कहने वालोंने यह बात सिद्ध कर दिया कि पुरुषविशेषत्व स्वभाव है, व्याप्य है और उससे सिद्ध किया जा रहा है सर्वज्ञता व्यापक । तो यह पुरुष विशेषत्व

जिसकी यत्न और युक्तिसे परीक्षा की गई है वह सर्वज्ञको सिद्ध करता है। उसका उल्लंघन नहीं करता क्योंकि जैसे अन्य अनुमानमें व्याप्य व्यापक भावकी परीक्षा करके मान रहे हो इसी प्रकार इस प्रकृत अनुमानमें भी व्याप्य व्यापक भावकी परीक्षा करके मान लीजिए।

यत्नतः परीक्षित अतिशायी व्याहारसे न्यायागमाविरुद्ध भाषित्वकी सिद्धि—प्रयत्नपरीक्षित साधन साध्य साधक ही है, फिर भी यदि कोई गलती होजाय तो यह जानने वालेका अपराध है कि उसने परीक्षा भली प्रकारसे नहीं की। पर अनुमानका अपराध नहीं है। और इस तरह जो यत्नसे परीक्षित व्याप्यको व्यापक सिद्ध करने वाला मानते हैं वे हमारे अनुकूल ही आचरण कर रहे हैं। कोई अगर अत्यन्त मंद बुद्धि वाला पुरुष हो जो धूम आदिककी परीक्षा करनेमें भी समर्थ है तो उस धूम आदिकसे अग्नि आदिकके ज्ञान किए जानेमें व्यभिचार देखा जायगा। पर जो बुद्धिमें बड़ा अतिशयवान है, जो सर्वत्र परीक्षा करनेमें समर्थ हैं वे जैसे धूम आदिक, अग्नि आदिकको नहीं दूषित करते हैं उसी प्रकार जो परीक्षा करनेमें समर्थ हैं ऐसे बुद्धिमान पुरुष भी व्यापार व्यवहार आकार विशेष देखकर यह सिद्ध कर ही लेंगे कि इस जगह विज्ञानका पूर्ण प्रकर्ष है, इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है। सो आर्हत शासनमें युक्ति और शास्त्रका अविरोधी कथन है और इसके मूलप्रणेता भगवान अरहंत युक्तिशास्त्रके अविरोधसे वचने वाले हैं अतएव वे निर्दोष हैं, अतएव वही सर्वज्ञ हैं, इस प्रकारकी बात सिद्ध हो ही जाती है। "युक्तिशास्त्रके अविरोधी वचनपना होनेसे" यह हेतु इस बातको सिद्ध करता है कि अरहंत भगवानमें सर्वज्ञता है और अब कोई भी बाधक प्रमाण उसमें सम्भव नहीं है। इसी बातको स्वामी समंतभद्राचार्यने इस कारिकामें स्पष्ट किया है क्योंकि जिस कारण युक्ति शास्त्रसे अविरुद्ध वचन हैं, उस ही कारणसे यह सिद्ध है कि सर्वज्ञताकी सिद्धिमें बाधक प्रमाण असम्भव है और यो सर्वज्ञत्वबाधकप्रमाणलाका अभाव है भगवान तुम ही में है अतएव तुम ही निर्दोष और सर्वज्ञ हो। आर्हत शासनमें अविरोध है यह कैसे सिद्ध करनेके लिये इस कारिका में यह शब्द दिया है कि "अविरोधोपदिष्ट ते प्रसिद्धेन नबाध्यते" जो आपका इष्ट है याने शासन है वह प्रमाणसे बाधित नहीं होता है।

प्रणष्टमोह निरीह सर्वज्ञ प्रभुके शासनको इष्ट शब्दसे कहनेकी उपचाररूपता—अब इस प्रसंगमें थोड़ी यह बात विचारी जाती है कि यहां जो इष्ट शब्द दिया है आपका जो इष्ट है वह बाधित नहीं है तो यहाँ इष्ट शब्द देना उपचार से है। भगवानमें इच्छा नहीं है। इच्छाके अभाव पूर्वक भगवान आगमका कथन करते हैं और इष्ट कहते हैं इच्छाके विषयभूत तत्वको। तो भगवानका उपदेश भव्य जीवोंके भाग्यसे और वचन योगके कारण होता है लेकिन इच्छा न होनेसे भगवानमें इष्ट शासनका उपचार किया गया है। जो पुरुष ऐसा सन्देह करे कि इच्छाके बिना

प्रवृत्ति तो होती ही नहीं तो उन्हें वह समझ लेना चाहिए कि कहीं कहीं पर बिना अभिप्रायके भी वचन होते हैं इसका प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। प्रकरणमें, यह बात कही जा रही है कि इष्ट कहते हैं इच्छाके विषयभूतको सो जिसका मोह प्रक्षीण हो गया है ऐसे भगवानमें मोह पर्यायात्मक इच्छा सम्भव ही नहीं है, क्योंकि इस विषयमे अनुमान प्रयोगसे ऐसा निश्चय कर लिया जाता है सर्वज्ञ भगवानके शासन प्रकाशनके लिए इच्छा नहीं होती क्योंकि वह क्षीण मोह है। उनका मोह समस्त निष्क्रान्त हो गया है। मोह उत्पन्न होनेका कारण भी नहीं रहा। जिस प्रकार कि अल्पज्ञ लोगोंके शासनको प्रकाशित करनेके लिए इच्छा उत्पन्न होती है ऐसा भी है प्रशस्त राग नहीं हो सकता। जो सर्वज्ञ है, प्रणष्ट मोह उनमें मोह अब रंच भी नहीं रहा। शासन प्रकाशननिमित्त भी सर्वज्ञके इच्छा नहीं है, प्रणष्टमोह होनेसे। यह बात अनुमानप्रयोगसे सिद्ध है। अतएव सर्वज्ञ भगवानके शासनको प्रकट करनेके अर्थ इच्छा सम्भव नहीं है। इस प्रकार वह केवल व्यभिचारी हेतु निरभिप्राय वचनको सिद्ध करता है अर्थात् अभिप्रायके बिना भी वचन खिर सकते हैं।

निरभिप्राय वचनवृत्तिकी सम्भवता—यहाँ कोई शंका करता है कि सर्वज्ञ भगवान इच्छाके बिना बोल नहीं सकते वक्ता होनेसे, हम लोगोंकी तरह। जैसे कि हम लोग वक्ता हैं, वचन बोलने वाले हैं, तो हमारे वचन इच्छाके बिना तो नहीं होते। ऐसे ही सर्वज्ञ भगवानका भी वचन है। तो वहाँ भी इच्छाके बिना नहीं हो सकता। उत्तरमें कहते कि यह नियम नहीं है कि बिना अभिप्रायके वचन निकले ही नहीं। यदि ऐसा ही माननेका हठ करेंगे बिना इच्छा अभिप्रायके वचन निकलते ही नहीं तो उसमे यह दोष है कि जो मनुष्य सो रहा है और सोते हुएमें भी वह कुछ वचन बोल रहा है तो वहाँ भी इच्छा और अभिप्रायके बिना वचन प्रवृत्ति है सो यह कैसे हो गई? सोती हुई हालतमे व कुछ शब्द स्खलित हो रहे हैं उस समयमें वचन व्यवहार आदिकका कारणभूत इच्छा तो नही है। तो इच्छाके बिना भी जब कोई वचन प्रवर्तन हो जाता है तो यह नियम कैसे रहा कि इच्छाके बिना वचन निकल ही नहीं सकते? प्रभु सर्वज्ञ के इच्छाके बिना वचन इस कारण चलते हैं कि पहिले लोक कल्याण भावनासे जो पुण्य उपार्जित किया था उसके उदयमें वचन योगके कारण भव्य जीवोंके पुण्यके उदय के कारण उनकी प्रवृत्ति होती है। तो वचन बोलनेकी बात कहकर रागियोंकी समानता देकर सर्वज्ञपनेका निषेध करना युक्तिसगत नही है।

सुषुप्तिदशामे हुए वचन प्रवर्तनका पश्चात् स्मरण न होनेसे प्रतिसंविदिताकारा इच्छाके अभावका निर्णय—सोती हुई अवस्थामें वचन व्यवहार जो निकलते हैं जहाँ कि स्खलित रूपमे शब्द आदिक बोलनेमें आते हैं ऐसे वचन व्यवहार होकर भी उसके कारणभूत इच्छा नही है। उस समय इच्छा क्यों सम्भव नहीं है? यों कि इच्छा होती है प्रतिसम्विदिताकार अर्थात् प्रत्येक वचनके साथ नियतरूपसे

सम्विदत आकार इच्छासे होता है। तभी तो लोग बड़े सम्बन्धसहित बड़े व निर्बन्धों में वचन बोलते हैं। जैसे कोई आधा घटा तक धारा प्रवाहसे भाषण करता है तो वहां प्रत्येक वचनके साथ ज्ञान चल रहा है और इच्छा भी चल रही है। तो इच्छा हुआ करती है प्रतिसम्विदिताकार। वह यदि सोई हुई अवस्थामें मान लिया जाय तब तो फिर उसका स्मरण होना चाहिए अन्य अभावकी तरह। जैसे अन्य काम करनेकी इच्छा होती है और उन इच्छाओंपूर्वक कार्य किया जाता है तो उस समयमें उसके पश्चात् उसका स्मरण भी होता है। यह कार्य किया था, ऐसे ही सोई हुई अवस्थामे यदि इच्छा प्रतिसम्विदिताकार बने उन वचनोंके साथ साथ इच्छा चल रही है तो बादमें भी स्मरण होना चाहिए लेकिन सोई हुई हालतमे कोई कुछ बड़बड़ा जाय तो जगनेपर उसका स्मरण नहीं होता। इच्छा अप्रतिसम्विदिताकार सम्भव ही नही होती। और तभी उस इच्छाका व कार्यका बादमे स्मरण नहीं रहता। न तब ही स्मरण है न उत्तरकालमे स्मरण है। इससे सिद्ध है कि वहाँ इच्छा नहीं है। सोई हुई हालतमे इच्छाके न होनेपर भी वचन व्यवहार होता है इससे ही सिद्ध है कि वचन व्यवहार कही इच्छाके बिना भी हुआ करता है।

सुषुप्तवचनवृत्तिको इच्छापूर्वक सिद्ध करनेमे दिये गए वाक्प्रवृत्तित्व हेतुकी अप्रयोजकता—शंकाकार कहते हैं कि सोई हुई अवस्थामे जो वचनादिक प्रवृत्ति होती है उसका कारण पूर्वकालमे की गई इच्छा है। जागृत अवस्थाके जो इच्छा की गई थी वह इच्छा वचनादिक प्रवृत्तिका कारणभूत है और फिर उस वचनात्मक प्रवृत्तिसे अप्रतिसम्विदिताकार इच्छा अनुमेय हो जायगी। याने वहाँ पर यद्यपि प्रत्येक वचनके साथ ज्ञानाकार नियत नहीं हुआ लेकिन इच्छा है ऐसा अनुमान मे सम्भव हो जाता है। इस शंकाका उत्तर देते हैं कि फिर तो वह अनुमान है क्या सो बताओ। तब यहा शंकाकार अनुमान दे रहा है कि देखिये यह अनुमान है कि विवादापन्न यह वचनादिक प्रवृत्ति, सोई हुई अवस्थामें होने वाला वचन व्यवहार इच्छापूर्वक है क्योकि वचनादिक प्रवृत्ति होनेसे। प्रसिद्ध इच्छापूर्वक वचनादिक प्रवृत्तिकी तरह। अब इस शंकाके समाधानमे कहते हैं कि यह हेतु अप्रयोजक है। किस प्रकार कि जागृत पुरुषके व एकचित्त वाले पुरुषके वचनादिककी प्रवृत्ति इच्छापूर्वक होती हुई जानी गई है अन्य देशमें, अन्य कालमे भी उस ही प्रकार जागृत और एकचित्त वाले पुरुषकी वचनादिक प्रवृत्ति इच्छापूर्वक सिद्ध की जा सकती है न कि अन्य प्रकारके पुरुषको। सोई हुई अवस्था वाले पुरुषके अथवा किसी अन्य जगह किसीका मन लगा हुआ है ऐसे पुरुषके जो वचनादिक प्रवृत्ति होती है उसे इच्छापूर्वक नही मान सकते, क्योकि इस तरह माननमें अतिप्रसग आयगा। कोई मायी घटका भी धूम निकल रहा हो वह भी अग्निका गमक बन जायगा कोई यों ही अनुमान बनाने लगे कि देखिये! वचन सींग वाले होते हैं, क्योंकि गो शब्दके द्वारा वाच्य होने से। शब्दके अनेक अर्थ हैं— गाय, किरण, वचन आदिक, तो चूंकि गो शब्दके द्वारा

वाच्य ये दूध देने वाले पशु हैं और ये सींग वाले देखे गए हैं यों वचन भी चूंकि गो शब्दके द्वारा वाच्य हैं अतएव वचन भी सींग वाले बन बैठे। यों अनेक प्रकारके विचित्र अति प्रसंग आ जाते हैं।

वाक्यप्रवृत्तिकी इच्छापूर्वकत्वसे व्याप्तपनेकी असिद्धि—सोई हुई अवस्था वाले पुरुषके अथवा अन्य विषयमें जिसका मन लगा हुआ है ऐसे पुरुषकी जो वचन आदिक प्रवृत्ति है वह इच्छापूर्वकपनेसे व्याप्त नहीं है, अनुमानमें जो साध्य साधन बताया गया है कि सुषुप्त पुरुषके वचनादिक प्रवृत्ति इच्छापूर्वक है वचनादिक प्रवृत्ति होनेसे। तो साध्य बनाया गया है इच्छापूर्वक और हेतु बताया गया है वचनादिक प्रवृत्ति होनेसे। तो साधन और साध्यकी व्याप्ति जागृत अवस्था वाले और एक चित्त वाले पुरुषमें तो लगायी जा सकती है लेकिन सोए हुए या अन्य विषयमें जिसका चित्त पड़ा हुआ है ऐसे पुरुषके वचनादिक प्रवृत्ति इच्छापूर्वकपनेसे व्याप्त नहीं है, क्योंकि ऐसे स्थलमें उस व्याप्तिको अवगति असम्भव है। बतलावो उस व्याप्तिको कौन जान सकेगा, स्वसंतान या परसंतान ? उस व्याप्तिकी समझ क्या यह इस ही शरीरमें उत्पन्न होने वाले ज्ञान संतानमें सम्भव है या व्याप्तिका ज्ञान दूसरेके शरीरमें उत्पन्न होने वाले ज्ञानोंकी संतानमें सम्भव है ? ज्ञानको या आत्माको नित्य तो माना नहीं क्षणिकवादियोंने, ज्ञान संतान माना है। तो जो देह सोया हुआ है उस देहका ज्ञान संतान उस व्याप्तिको जानता है या दूसरे देहमें होने वाले ज्ञानोंकी संतान इस सोये हुए की वचनादिक प्रवृत्ति इच्छापूर्वक है, इस प्रकार व्याप्तिको जानता है ? स्वसंतान में व्याप्तिका ज्ञान सम्भव नहीं है अर्थात् सुषुप्तके वचनादिक प्रवृत्तिका इच्छापूर्वकपनेके साथ व्याप्ति हो ऐसा ज्ञान स्वसंतानमें सम्भव नहीं है। स्पष्ट ही है इसका कारण कि ऐसा ज्ञान अगर बना हुआ हो सोये हुएमें तो सोई हुई जाग्रत ही क्या कहलायेगी ? सोया हुआ है या अन्य विषयमें मन लगा हुआ है। ऐसा पुरुष यह जान जाय कि यह प्रवृत्ति इच्छापूर्वक हो रही है यह बात स्पष्ट असंगत है ? यदि कहो कि पीछे जब उठता है, जग जाता है तब जान जाता है। तो यह बात भी असंगत है। देखिये—स्वयं नहीं सोया हुआ है याने जगा हुआ है या अन्यमें मन वाला नहीं अर्थात् एक जगह चित्त वाला होता हुआ है। ऐसे सुषुप्त और अन्यमनस्ककी प्रवृत्ति यह इच्छापूर्वकपनेसे व्याप्त है ऐसा जाना जाता है, यों बोलने वाला कोई कैसे निर्दोष वचन वाला बुद्धिमानके द्वारा समझा जा सकता है ? यदि कहो कि उस समय अनुमानसे उस व्याप्तिका ज्ञान हो जायगा। सोई हुई अवस्थामें जो वचनादिक प्रवृत्ति होती है वह इच्छापूर्वक है यह सिद्ध करनेके लिए व्याप्तिका ज्ञान तो करना ही होगा कि सुषुप्त की वचन प्रवृत्तिको इच्छापूर्वकपनेसे व्याप्ति है। यह जाने बिना वह अनुमान निर्दोष तो न हो सका। उस व्याप्तिके ज्ञानेकी बात यदि अनुमानसे बतावोगे तो अनवस्था दोष होगा। उस व्याप्तिके ज्ञान करनेके लिए जो अनुमान बनाया जायगा उसमें भी व्याप्तिका ज्ञान तो करना ही होगा। व्याप्तिका ज्ञान किए बिना अनुमान तो नहीं

बनता। तब और अन्य अनुमानकी अपेक्षा बनेगी। इस तरह नवीन अनुमानकी व्याप्तिका ज्ञान करनेके लिये नवीन नवीन अनुमान बनाये जाते होंगे। बहुत दूर भी जाकर कोई अवसर नहीं मिलता कि किसी अनुमानकी व्याप्तिका ज्ञान प्रत्यक्षसे बन जाय। तो सुषुप्त और अन्यमनस्ककी वचन प्रवृत्तिका इच्छापूर्वकपनेके साथ व्याप्ति का ज्ञान लेना स्वसतानमें तो बना नही और जैसे स्वसतानमें उसकी व्याप्तिका ज्ञान नहीं बना उसी प्रकार सतानान्तरसे भी इस साध्य साधनकी व्याप्तिका ज्ञान नहीं बन सकता, क्योंकि अनुमानसे उस व्याप्तिका ज्ञान करनेपर अनवस्था दोष आता है।

इच्छा बिना भी वाग्वृत्तिकी सभवता होनेसे वीतराग प्रभुकी उपदेश परम्परामे अनापत्ति—अब देखिये! प्रत्यक्षसे वाग्वृत्तिका इच्छापूर्वकत्व साध्यके साथ व्याप्तिका ज्ञान हो नहीं रहा। सोई हुई हालतमें या अन्य विषयमें मन पडा हो ऐसी हालतमें अनुमेय इच्छा नही है, न उस समय इच्छा है और न पूर्वकाल वाली इच्छा है उस वचन प्रवृत्तिसे इस अनुमानकी सिद्धि ही नहीं है। यहाँपर शकाकारने सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें बाधा देनेके लिए यह बात कही थी कि सर्वज्ञकी प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक होती है क्योंकि वक्ता होनेसे, अथवा जब यह कहा गया कि हे अरहत तुम्हीं सर्वज्ञ हो क्योंकि तुम्हारा जो इष्ट मत है वह प्रसिद्ध प्रमाणसे किसीसे बाधा नहीं जाता। इस सम्बन्धमे इष्ट मतका उपचारसे अर्थ करना बताया था क्योंकि भगवानके इच्छा ही नही होती, और इष्ट कहते हैं उसे जो इच्छाका विषयभूत हो। तो उस उपचारकी सिद्धिके प्रसगमें शकाकारने यह आपत्ति दी थी कि भगवानमें इच्छा क्यों न होगी? वक्ता हैं इस कारण उनकी वचन प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक ही होती है। इसके समाधानमे यह दोष दिया गया था कि यदि सवथा यह एकान्त मान लिया जाय कि वचन प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक ही होती है तब सोये हुए मनुष्यके या अन्य विषयमें जिसका मन जा रहा है उस मनुष्यकी जो वचनवृत्ति है वह फिर न होना चाहिए क्योंकि वहाँ पर इच्छा है ही नही। इसपर शकाकारने यह सिद्ध करनेका प्रयास किया था कि सुषुप्त अवस्थामें भी इच्छा अनुमेय है। इस ही सम्बन्धको लेकर विस्तारपूर्वक अभी वर्णन चायगा कि सुषुप्त पुरुषकी इच्छा अनुमेय नहीं है। तो जब इच्छा अनुमेय भी न रही सुषुप्तमें, तब जो अनुमान प्रयोग किया था शकाकारने कि सर्वज्ञकी प्रवृत्ति इच्छा पूर्वक है वक्ता होनेसे तो अब यह वक्तृत्व सुषुप्त पुरुषमें तो देखा गया लेकिन उसके अभिप्राय या इच्छा कुछ नहीं है। तो शकाकारके द्वारा प्रयुक्त हेतुका सुषुप्त आदिकके साथ व्यभिचार होनेसे सर्वज्ञत्वमें बाधा देनेका प्रयास विफल हो गया। वक्तृत्व और इच्छा पूर्वकपना इनमें न तो स्वभाव स्वरूप नियम बनता है न कार्य स्वरूप नियम बनता है, अतएव प्रभुकी वचनवृत्ति बिना इच्छाके ही होती है। यह तो मुख्य वार्ता है और उसको इष्ट शासन कहा गया है सो उस शासनको उपचारसे इष्ट कहा गया है। सुषुप्ति में जो वचनवृत्ति देखी जाती है, वह वचन प्रवृत्ति तालु आदिक सयोग पूर्वक देखी गई है, और फिर चैतन्य और तालू आदिक संयोग बाह्य आदिक प्रबल इन्द्रियकी समर्थता

इसको तो वाक्प्रवृत्तिमें साधकतम कहा जा सकता है, पर इच्छाको वचनवृत्ति में साधकतम नहीं कहा जा सकता, क्योंकि सोई हुई आदि अवस्थामें इच्छा पूर्वकपना तो है नहीं और वचनप्रवर्तन देखा जाता है।

विवक्षाको अपेक्षणीय सहकारी कारण माननेकी सिद्धि— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि चेतन भी हो और इन्द्रियकी समर्थता भी हो तो भी किसी किसीकी वचन प्रवृत्ति देखी ही नही जाती। जैसे कई योगी मौनका नियम लिए हुए हैं, अथवा उन्हें कुछ प्रयोजन नही है तो वे चुपचाप विराजे हैं। चेतन और इन्द्रियकी समर्थता होनेपर भी वचन प्रवृत्ति नही देखी जाती है इस कारण यह मानना चाहिए कि विवक्षा भी (बोलनेकी इच्छा भी) वचन प्रवृत्तिमें सहकारी कारण है। इसके समाधानमें कहते हैं कि भले ही सहकारी कारण विवक्षा और अन्य कुछ भी हो जाय, पर सहकारी कारण विवक्षादिकका नियत कारण नही माने जा सकते जिसकी अपेक्षा करनी वचन प्रवृत्तिमें आवश्यक होता है। देखो रात्रिमें चलने वाले कुत्ता, बिल्ली आदिक जानवर और जिन्होने अपनी आँखोंमें एक विशिष्ट अञ्जन लगाया है, उससे जिनकी आँखोंका संस्कार कर दिया गया है ऐसे पुरुष आलोकके अभिधानकी अपेक्षा न रखकर रूपका दर्शन करते रहते हैं, तो जैसे कुछ देखनेमें प्रकाश सहकारी कारण है ना, सब लोग समझते हैं, अन्धकारमें मनुष्योंको कुछ दिखता नहीं लेकिन आलोक सहकारी कारण तो है, पर उसे नियत अपेक्षणीय कारण नहीं कहा जा सकता याने प्रकाश न हो तो किसी भी प्रकार रूप देखा ही नहीं जा सकता, यह नियम नहीं बनाया जा सकता। रात्रिको चलने वाले कुत्ता बिल्ली आदिक जानवरोंके और जिनके चक्षु सुसंस्कृत हो गए हैं ऐसे पुरुषोंके प्रकाशकी अपेक्षा किए बिना भी रूपको उपलब्धि पायी जाती है। इसी प्रकार जैसे कि प्रकाश आदिक सहकारी कारण नियत अपेक्षनीय नहीं हैं इसी प्रकार वचन प्रवृत्तिमें भी विवक्षा सहकारी कारण नियत नहीं है।

ज्ञान और इन्द्रियसामर्थ्यके अभावमे विवक्षा होनेपर भी वचनवृत्ति न देखी जानेसे यहा मनुष्योंमें ज्ञान और कारणपाटवकी वाग्वृत्तिहेतुता— देखिये! विवक्षाके अभावमें भी वचन प्रवृत्ति देखी गई तो यहाँ कोई यो नहीं कह सकता कि जैसे विवक्षाके बिना वचन प्रवृत्ति देखी गई तो विवक्षाको वचनमें कारण न माने तो ज्ञान और इन्द्रियकी सामर्थ्यका अभाव होनेपर विवक्षा मात्रसे किसीको वचन प्रवृत्ति हो जाय ऐसा प्रसंग नहीं किया जा सकता है कारण यह है कि ज्ञान और इन्द्रिय की सामर्थ्य न होनेपर कितना ही बोलनेकी इच्छा कोई करे किन्तु वचनप्रवृत्ति उन्हें नहीं हो पाती। शब्दसे और अर्थसे जिसने शासनका परिज्ञान नही किया और दूसरेके शास्त्र व्याख्यानको निरखकर ऐसा ही व्याख्यान करनेकी इच्छा भी करे कोई तिसपर भी क्या वह बोल सकता है? उसके वचन प्रवृत्ति नहीं देखी जाती इस कारण विवक्षा को वचन प्रवृत्तिका हेतु नहीं कहा जा सकता। और, भी देखो ! इन्द्रियकी सामर्थ्य न

होनेपर स्पष्ट शब्दका उच्चारण नही देखा जाता। जैसे जो लोग बहुत तोतला बोलते हैं वे क्या यह चाहते हैं कि मैं ऐसा तोतला ही बोलूँ, लेकिन उनकी जिह्वा आदिकमें कोई दोष है, इन्द्रियकी निर्दोषता नही है इसलिए स्पष्ट शब्दका उच्चारण नहीं कर पाते। तब यही सिद्ध हुआ ना कि विवक्षा वचनप्रवृत्तिका नियत कारण नही है, अन्यथा बच्चे गूगे आदिकमें भी वचन प्रवृत्ति हो जाना चाहिए, वे भी बोलनेकी इच्छा रखते हैं लेकिन बोल नही पाते। इससे यह निर्णय समझना कि चेतन और इन्द्रियकी पटुता वचन प्रवृत्तिमें कारण है नियमसे पर विवक्षा, इच्छा वचन प्रवृत्तिमे नियमित कारण नही है। विवक्षाके बिना भी सोई हुई हालतमें वचन प्रवृत्ति देखी जाती है।

दोषजातिमे भी वचनहेतुत्वकी असिद्धि—यहाँ शकाकार कहता है कि वचनप्रवृत्तिका कारण तो रागद्वेषका होना है जितने भी पुरुष वचन बोलते हुए देखे जाते हैं प्राय. रागवश या द्वेषवश बोला करते हैं। दोषोका समूह वचनप्रवृत्तिका कारण है। इस शकाके समाधानमे कहते हैं कि दोषसमूह भी वचनप्रवृत्तिका कारण नही है और इसी कारण यह दोष नही दिया जा सकता कि सर्वज्ञकी वाणी भी देश जातिका उल्लघन नही करती अर्थात् वाणी होनेके कारण प्रभुमें भी इच्छा रागद्वेषादिक दोष होते हैं, यह बात नहीं कही जा सकती क्योंकि दोष जातिसे प्रकर्षके साथ वाक्प्रवृत्तिके प्रकर्षका सम्बन्ध नहीं है और दोष जातिके अप्रकर्षसे साथ याने हीनता होनेके साथ वाणीमे हीनताका नियम, सम्बन्ध, व्याप्ति नही पायी जाती बुद्धि आदिककी तरह। जैसे कि बुद्धि और शक्तिकी उत्कृष्टता होनेपर वाणीमें उत्कृष्टता देखी जाती है और बुद्धि तथा शक्तिकी हीनता होनेपर वाणीमे भी निकृष्टता देखी जाती है। इस तरहसे दोष जातिके साथ वाणीमे प्रकर्ष और अप्रकर्षका सम्बन्ध नही है। बल्कि दोष जाति जिसमे प्र[illegible]र रूपमें पायी जाती है उस पुरुषमें वचनका उपकर्ष देखा जाता है। उस की वाणी तुच्छ सदोष और निम्न प्रकारकी निकलती है तथा जब दोष समूहका अप्रकर्ष [illegible]ा जाता है, जिसमें रागद्वेष [illegible] नहीं हैं, हीन हैं, अथवा रहे ही नही, वहाँ [illegible] वाणीका प्रकर्ष देखा जाता है। तब दोष जातिसे वक्ताकी वाणीका नियम [illegible] जाय, उसको ही हेतु कहा जाय सो बात सिद्ध नहीं होती। समग्र वक्ताओंमें दोष जातिका अनुमान किया जाय कि चूकि यह बोलता है इसलिए इसमें रागद्वेष [illegible] है यह अनुमान नही किया जा सकता। यहाँ ही देख लो, किसी किसी पुरुषके तो रागादिक दोष होनेपर भी यदि बुद्धि यथार्थ पदार्थका निश्चय कराने वाली है तो उसमें इस गुणके कारण वाणी सही निकलती है। यहाँ रागादिक दोषोंसे प्रयोजन साधारणरूपसे है और कोई कोई पुरुष ऐसे भी देखे गए हैं कि जो रागद्वेष नहीं करना चाहते लेकिन ज्ञानावरणका क्षयोपशम नही है विशेष बुद्धि यथार्थ पदार्थका निर्णय करने वाली बुद्धि नहीं है। तो देखो अयथार्थका निश्चय करनेका दोष वहाँ पाया जा रहा है। वहाँ असत्य वचन भी देखा जा सकता है। जिसको जिस विषयमें

कुछ मालूमात नहीं है, वह रागद्वेष न करके भी उस सम्बन्धमें यथार्थ नहीं बोल सकता है।

ज्ञानके प्रकर्षमें वाणीकी प्रकर्षताका समर्थन—उक्त कथनोंसे यही निर्णय करना कि ज्ञानके गुणसे वचनप्रवृत्तिमें गुण होता है और ज्ञानके दोषसे वचनप्रवृत्तिमें दोष आता है। विपक्षसे या रागद्वेषक होनेसे वचनमें गुण दोष नहीं माने गए हैं। ऐसा तो अनेक दार्शनिकोंने कहा भी है कि ज्ञानके गुणसे वचनप्रवृत्तिमें गुण होता है और ज्ञानके दोषसे वचनवृत्तिमें दोष होता है, तभी तो मदबुद्धि पुरुष चाहते हुए भी कि मैं अमुक शासनके सम्बन्धमें व्याख्यान करूं और फिर भी वे बोल नहीं पाते हैं। तो इन बातोंसे यह सब सिद्ध हुआ कि वचनप्रवृत्तिका कारण इच्छा नहीं है और यों प्रभु अरहंत बिना इच्छाके ही तत्त्वोपदेश करते हैं उनकी दिव्य ध्वनि खिरती है और उससे फिर शासनकी परम्परा चलती है। गणधर देव उस दिव्य ध्वनिको द्वादशाङ्गके रूपमें गूंथते हैं और उससे आचार्य शिक्षा ले लेकर शासनकी परम्परा चलाते हैं। तो प्रभु-प्रणीत जो शासन है वह शासन इष्ट शासन कहा गया है, सो इष्टपनेकी बात उपचारसे कही गई है अथवा वहाँ इष्टका अर्थ यह लगा लें कि सब प्राणियोंके लिए हितकारी और वस्तुतत्त्वके अनुरूप वाणीमें शासनमें प्रमाणसे बाधा नहीं आती।

अनेकान्तशासनकी प्रसिद्ध प्रमाणसे अबाधितता—अब "प्रसिद्धेन न बाध्यते" इस कारिकाके अंशका अर्थ करते हैं। भगवानका जो इष्ट शासन है वह प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधित नहीं होता है। प्रसिद्धका अर्थ है प्रमाणसे जो सिद्ध हो उसे प्रसिद्ध कहते हैं। किसी भी पदार्थमें बाधा दे सकने वाला वही हो सकता है जो प्रमाणसे सिद्ध हो। सो यह विशेषण परमतकी अपेक्षा कहा गया है। एकान्तवादी दार्शनिकोंकी जो बात प्रमाणसे असिद्ध है उससे भी बाधा नहीं आती। वस्तुतः एका-न्तवादी दार्शनिकोंका वक्तव्य अप्रसिद्ध है। अप्रसिद्ध होकर भी उससे बाधा नहीं आती है। जो प्रमाणसे सिद्ध है उसमें भी बाधा नहीं आती और जो परिकल्पित प्रमाण हैं, मन्तव्य हैं, एकान्तवादके धर्म हैं, उनसे भी बाधा नहीं आती। जैसे कि कुछ दार्शनिकोंने माना कि वस्तुमें केवल अनित्यत्व ही धर्म है। तो उनके इस अभिमत अनित्यत्व आदिक एकान्त धर्मके द्वारा भी बाधा नहीं आती। जैसे कि सर्वथा नित्यत्व धर्मके द्वारा भी बाधा नहीं आती। जैसे कि सर्वथा नित्यत्व धर्मके द्वारा अनेकान्त शासनका बाधक नहीं है। उसपर भी विशेषतामें विचार कर लीजिये। अनेकान्त शासनका कोई अनित्यत्वादि धर्मबाधक प्रत्यक्षसे नहीं है याने कोई कहे कि अनेकान्त शासनका बाधक अनित्यत्व धर्म है। तो वह प्रत्यक्षसे सिद्ध ही नहीं है सर्वथा नित्यत्व आदिक धर्मकी तरह। जैसे नित्यत्व एकान्त अनेकान्त शासनका बाधक नहीं है इसी प्रकार अनित्यत्व एकान्त भी अनेकान्त शासनका बाधक नहीं है। यह बात प्रत्यक्षसे भी समझ ली जाती है। हम अनेक पदार्थोंको स्थूल पदार्थोंको देखते हैं कि उनमें

नित्यत्व भी है और अनित्यत्व भी है। पर्यायरूपमे बदलते रहते हुए भी उनका सत्त्व बराबर प्रसिद्ध है।

क्षणिकवादमे तर्क प्रमाण न माना जानेसे व्याप्तिकी असिद्धताके कारण अनुमान प्रमाणसे भी अनेकान्तशासनकी अबाधता—शकाकार कहता है कि अनेकान्त शासनका बाधक अनित्यत्व धर्म अनुमानसे सिद्ध हो जायगा। उत्तरमे कहते कि जब तक नामका प्रमाण ही नही माना शकाकारने तो उसकी व्याप्ति ही सिद्ध नहीं हो सकती फिर अनुमान भी सिद्ध न होगा तो असिद्ध अनुमान किसीका बाधक कैसे हो सकता है ? यदि यह कहो कि तर्क नामके प्रमाणके बिना भी प्रत्यक्ष से ही व्याप्तिकी सिद्धि हो जायगी सो बात नही है। क्षणिकवादियोका प्रत्यक्ष अग्नि और धूममे अथवा क्षणिकत्व और सत्त्वमे याने साध्य साधनमे सर्वरूपसे व्याप्ति जानने के लिए समर्थ नही है, क्योकि प्रत्यक्ष तो मुख्यतया क्षणिकवादियोने माना है निर्विकल्प। सो जो निर्विकल्प प्रत्यक्ष है वह विचारक नहीं हो सकता, क्योकि निर्विकल्प प्रत्यक्ष है वह विचारक नही हो सकता, क्योकि क्षणिकवादियोका परिकल्पित प्रत्यक्ष याने दर्शन निर्विकल्प ही तो है। वह विकल्प विचार तर्कणायें नहीं कर सकता है। और, जो विचारक नही है वह व्याप्तिका कैसे ग्रहण करेगा ? साथ ही साथ निर्विकल्प प्रत्यक्ष सन्निहित विषय वाला है क्योकि वह विप्रकर्षी पदार्थका तो ग्रहण करता नहीं। जो सम्मुख हो, इंद्रिय सन्निधानमे हो उसको ही तो प्रत्यक्ष विषय करता है। तब निर्विकल्प प्रत्यक्ष साध्य साधनके समस्त रूपोसे व्याप्ति जाननेके लिये समर्थ नही है।

योगिप्रत्यक्षसे भी व्याप्तिकी असिद्धि व अनुमानकी अनर्थकता—यदि कहो कि हम लोगोका प्रत्यक्ष यदि सन्निहित विषय वाला है तो योगियोका प्रत्यक्ष तो सन्निहित विषय वाला नही है। उस योगप्रत्यक्षसे साध्य साधनकी समस्त रूपसे व्याप्ति मानली जायगी तो उत्तरमे कहते हैं कि हम लोगोका प्रत्यक्ष साध्य साधन की व्याप्तिका ग्रहण करने वाला मानना चाहिए और उससे फिर व्याप्तिकी समीचीनता करना चाहिए।

सो हम लोगोका प्रत्यक्ष तो साध्य साधनकी व्याप्तिका ग्रहण करता नही। योग प्रत्यक्षकी बात आप कहते हो सो उनसे व्याप्ति और अनुमानकी प्रयोजकता नही बनती, क्योंकि योगियोंने प्रत्यक्षसे जान लिया साध्यसे साधनकी व्याप्ति तो उससे हम लोगोके अनुमान ज्ञानमें क्या आया ? अनुमान ज्ञान करते जा रहे हैं हम लोग तो हम ही लोगोंको तो व्याप्तिका ग्रहण होना चाहिए। और दूसरी बात यह है कि योगियोको तो सब कुछ प्रत्यक्ष है, उनको अनुमान और व्याप्ति ज्ञानका प्रयोजन ही नही है, तब अनुमान व्यर्थ ही हुआ। देखिये! योगियोके प्रत्यक्षके द्वारा एकदेशरूपसे या समस्तरूपसे जब समस्त साध्य साधन एकदम साक्षात् कर लिया गया है तब उसमे

न उन्हें संशय है न विपर्यय है, न अनध्यवसाय है। तो समारोपके दूर करनेके लिए तो अनुमानका प्रयोग होता था लेकिन अब उस समारोपको दूर करनेका वहाँ प्रसग ही नहीं। जब योगियोंने समस्त पदार्थोंको साक्षात्कार कर लिया तो समारोप कहाँ रहा? जिसके विच्छेदके लिए अनुमानका उपयोग बनाया जाय? तो यो योगिप्रत्यक्षसे साध्य साधनकी व्याप्तिका ग्रहण मानेंगे तो अनुमान प्रयोग व्यर्थ हो जायगा और, हम लोगों का प्रत्यक्ष व्याप्तिका ग्रहण कर नहीं सकता, क्योंकि जो निर्विकल्प प्रत्यक्ष है वह तो अविचारक है और सन्निधानका ही विषय करने वाला है।

सविकल्प प्रत्यक्षसे भी व्याप्तिकी सिद्धिका अभाव—अब रही सविकल्प प्रत्यक्षकी बात सो सविकल्प प्रत्यक्ष भी निर्विकल्प प्रत्यक्षकी तरह विचारक नहीं है, क्योंकि निर्विकल्प प्रत्यक्षसे ही सविकल्प प्रत्यक्षकी उत्पत्ति क्षणिकवादियोंके यहाँ मानी गई है। और, जिसका जैसा कारण है उस कारणके गुणोंका अन्वय उत्तर कार्योंमें भी पहुँचता है, सो सविकल्प प्रत्यक्ष भी पूर्व और उत्तर विचारसे रहित है। साथ ही साथ यह भी सविकल्प प्रत्यक्षमें सिद्ध होता है कि वहाँ वचनालापका संसर्ग भी नहीं बन सकता। क्योंकि सविकल्प ज्ञान निर्विकल्पसे ही तो उत्पन्न हुआ है। शब्द के सम्बन्धसे ही तो साध्य साधन व्याप्तिका ग्रहण करना बताया है सो शब्दका संसर्ग भी नहीं सम्भव हो सकता। इस बातको आगेकी कारिकामें विशेषरूपसे कहेंगे और बहुत मोटे रूपसे यह भी अंदाज किया जा सकता है कि जहाँ ज्ञान आत्मा सब कुछ क्षणिक ही है तो क्षण क्षणमें नष्ट होने वाले ज्ञानोंमें पूर्व उत्तरका विचार ही कैसे चल सकता है? साथ ही सविकल्प ज्ञान भी सन्निहितका विषय करने वाला है जो देशसे विप्रकृष्ट है मेरु पर्वत द्वीप समुद्र आदिक उनको भी सविकल्प ज्ञान ग्रहण नहीं करता। जो कालसे विप्रकृष्ट हैं राम रावण आदिक अति भूतकालके पुरुष उनको भी सविकल्प ज्ञान विषय नहीं करता और स्वभावसे विप्रकृष्ट है परमाणु आदिक जो अतिसूक्ष्म हैं उनको भी सविकल्प ज्ञान विषय नहीं करता। तो जब समस्त रूपसे व्याप्तिके ग्रहण करनेमें समर्थ नहीं है निर्विकल्प व सविकल्प प्रत्यक्ष तब उससे अनुमान प्रमाण कैसे बनाया जा सकता है तो अनुमान प्रमाण भी बाधक सिद्ध नहीं होता अनेकान्त शासनका।

अनुमान प्रमाणसे व्याप्तिकी सिद्धि करनेपर दोषापत्ति—शंकाकार कहता है कि अनुमान प्रमाण तो समस्त रूपसे व्याप्तिका ग्रहण करने वाला बन जायगा। अर्थात् अनेकान्त शासनका बाधक तो है अनुमान प्रमाण और अनुमान प्रमाण में जो व्याप्ति बनाना आवश्यक है उस व्याप्तिको बना देगा अनुमान प्रमाण। तो ऐसा कहनेमें उत्तर देते हैं कि इस मन्तव्यमें अनवस्था दोष आयगा क्योंकि व्याप्तिका ग्रहण करने वाला जो दूसरा अनुमान प्रमाण बनाया गया वह अनुमान प्रमाण भी तो व्याप्तिके ग्रहण पूर्वक ही अपना काम करेगा सो दूसरे अनुमानकी व्याप्तिका ग्रहण करने

के लिए तृतीय अनुमानकी अपेक्षा होगी। फिर तृतीय अनुमानमे भी व्याप्ति ज्ञान पूर्वक ही बात बनेगी। ऐसी उस व्याप्तिके ग्रहण करनेके लिये फिर अन्य अनुमानकी आवश्यकता होगी। इस कारण इसमे अनवस्था दोष आता है। कहीं भी विश्राम नही हो सकता। अनवस्था बनी रहेगी। यदि कहो कि उस ही अनुमानसे व्याप्तिका ग्रहण कर लिया जायगा याने जो अनुमान अनेकान्त शासनका बाधक होगा वही अनुमान अपने अनुमानमें होने वाली व्याप्तिका ग्रहण भी कर लेगा तो इसमे इतरेतराश्रय दोष है। जब उस अनुमानकी व्याप्तिका ग्रहण हो तब अनुमान बने। जब अनुमान बने तब व्याप्तिका ग्रहण बने। तो इस तरह जिसकी व्याप्ति प्रसिद्ध नहीं है ऐसा एकान्तवादियोका अनुमान अनेकान्त शासनका बाधक भी नहीं हो सकता। बाधक तो क्या उनका खुद माना गया अनित्यत्व आदिक एकान्त धर्मका साधक भी नही हो सकता, कोई प्रमाण। तो पहिले वे अपने सिद्धान्तका ही तो साधन करलें। वह भी उनके लिये सम्भव नही हैं। फिर सर्वथा एकान्त अनेकान्त शासनके बाधक हैं यह बात किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नही हुई।

तर्क प्रमाण माने बिना स्वेष्ट शासनकी सिद्धिकी अशक्यता व तर्क प्रमाणकी सिद्धि—क्षणिकवादियोने दो प्रमाण माने हैं प्रत्यक्ष और अनुमान सो न निर्विकल्प प्रत्यक्ष अनेकान्त शासनका बाधक बन सका, न उनका अनित्यत्व धर्म अनेकान्तशासनका बाधक प्रत्यक्षसे सिद्ध हो सका न सविकल्प प्रत्यक्ष बाधक बन सका और न अनुमानसे बाधकता सिद्ध हो सकी कारण कि उनके यहाँ व्याप्तिको ग्रहण करनेका उपाय ही नही है। किन्तु स्याद्वादियोके कोई दोष नही आता। क्योंकि स्याद्वादियोका परोक्ष प्रमाणके अन्तर्भूत तर्क नामक प्रमाणसे साधन साध्यकी व्याव्याप्तिका सम्बन्ध माना है। अतएव स्याद्वाद शासनमे अनुमान प्रमाणकी सिद्धि हो जाती है। तर्क नामका प्रमाण विचारक है। विचार द्वारा सर्वत्र साध्य साधनकी व्याप्तिका ग्रहण करते हैं, पर क्षणिकवादियोके यहाँ व्याप्ति ग्रहणका उपाय न मानने से अनुमान प्रमाणकी ही सिद्धि नही है। तर्क ज्ञान विचारक किस प्रकार है और व्याप्तिका ग्राहक कैसे बनता है, इस सम्बन्धमे अब कहते हैं कि प्रत्यक्ष और अनुपलम्भ से जिसका ज्ञान होता है, जो मतिज्ञानके भेदरूप परोक्षभूत तर्कज्ञानका आवरण करने वाला कर्म है उसका क्षयोपशम होनेसे और वीर्यान्तराय कर्मका क्षयोपशम होनेसे जो उत्पन्न हुआ है उस तर्क ज्ञानमें यह विचारकता है कि वह निर्णय बनाता कि जितना कुछ धूम है वह सब अग्निसे उत्पन्न हुआ होता है। अथवा क्या ऐसा भी है कि कोई धूम जो अग्निसे उत्पन्न हुआ नही होता। ऐसा शब्दयोजनापूर्वक विचार करता है और उस ही विचारके प्रसगमें यह निर्णय बना लेता है तर्कज्ञान कि जितना कुछ धूम है वह अग्निजन्य है। तो इस तर्क ज्ञानने तीन कालवर्ती समस्त साध्य साधनके विषयमे निर्णय बनाया है। ऐसा तर्क ज्ञान व्याप्तिका ज्ञान करानेमें समर्थ ही है। तर्कज्ञान स्वय व्याप्तिका परिज्ञान कर लेता है। उसमें यह प्रश्न नही उत्पन्न हो सकता

कि उस व्याप्तिका ग्रहण किसी अन्य ज्ञानसे होगा । तर्क ज्ञान ही व्याप्ति ग्रहण पूर्वक हुआ है व्याप्ति ग्रहणको लिए हुये है प्रत्यक्षकी तरह । जैसे प्रत्यक्षका जो विषय है वह अपने विषयको जानकारी करानेके लिए किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता इसी प्रकार तर्कज्ञान स्वय व्याप्तिका ग्रहण करनेका विषय रखता है अतएव वह किसी अनुमान प्रमाणकी या अन्य तर्क ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखता । इसी कारण उसमे अनवस्थाका दोष नहीं आता । तर्क ज्ञान स्वय सम्वादक है और सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय इन सम्वादकोका निराकरण करने वाला है अतएव प्रमाण स्वरूप है । जैसे कि प्रत्यक्ष सम्वादक है । जो पदार्थ जैसा है वैसा जानने वाला है उसके मध्य कोई विवाद नहीं रहता है । और फिर प्रत्यक्षसे जानकर वहाँ सशय विपर्यय, अनध्यवसाय का अवसर नहीं है । इसी प्रकार तर्क ज्ञान भी सम्वादक है और तर्क ज्ञानका जो विषय है समस्त साध्य साधनको व्याप्ति समझ जाना उसमें सशय, विपर्यय, अनध्यवसाय नहीं हैं इन दोषोंका निराकरण करते हुए ही तो तर्कज्ञान प्रकट होता है अतएव तर्क नामक ज्ञान प्रमाणभूत है । जो लोग तर्क प्रमाणको नहीं मानते हैं उनके यहाँ अनुमान प्रमाण बन ही नहीं सकता, क्योंकि अनुमानमें यह निर्णय होना बहुत आवश्यक है कि साध्य और साधनका परस्परमें अविनाभाव सम्बन्ध है । इस अविनाभाव सम्बन्धको कौन बतावेगा ? प्रत्यक्ष तो अविचारक है निर्विकल्प है, उस का तो यह विषय ही नहीं और अनुमान प्रमाण व्याप्तिके ज्ञानपूर्वक होता है । तो तर्क ज्ञानको प्रमाण माने बिना अनुमान प्रमाण बन ही नहीं सकता है । तर्क और अनुमानमें सशय, विपर्यय, अनध्यवसायके निराकरण करनेका सामर्थ्य है । तर्कसे सम्बन्धका परिज्ञान माननेपर सशय विपर्यय और अनध्यवसाय ठहर नहीं सकते ।

क्षणिकवादाभिमत दर्शनके अधिगमत्वकी सिद्धि—क्षणिकवादियोंके प्रति कहा जा रहा है कि प्रत्यक्षसे अनेकान्तदर्शनमें बाधा देनेकी बात अभी जाने दो, प्रथम तो क्षणिकवादी स्वाभिमत प्रत्यक्षकी ही सिद्धि करलें । क्षणिकवादियोंका अभिमत प्रत्यक्ष [illegible] ही सिद्ध नहीं होगा । निर्विकल्प ज्ञान कोई अधिगम है क्या ? जिस ज्ञानमें कोई निर्णय नहीं निश्चय नहीं वहाँ समारोप भी नहीं हो सकता, समारोपके निवारणकी बात तो दूर रहो, फिर है क्या कि जो अधिगम होता है वह निश्चयात्मक होता है । यहाँपर व्याप्तिका ज्ञान करना अधिगम है तो [illegible] सविकल्पात्मक ही हो होगा । विचार करके अन्वय व्यतिरेक द्वारा प्रत्यक्ष अनुपलम्भ द्वारा सर्व साध्य साधनका परामर्श करके तर्कज्ञान उत्पन्न होता है । क्योंकि स्वव्यवसायात्मताकी अनुत्पत्तिमें दर्शन होनेपर भी साधनान्तरकी अपेक्षा रखनेसे दर्शनकी अप्रमाणता सन्निकर्ष के समान ही है । जैसे कि सुषुप्त मनुष्यका चेतन । सुषुप्त मनुष्यके चेतनसे स्वय प्रमाणता नहीं है, वह साधनान्तरका अपेक्षी है । इसी प्रकार दर्शन निर्विकल्प स्वव्यवसायात्मक बननेके लिए सविकल्प ज्ञानकी अपेक्षा रख रहा है, तो जो अपने ज्ञानके लिए निश्चयके लिए साधनान्तरकी अपेक्षा रखता हो वह कैसे प्रमाण हो सकता है और

संशय आदिक दोषोंका विच्छेदक होसकता है। सन्निधानका अर्थ है इन्द्रिय और पदार्थों का सन्निकर्ष वह स्वय अप्रमाण है, ऐसा स्वय क्षणिकवादी कहते हैं। तो साधनान्तर की अपेक्षा ही तो रखी फिर दर्शनने प्रत्यक्षमे, सो जैसे इन्द्रिय अथवा सन्निकर्ष साधनान्तरकी अपेक्षा रखता है सो सन्निकर्ष प्रमाण नही है। इस ही प्रकार दर्शन प्रमाणभूत नही है। जैसे कि सुसुप्त मनुष्यका चेतन स्वय संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय दोषका व्यवच्छेदक न होनेसे अप्रमाण है इसी प्रकार निर्विकल्प प्रत्यक्ष दर्शन भी समारोपका व्यवच्छेदक न होनेसे अप्रमाण है। जो जो प्रतिभास साधनान्तरकी अपेक्षा रखते हैं वे स्वय अप्रमाण हैं। सन्निकर्ष भी तो स्वय समारोपका निराकरण करने वाला स्वय नही है, क्योंकि साधनान्तरकी अपेक्षा रखता है। तो जैसे सन्निकर्ष स्वय अप्रमाण है साधनान्तरकी अपेक्षा रखनेके कारण। उसी प्रकार क्षणिकवादमें अभिमत प्रत्यक्ष भी अप्रमाण है, क्योंकि वह भी स्वका निश्चय करनेके लिए साधनान्तरकी, सविकल्प ज्ञान की अपेक्षा रखता है।

निर्विकल्प दर्शनमे प्रमाणत्वके माने जा सकनेकी अशक्यता—अब यहापर शकाकार कहता है कि समारोपका जो विच्छेदक है ऐसे निश्चयात्मक सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न तो करता है निर्विकल्प ज्ञान, इस कारण निर्विकल्प दर्शन प्रमाणभूत हो जायगा अर्थात् निर्विकल्प ज्ञान स्वय तो समारोपका विरोधी नही है किन्तु समारोपका निराकरण करने वाला सविकल्प ज्ञान है ना, और उस सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न करता है यह दर्शन, निर्विकल्प प्रत्यक्ष। इस कारणसे निर्विकल्प ज्ञान याने मुख्य प्रत्यक्ष (दर्शन) प्रमाणभूत हो जायगा। इस शकाके समाधानमें कहते हैं कि इस ही पद्धतिसे फिर सन्निकर्ष भी प्रमाणभूत हो जावो ! क्षणिकवादी दर्शनको तो प्रमाणभूत मानते हैं, पर सन्निकर्षको प्रमाणभूत नहीं मानते, लेकिन प्रमाणताके लिए निश्चयपनकी आवश्यकता होती है और उस सम्बन्धमे जैसे सन्निकर्ष असमर्थ है इसी प्रकार दर्शन भी असमर्थ है। तो यदि यह हेतु देकर कि दर्शन स्वय निश्चयात्मक नहीं है, लेकिन निश्चयात्मक सविकल्प ज्ञानको उत्पन्न करने वाला है इस कारण प्रमाणभूत है, तो यही बात सन्निकर्षमें भी लगावो ! क्या ? कि सन्निकर्ष स्वय अनिश्चयात्मक है लेकिन सन्निकर्ष निश्चयात्मक ज्ञानका उत्पन्न करने वाला है। अतएव उसे प्रमाण मान लीजिए। यद्यपि सन्निकर्ष प्रमाणभूत नही है लेकिन शकाकार सन्निकर्ष जैसे प्रमाण नही है उस तरह दर्शनको अप्रमाण नही मानता, प्रमाण मानता है। तब अनिष्ट प्रसगके लिए यह उदाहरण दिया जा रहा है। यदि कहो कि सन्निकर्ष तो प्रमितिके साधकतम नही है। प्रमिति कहते हैं ज्ञानक्रियाको। सन्निकर्ष ज्ञानक्रियामें साधकतम नही है अतएव उसमे प्रमाणता नही आ सकती। अत. सन्निकर्षकी भाई दर्शनकी भी हर बातमें समानता लाकर अप्रमाणता लायें यह युक्त नहीं है। इस शकाके समाधानमे यह पूछा जा रहा है कि कैसे क्षणिकवादियोने निश्चय किया कि सन्निकर्ष साधकतम नही है। यदि कहो कि अचेतन होनेसे निश्चय किया गया है।

सन्निकर्ष ज्ञप्तिक्रियाके प्रति साधकतम नहीं है अचेतन होनेसे घट पट आदिक पदार्थोंकी तरह। तो उसका उत्तर यह है कि इस प्रकार दर्शन भी साधकतम न रहेगा, क्योंकि देखिये ! यह भी नियम नहीं है कि जो चेतन हो वह साधकतम ही हो। यदि चेतनत्वके नाते ही किसीको प्रमिति क्रियामें साधकतम घोषित कर दिया जाय तो चेतन तो यह सुसुप्त मनुष्य भी है। वह क्यों न ज्ञप्ति क्रियामे साधकतम बन बैठेगा। अतएव दर्शन स्वयं प्रमाणभूत ही नहीं है, वह समारोपका व्यवच्छेद क्या करे ?

यद्भावाभावहेतुक अर्थपरिच्छिन्नताकी नीतिसे दर्शनकी प्रमाणता माननेपर सन्निकर्षमे भी प्रमाणत्वका प्रसग—क्षणिकवादमें माना गया निर्विकल्प प्रत्यक्ष सन्निकर्षकी तरह अप्रमाण है। इस प्रकरणमें निर्विकल्प दर्शनके प्रमाणपना साबित करनेका प्रयास शंकाकार कर रहे हैं और उसी प्रयासमें कहते हैं कि जिसके होनेपर पदार्थ परिच्छिन्न हुआ, अवगत हुआ, ऐसा व्यवहार किया जाता है और जिसके अभावमें पदार्थ अपरिच्छिन्न है ऐसा व्यवहार किया जाता है वह दर्शन साधकतम है। इस शंकाका समाधान करते हैं कि तब तो सन्निकर्ष भी प्रमिति क्रियामें साधकतम बन जाय, क्योंकि सन्निकर्षके भावमे तो अर्थ परिच्छिन्न होता है ऐसा व्यवहार होता है और सन्निकर्षके अभावमें अर्थ परिच्छेदन नहीं होता तो इस प्रकारकी साधकतमता कि जिसके होनेपर अर्थ परिच्छेदन हो, जिसके न होनेपर अर्थ परिच्छेदन न हो यह बात सन्निकर्षसे भी देखी जाती है। सन्निकर्षके सद्भावमें अर्थ परिच्छेदनका होना सन्निकर्षके अभावमे अर्थपरिच्छेदनका न होना यह बात अप्रतीत नहीं है। और अर्थपरिच्छेदनकी उत्पत्तिके सिवाय अन्य और कुछ अर्थकी परिच्छिन्नता नहीं है। अतएव जैसे कि जिसके सद्भावमें अर्थपरिच्छिन्न होता है और अभावमें अर्थ परिच्छिन्न नहीं होता इस दर्शनको साधकतम मानते हो तो ऐसे ही सन्निकर्षको साधकतम मान लीजिए।

निर्विकल्प प्रत्यक्षमे सविकल्प (निश्चयात्मक) ज्ञानकी उत्पत्ति होने के कारण निर्विकल्प प्रत्यक्षमे प्रमाणता माननेपर सन्निकर्षमे भी प्रमाणत्व का प्रसग—अब शंकाकार कहते हैं कि निर्विकल्प दृष्टि (निर्विकल्प प्रत्यक्ष) होनेपर अर्थका परिच्छेदन निश्चयात्मक अर्थ परिच्छेदनके व्यवहारका कारण बनता है और यदि निर्विकल्प दृष्टि न हो तो निश्चयात्मक जो सविकल्प प्रत्यक्ष है उस सविकल्प ज्ञानमें भी यह अर्थ परिच्छेदन करता है, यह व्यवहार नहीं बन सकता। अर्थात् किसी भी प्राणीका सर्वप्रथम प्रत्यक्षकी विधिमे निर्विकल्प दर्शन होता है उसके पश्चात् उसका सविकल्प ज्ञान होता है। तो सविकल्प ज्ञानमें जो अर्थ परिच्छेदनकी बात जानी गई उसका कारण निर्विकल्प दृष्टिमे साधकतमता मानी गई है। इस शंकाके समाधानमे कहते हैं कि यह भी योजना समीचीन नहीं है। अर्थपरिच्छेदनकी उत्पत्तिकी अविरुद्ध तो सन्निकर्षसे भी है। सन्निकर्षसे भी अर्थपरिच्छेदन होता है, तो सन्निकर्षको

अनुमान सिद्धिमे कोई कठिनाई नही पडती है तर्क प्रमाण है । क्योंकि अपने स्वार्थका अधिगम करनेरूप फल इसमें पाया जाता है । प्रमाणका फल बताया है अपने विषय का अधिगम कर लेना । अज्ञाननिवृत्ति तो साक्षात् फल बताया है। स्वार्थका अधिगम है तर्क प्रमाणसे यह बात अभी सिद्ध कर ही दी गई और भी युक्ति सुनो ! तर्क ज्ञान प्रमाण है क्योंकि समारोप व्यवच्छेदक होनेसे । अर्थात् तर्कज्ञान प्रमाण है क्योंकि वह समारोप व्यवच्छेदक है । अथवा तर्क ज्ञान प्रमाण है सम्वादक होनेसे अनुमान आदिककी तरह । इस सब कथनसे यह सिद्ध होता है कि स्याद्वादियोंके यहाँ व्याप्ति सिद्ध है और उससे अनुमानकी सिद्धि है परन्तु एकान्तवादियोंके यहाँ व्याप्ति सिद्ध नही है, अतएव अनुमान भी सिद्ध नही होता। जब अनुमान सिद्ध नहीं होता एकान्तवादमें तो सर्वथा एकान्तवादियोंके द्वारा अनेकान्त शासनमे बाधाकी कल्पना करना अयुक्त है । इस प्रकार प्रमाण सिद्धसे भी अनेकान्त शासनमें बाधा नही है। और अप्रसिद्धसे भी अनेकान्त शासनमे बाधाकी कल्पना नही की जा सकती है । यदि अप्रमाण सिद्ध वचनसे बाधा कल्पित कर दी जाय तो उन हीका, अपने मतका भी नियम नही बन सकता और तब यह बात बिल्कुल ठीक ही कही गई कि इस कारिकामें जो "प्रसिद्धेन न बाध्यते" यह विशेषण दिया है वह परमतकी अपेक्षासे दिया है वस्तुत प्रमाणसे बाधा क्या आये अप्रसिद्ध प्रकाराणसे भी बाधा नहीं आती ।

युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्य होनेसे निर्दोष सर्वज्ञ अरहत प्रभुमे आप्तत्व की सिद्धि—जो आशका आरेकामें की गई थी, उन सबका निराकरण हो जानेसे यह भी समझ लेना चाहिए कि भट्टने जो अपने सिद्धान्तमें यह कहा है कि कोई मनुष्य सर्वज्ञ है अथवा असर्वज्ञ है इसके लिए जो साधन दिया है वह प्रतिज्ञा मात्र है, सो बात अयुक्त है । सर्वज्ञत्वकी सिद्धि भली प्रकार कर दी गई है और उससे यह सिद्ध किया गया है कि चूँकि भगवान अरहत युक्ति और शासनके अविरुद्ध वचन कहनेवाले हैं और सर्वज्ञत्वकी सिद्धिमें कोई बाधक प्रमाण उपस्थित होता ही नहीं है अतएव सर्वज्ञ हैं और वीतराग हैं । जो प्रकरण यह चल रहा था कि सर्वज्ञ तो सामान्यतया सिद्ध हो गया लेकिन वह सर्वज्ञ अरहत भगवान ही हैं, यह निश्चय कैसे किया गया ? उसके उत्तरमें यह छठवी कारिका कही गई है कि ऐसे सर्वज्ञ और वीतराग हे अरहत आप ही हो ! क्योंकि आप निर्दोष हो ! प्रभु निर्दोष हैं यह बात सिद्ध की गई है इस हेतुसे कि हे प्रभो ! अरहत आप ही निर्दोष हैं, क्योंकि आपका उपदेश युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध है । प्रभुका उपदेश युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध है यह बात इस हेतु से सिद्ध की गई कि आपका इष्ट शासन, आपका उपदेश किसी भी प्रसिद्ध प्रमाणसे बाधित नही होता है, इस कारण हे अरहत देव ! तुम ही महान हो और मोक्ष मार्गके प्रणेता हो । आपसे अतिरिक्त अन्य कोई एकान्तवादका आश्रय देने वाला कोई सर्वज्ञ नही है । अब बताते हैं कि अनेकान्त शासनसे विरुद्ध सर्वथा एकान्तवादियोंका माना गया शासन कैसे बाधित होता है ? अब इस विषयको आगेकी कारिकामें कहेंगे । ●

आप्तमीमांसा-प्रवचन

[चतुर्थ भाग]

●

प्रवक्ता

[अध्यात्मयोगी पूज्य श्री १०५ मनोहर जी वर्णी महाराज]

●

त्वन्मतामृतबाह्याना सर्वथैकान्तवादिनाम् ।
आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्टं दृष्टेन बाध्यते ॥ ७ ॥

●

आप्तमीमासा ग्रन्थकी रचनाकी आवश्यकता—यह समन्तभद्राचार्य द्वारा रचित आप्तमीमासा नामक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थके रचनेकी समन्तभद्राचार्यको आवश्यकता क्यो जची इसका कारण यह है कि यह ससार दु खमय है। अनेक योनियो मे यह जीव अज्ञानसे दु.खी होता हुआ जन्ममरण कर रहा है। एक इन्द्रिय दो इन्द्रिय आदिक जीव बडे असहाय हैं। इनका कोई रक्षक नहीं है। पञ्चेन्द्रिय भी हुए और पशु पक्षी जैसे पर्याप्तक भी हुए तो भी देखा जा रहा है कि इन्हे लोग बडी निर्ममता से प्राणविहीन कर देते हैं। पक्षियोके दोनो पैर बांध देते, अब वे बेचारे स्थावरोकी तरह पडे हुए हैं कही भाग नही सकते, जीवित प्राणियोपर छुरी, तलवार आदि चला दिये जाते हैं। कितना घोर दु ख है, जिनका वर्णन कोई जिह्वासे नहीं कर सकता। नरक आदिकके दु ख तो असह्य ही है। तो यह ससार दु खमय है। इन सब दु खोसे छूटना तभी बन सकता है जब कि यह जीव जन्ममरणसे मुक्त हो जाय। ससारके सकटोंसे छुटकारा पा लेनेका उपाय कर लेना इस मनुष्यभवमे अति आवश्यक है। सार भी है कुछ तो यही एकमात्र सार है इस मनुष्यभवमे कि संसार सकटोसे मुक्ति पानेका उपाय बनालें। जब कोई विवेकी ससार सकटोसे छूटनेके उपायमे चलना चाहता है तो उसे कोई ऐसा उत्कृष्ट शासन मिलना चाहिए जिसमें अपने आत्माको शासित करके निर्विकल्प स्थिति प्राप्त कर सके। तो ऐसा शासन कौन हो सकता है उसकी परीक्षा भी आवश्यक है। और उत्कृष्ट शासन नही हो सकता है जिसका कि मूलप्रणेता निर्दोष और सर्वज्ञ हो। जिसमे दोष हो वह यथार्थ शासन कैसे बना सकता है ? जो अल्पज्ञ हो वह भी यथार्थ बात कैसे निर्बाध कह सकता है ? तो

उत्कृष्ट शासनपर चलनेके लिये निर्णय करना आवश्यक हो गया कि कौन शासन उत्कृष्ट है जिसका सहारा लेकर यह आत्मा सकटोंसे मुक्ति पा ले। और उनके निर्णय के लिए आप्तके निर्णयकी अति आवश्यकता होती है। सो आप्तनिर्णयके लिये इस ग्रन्थ की रचना करना आवश्यक प्रतीत हुआ। यहाँ उस ही आप्तकी मीमांसा की जा रही है।

प्रकृतकारिकाका पूर्वनिदिष्ट सम्बन्ध एव अर्थ—कोई इस कारण आप्त महान नहीं हो सकता कि उसके पास बाहरी चमत्कार हो रहे हों। इससे भी कोई महान नहीं हो सकता कि शरीरमें निर्मलता निर्दोषताके अतिशय पाये जा रहे हों, इस कारण भी कोई महान नहीं हो सकता कि उसने शासन चलाया है, तीर्थ चलाया है पर हाँ तीर्थ जिसने उत्तम चलाया हो, जो ससारी जीवोंको ससार सागरके किनार पहुँचा सके वह कोई गुरु हो सकता है। पर ऐसा आप्त कौन है ? इस सम्बन्धमें पहिले कुछ वर्णन आया है। वही आप्त हो सकता है जिसमें दोष एक भी न हो और ज्ञान परिपूर्ण प्रकट हो। क्या कोई जीव पूर्णतया निर्दोष हो सकता है अथवा कोई आत्मा पूर्णतया सर्वज्ञ हो सकता है इस विषयमें अभी विस्तारसे वर्णन किया गया है। उस ही प्रसगमें उसकी सिद्धिके बाद जब यह प्रश्न होता है कि हाँ सर्वज्ञ तो कोई है लेकिन यह सर्वज्ञ वीतराग अरहन्त ही है, यह कैसे निश्चय किया जा सकता है। इसके उत्तर में कहा गया कि अरहन्त ही निर्दोष और सर्वज्ञ हैं, क्योंकि उनके वचन युक्ति और शासनसे अविरुद्ध हैं। कैसे अविरुद्ध है इस विषयमें सकेत दिया कि अर्हत शासन, अनेकान्त शासन प्रसिद्ध अप्रसिद्ध किसी भी बातसे बाधित नहीं होता है। बल्कि एकान्तवादियोंके शासन विरुद्ध होते हैं। तो इस कारिकामें इस बातको कहा जा रहा है कि एकान्तवादियोंका शासन कैसे बाधित है जिससे कि यह परखा जा सके कि अनेकान्त शासन अबाधित है उसके उत्तरमें यह कारिका अवतरित हुई है। कारिका का अर्थ है कि तुम्हारे मतरूपी अमृतसे बाह्य जो सर्वथा एकान्तवादी जन हैं जो कि मैं आप्त हू, मैं आप्त हू इस प्रकारके अभिमानसे दग्ध है उन एकान्तवादियोंका अपना अपना अभिमत एकान्त तत्त्व प्रत्यक्षसे बाधित होता है।

प्रकृत कारिकाका शब्दार्थपूर्वक भावार्थ—हे प्रभो ! आपका मत है अनेकान्तात्मक वस्तु और उस वस्तुका ज्ञान वही अमृत है। अनेकान्तात्मक वस्तुका सम्यग्ज्ञान अमृत क्यों है कि यह ज्ञान अमृतका कारण है। अमृत नाम है मोक्षका। जो मरे नहीं, जिसका मरण नहीं, जिसका कभी विनाश नहीं उसको अमृत कहते हैं। लोग अमृतके सम्बन्धमें कुछसे कुछ कल्पनायें किया करते हैं। होगा कोई अमृत पानी रसायन अथवा आम्रादिक फल जैसा। लेकिन, वह अमृत क्या है ? पौद्गलिक परिणमन है तो स्वय विनाशीक है, और उसके भक्षणसे पर्यायमें क्या अमरता आयगी ? अमृत तो वास्तवमें मोक्षतत्त्व है जिसका कभी विनाश नहीं होता, उस अमृतस्वरूप मोक्षका

मे भी देखते हैं कि किसी भी वाक्यका अर्थ विधि, प्रतिषेधरूपसे लगता है तो उसमें निश्चय बनता है। जैसे कोई कहता है कि मैं सत्य बोलता हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि मैं सच बोलता हू झूठ नही बोलता हूँ। कुछ भी वाक्य बोला जाय उसकी दृढ़ता विधि प्रतिषेध दोनों दृष्टियोंसे बनती है। पदार्थ कोई सत् है तो वह किसी दृष्टिसे सत् है। जिस दृष्टिसे सत् है उस दृष्टिको छोड़कर अन्य दृष्टिसे यदि असत् न हो तो वह सत् नहीं रह सकता तो कोई भी पदार्थ रूपान्तरसे विकल नहीं है सत् असत्व करके सहित है। नित्य पदार्थ अनित्य धर्मसे सहित है। कोई भी एकान्त चाहे सत्वका एकान्त हो, नित्यका हो अनित्यका हो वह रूपान्तर विकल है अत असत् है। अतस्तत्व सम्वेदन ज्ञान भी अनेकान्तात्मक है। बहिस्तत्व स्कंध पुद्गल आदिक पदार्थ ये भी अनेकान्तात्मक हैं, फिर कोई पुरुष एकान्तवादकी हठ करे तो उसकी हठ युक्त नहीं है। एकान्तवादी भी कथनमें अनेकान्त पद्धतिका सहारा लेते हैं जैसे किन्हीं एकान्तवादियोंने चित्र ज्ञान माना है कि जिसमें नील पीत आदिक अनेक आकार प्रतिभासित हैं तिसपर भी वह एक है तो देखिये! वह ज्ञान एकानेकात्मक मान लिया गया ना। यो ही कथंचित् जिसमें विशेष सकीर्ण नही फिर भी एक रूप है ऐसा ज्ञान सुख दर्शन आदिकसे तन्मय चेतन कोई है। और स्कंध जो प्रत्यक्ष नजर आते हैं अनेक वर्ण सस्थान स्पर्श रस आकार आदिक अनेक धर्मोंसे तन्मय दृष्टिगत हो रहे हैं, इससे सिद्ध है कि लोकमें कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं जो अनेकान्तात्मक न हो।

सुखादि चैतन्यके अनेकविशेषात्मक होनेपर भी एकात्मक न होनेकी आशका—अब यहाँ चित्राद्वैतवादी कहते हैं कि सुख आदिक चेतना असकीर्ण विशेषात्मक हो कहिये किन्तु एकात्मक न कहिये अर्थात् सुख, ज्ञान, दर्शन आदिक अनेक धर्मोंसे युक्त चेतन असकीर्ण विशेषात्मक याने प्रतिनियत अनेकस्वरूप है यह कहना तो ठीक भी हो सकेगा किन्तु एकात्मक है यह युक्त नही जचता, क्योंकि सुख चेतनसे, जो कि आल्हादनाकार है, जिसमें आल्हाद भरा हुआ है ऐसे सुख चेतनसे, ज्ञेयपदार्थके प्रतिभास आकार वाले विज्ञानकी भिन्नता है। चेतनमें मुख्यतया सुख और ज्ञान ये दो धर्म माने हैं। तो देखिये! सुखके स्वरूपकी तो अन्य जाति है और ज्ञानके स्वरूपकी अन्य जाति है। सुखका स्वरूप तो है आल्हाद और ज्ञानका स्वरूप है ज्ञेय पदार्थोंका बोधन करना, समझना। तो दोनोका स्वरूप जब जुदा जुदा है, दोनोंके स्वरूप परस्पर विभिन्न हैं विरुद्ध धर्मका प्रतिभासना ही तो भिन्नताका साधन है। अन्यथा अर्थात् यदि विरुद्ध धर्मका अध्यास होनेपर भी भिन्नता न मानी जाय तो सारा विश्व एक बन बैठेगा। विश्वमें अनन्तानन्त पदार्थ हैं और वे अपने स्वरूपसे सत् हैं पररूपसे असत् हैं ऐसा कहकर स्याद्वादियोंने जो अनेक पदार्थोंकी व्यवस्था बनायी है वह व्यवस्था समाप्त हो जायगी, सारा विश्व एक बन जायगा, क्योंकि अब तो विरुद्ध धर्मका प्रतिभास होने पर भी अनेक मान लिया गया है, अतएव सुख आदिक चेतनको असकीर्ण विशेषात्मक ही मानें एकात्मक मानें, तब तो बात युक्त बनेगी और फिर इस तरह अनेकान्तात्मकता

की उस चेतनमे सिद्धि न हो सकेगी ।

अनेकविशेषात्मक सुखादि चैतन्यके एकात्मक न माननेकी शकाका समाधान और शकाकाराभिमत चित्रज्ञानमे दोषापत्ति—उक्त शकाके समाधान मे कहते हैं कि यह शका असमीचीन है। असकीर्ण विशेषात्मक ही चेतनको मानें और एकात्मक न माने तो इस हठमें चित्रज्ञान भी एकात्मक न बन सकेगा। क्योकि चित्र-ज्ञानका अर्थ क्या है कि उसमे पीताकार, नीलाकार आदिक अनेको आकारोके सम्वेदन हो रहे हैं। चित्राद्वैतवादी चित्रज्ञानको एक ही मानते हैं। और उस चित्रज्ञानमें विषय होते हैं पीत नील आदिक चेतन पदार्थ। क्षणिकवादमें पदार्थ गुणी नही माने गए किन्तु नीला पीला आदिक जो निरश भाव है वे पदार्थ हैं। तो खैर कुछ भी कह लो लेकिन चित्रज्ञानमे नीलाकार, पीताकार आदिक अनेक सम्वेदन हो रहे हैं ना। सो जो पीताकारका स्वरूप है सो नीलाकार आदिका नही। पीत जुदी वस्तु है नील जुदी वस्तु है। तो अब विरुद्ध धर्मका अध्यास होनेसे पीताकारसम्वेदन नीलाकार आदिके सम्वेदनसे भिन्न हो जायगा ? क्योकि सुख ज्ञान और ज्ञेय ज्ञान इन दोनोकी तरह नीलाकारसम्वेदन पीताकारसम्वेदन इत्यादिमे भी विरुद्ध धर्मका अध्यास हो गया जैसे कि शकाकारने सुखज्ञान और ज्ञेयज्ञान इन दोनोमे विरुद्ध धर्मका अध्यास बताया इनको भिन्न भिन्न करार कर दिया है इसी प्रकार पीताकार सम्वेदन और नीलाकारसम्वेदन विरुद्धधर्मसे युक्त है अतएव यह भिन्न हो जायगा। और, ये जब भिन्न हो गए तो चित्रज्ञान एक कहाँ रहा ?

अशक्यविवेचनताके कारण चित्रज्ञानको एकात्मक माननेकी तरह सुखादि चैतन्यमे एकात्मकताकी सिद्धि—शकाकार कहते हैं कि चित्रज्ञानमें जो पीताकार नीलाकार सम्वेदन हो रहा है वह तो अशक्य विवेचन है। उनका विवेक करना, भेद करना अशक्य है। जब भेद नही किया जा सकता तो वह सर्वाकार सम्वेदन एकात्मक ही स्वीकार किया गया है। एक चित्रज्ञानमें जो नील पीत आदिक अनेक पदार्थोका प्रतिभास हुआ है उसमें क्या कोई यह पृथक्करण कर सकता है कि लो यह तो पडा है नीलाकार सम्वेदन और यह पडा है अलग पीताकार सम्वेदन। तो नीलाकार पीताकार सम्वेदनोमे अशक्य विवेचनता है अतएव चैतन्यज्ञान एकात्मक ही स्वीकार किया गया है। इस शकाके समाधानमे कहते हैं कि फिर तो सुख आदिक सम्वेदनने क्या अपराध किया ? एक चेतनमें सुख सम्वेदन, ज्ञेयबोधन इनका भी पृथक करण नहीं किया जा सकता है याने इनमे भी विवेक करना पृथक् करना अशक्य है। इस ही कारणसे तो सुख आदिक चेतनमें एकात्मकताकी उपपत्ति होती है। जैसे—पीतादि आकारोको पृथक पृथक ले जाने के लिए रखनेके लिए पृथक विवेचनके लिए शक्यता नही है। जैसे वह आकार पृथक नहीं किया जा सकता है इसी प्रकार सुख आदिक आकार भी किसी अन्य चेतन रूपमे पृथक नहीं किया जा सकता है कि लो

यह सुखाकार चेतन पड़ा है और यह ज्ञेयबोधनाकार चेतन यह पड़ा है। ऐसे अन्य अन्त चेतनरूपसे उन सुखाकारोंको अलग नहीं किया जा सकता, अतएव सुख आदिक चेतन भी एकात्मक हैं।

सुखादि चैतन्यको एकात्मक मानकर भी अनेकविशेषात्मक न मानने मे आपत्ति—अब चित्ताद्वैतवादी शंका करते हैं कि तब तो फिर सुख आदिक चेतन को एकात्मक ही मान लीजिए। असंकीर्ण विशेषात्मक मत मानो। अर्थात् सुख ज्ञान आदिक अनेक धर्मोंसे युक्त चेतन ऐक ही है, उसमें असंकीर्ण विशेष कुछ नहीं है। असंकीर्ण विशेषका अर्थ यह किया गया कि विशेष भेद उसमे अनेक पड़े हैं और वे अपने अपने स्वरूपको लिए हैं। परस्परमें वे एक स्वरूप नहीं हो जाते। ऐसे असंकीर्ण विशेषोंसे तन्मय मानते हैं सुख आदिक पदार्थोंको सो ऐसा मत मानो। बस सर्वथा एकरूप ही मान लीजिये। इस शंकाके समाधानमें कहते हैं कि इस तरह सुखादि चैतन्यको असंकीर्ण विशेषात्मक न माना जाय, एकात्मक स्वरूप ही मानें तो इससे तुम्हारे इष्ट सिद्धान्तका भी घात हो जायगा। अर्थात् चित्रज्ञान एक ही मान लीजिए, चित्रज्ञानको भी असंकीर्ण विशेषात्मक न मानें, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। जब पीताकार सम्वेदन नीलाकारसम्वेदन आदि अनेक संवेदन ये जुदे नहीं किए जा सकते इस कारण चित्रज्ञानको एक रूप ही मान लीजिए। फिर उसमें असंकीर्णविशेषात्मकता न मानें। अर्थात् चित्रज्ञानमें जो नीलाकार सम्वेदन पीताकारसम्वेदन ऐसे अनेक विशेष स्वीकार किए हैं और वे सर्व विशेष असंकीर्ण हैं परस्परमें, एक रूप नहीं हो गए हैं, सबका स्वरूप जुदा जुदा है। ऐसे असंकीर्ण विशेषात्मकताकी बात फिर चित्रज्ञानमे न रहेगी क्योंकि अशक्य विवेचन होनेके नातेसे एकात्मक ही स्वीकार करना होगा। और जब चित्रज्ञानमे एकत्व मान लिया जायगा तो वह चित्रज्ञान न रहेगा, वह तो एक ज्ञान बन गया। जैसे अन्य एक ज्ञान। घट एक पदार्थका ज्ञान किया जा रहा हो तो उसमें चित्रव्यवहार तो नहीं किया जाता। ऐसे ही जब चित्रज्ञान भी सर्वथा एकात्मक हो गया तो फिर उसमें चित्रता क्या रही? वह चित्रज्ञान ही न रहा।

चित्रज्ञानमे ही एकात्मकताकी सिद्धि—शंकाकार कहते है कि चित्रज्ञानमे पीतादिकारका प्रतिभास अविद्यासे उपकल्पित है, अज्ञानके कारण यह पीताकार प्रतिभास है। यह नीलाकार प्रतिभास है, यह नीलाकार प्रतिभास कर लिया जाता है कल्पित कर लिया जाता है। वस्तुत तो चित्रज्ञानमे एक ही तत्त्व है। ज्ञानाद्वैतमें मात्र ज्ञान ही है अन्य कुछ है ही नहीं। अन्य जो कुछ प्रतिभासमें आ रहे हैं वे सब अविद्या से उपकल्पित हैं, अतएव चित्रज्ञानमें एकात्मकता ही वास्तविक है। शंकाकारके इस मन्तव्यके समाधानमें कहते हैं कि यदि ऐसा है कि चित्रज्ञानमें नील पीत आदिक आकार प्रतिभास तो अनेक हैं जिनसे कि आप ज्ञानको चित्रता मान पायेंगे। लेकिन

इससे चित्रज्ञानकी अनेकता साबित होनेसे चित्रज्ञानके एकत्वका घात होता है, सो उस विपत्तिसे बचनेके लिए जो शकाकार यह कह रहे हैं कि चित्रज्ञानमे पीतादि आकारो का प्रतिभास तो अविद्यासे उपकल्पित है, वास्तविक तो चित्रज्ञानमें एकात्मकपना ही है। तो यह बताओ कि एकाकार और अनेकाकारमें जब प्रतिभासकी अविशेषता हो गइ, प्रतिभास एकाकारका भी है, प्रतिभास अनेकाकारका भी है। तो जब चित्रज्ञानमे एकात्मकताका भी ज्ञान हो रहा और पीतादि आकार प्रतिभास विशेष रूप अनेका-कारोका भी ज्ञान हो रहा तो उनमेसे एक कोई तो वास्तविक है और दूसरा अवास्त विक है ऐसा विवेक कैसे किया जा सकता है। जब कि चित्रज्ञानमे यह भी विदित हो रहा है कि यह एकात्मक है, एकाकार है और यह भी विदित हो रहा कि नील पीत आदिक अनेकाकार सम्वेदन भी है तो इनमेंसे एकाकारको तो वास्तविक कह देते हो और अनेकाकार सम्वेदनोको अवास्तविक बता देते हो, यह विवेक कैसे किया जा सकता है ? यदि कहो कि एकाकारका अनेकारसे विरोध है इस कारण अनेका-कारसे विरोध है इस कारण एकाकार ही अवास्तविक क्यो न बन जाय। जब दोनो का परस्पर विरोध है तो किसीको भी अवास्तविक कह सकते।

चित्रज्ञानमे भी एकाकारकी अवास्तविकताकी सिद्धि— शकाकार कहते है कि स्वप्नज्ञानमे अनेकाकार अवास्तविक प्रसिद्ध है इस कारण चित्रज्ञानमे भी अनेक आकारकी अवास्तविकताकी कल्पना करना युक्त ही है। शकाकार यह कथन इस आधारपर कह रहे हैं कि चित्रज्ञानको भी एक और अनेकाकारसे तन्मय मानते हैं। स्याद्वादियोके प्रति चेतनको अनेक सम्वेदनात्मक और एक नही मानने देता। तो इस परस्परके सम्वादमें जब ऐसी आपत्ति आयी कि चित्रज्ञानमें जैसे एकाकारताको वास्त-विक कहते हैं शकाकार, इसी प्रकार अनेकाकारकी भी वास्तविकता सिद्ध होती है। तो चित्रज्ञानाद्वैतवादीको यह इष्ट है कि चित्रज्ञान एकात्मक तो रहे, पर यह अनेक न बन जाय। अनेक बननेसे द्वैत सिद्ध हो जाता है। तब अनेकाकारताको अवास्तविक सिद्ध करनेमें उनका प्रयोजन है। इस ही लक्ष्यसे कह रहे है शकाकार कि चित्रज्ञानमे यद्यपि एकाकार और अनेकाकार दानोका प्रतिभास है लेकिन अवास्तविक अनेकाकार है। एकाकार नही है क्योकि स्वप्नज्ञानमें भी देखा जाता है कि बहुत सी बाते नीदमें देख रहे हैं जगल, समुद्र, तीर्थ, पहाड, मनुष्य। लेकिन वे सब अवास्तविक है। तो स्वप्नज्ञानमे जब अनेकाकार अवास्तविक है ऐसे ही चित्रज्ञानमे भी अनेकाकारकी अवास्तविकता मानी जायगी। उत्तरमें कहते हैं कि यदि इस तरह स्वप्नज्ञानोंसे अने-काकारकी अवास्तविकताको प्रसिद्ध कहकर चित्रज्ञानकी अवास्तविकता मानते हो तो केश आदिकमें एकाकारकी अवास्तविकता सिद्ध होनेसे चित्रज्ञानकी एकाकारतामे भी अवास्तविकता कैसे अयुक्त रहेगी ? एकाकार भी अवास्तविक बन जायगा।

चित्रज्ञानमे अनेकाकारको ही अवास्तविक बतानेका शकाकारका पुन

प्रयास व उसका समाधान—अब शंकाकार कहते हैं कि पीत आदिक आकारोंका सम्वेदनसे अभेद होनेपर एकत्वका विरोध है। क्योंकि भेदमें प्रतिभास होना असम्भव है। और यदि प्रतिभास हो जाय भेदका तो वहाँ ज्ञानान्तर बननेकी आपत्ति आयगी। अतएव अनेकाकारता ही अवास्तविक मानना चाहिए. उत्तरमें कहते हैं कि तब तो ज्ञान का फिर इसी कारण चित्रज्ञानमे जो एकाकारता मानी जा रही है वह भीअवास्तविक बन जायगी, क्योंकि उस एकाकारताके प्रतिभासका भी पीत आदि आकारके प्रतिभासो से अभिन्नत्व है अत एकत्वका विरोध है। चित्रज्ञानमे जो कुछ अनेकाकार प्रतिभासित हो रहे हैं उन आकारोंसे तो चित्रज्ञान अभिन्न है ना। यदि भिन्न हो जायगा। तब तो ही अभाव हो जायगा, अत. एकत्वका विरोध है। भिन्न होनेपर फिर चित्रज्ञानमे कोई सम्वेदन ही न रहेगा। ऐसा ज्ञान क्या जिस ज्ञानमें कोई चीज ज्ञात नही हो रही। और फिर वह एक ज्ञान हो। तो इस सब ज्ञेयाकारको उस चित्रज्ञानसे भिन्न माननेपर फिर सम्वेदन ही नहीं बन सकता। समस्त आकारोसे शून्य चित्रज्ञान चीज ही क्या रहेगा? और, यदि कहो कि चित्रज्ञानमे जो आकार प्रतिभासित हो रहे हैं उन सबसे भिन्न होनेपर भी वह ज्ञान बना रहेगा तो वह ज्ञान अन्य ज्ञान कहलायेगा कुछ रह उन सब ज्ञेयोका ज्ञानरूप चित्रज्ञान न कहलायेगा। तब चित्रज्ञानमें अनेकाकारके प्रतिभासको ही अवास्तविक कल्पना करना शक्य नहीं है। अनेकाकार भी है और वह ज्ञान एक भी है। और इस तरह मान लेनेपर यही बात सिद्ध होती है कि हो सकता है कुछ ऐसा जो एक होकर भी अनेकात्मक है। जब कुछ एक अनेकात्मक सिद्ध हो गया तो सुखादिचैतन्य भी एक होकर भी अनेकात्मक सिद्ध हो जायगा। अर्थात् आत्मा एक है और उसमे ज्ञान, दर्शन, चरित्र, आनन्द आदिक अनेक गुणोंसे तन्मय एक आत्मा सिद्ध हो जायगा। और इस तरह एक अनेकात्मक सिद्ध हुआ तो वस्तु सप्रतिपक्ष है वह बात स्पष्ट हो जायगी। कोई भी सत् हो वह किसी दृष्टिसे असत्त्वमय भी है तब वह सत् है। इसी प्रकार जो भी धर्म है वह जिस अपेक्षासे है सो है और उसके विरुद्ध दृष्टिसे वह अन्य प्रकार भी है। तो इस प्रसगमें चित्रज्ञानाद्वैतवादी चित्रज्ञानको एक मानते तो हैं पर एक ही उन्हे मानना होगा। जब अनेकाकारके प्रतिभासको ही अवास्तविक नहीं बता सकते हैं तब उनका यह कहना शोभा नहीं देता कि वह चित्रता क्या होगी किसी बुद्धिमे कि अनेकाकार तो आया ना और वह ज्ञान चित्र बन जाय, यह तो ज्ञेयभूत पदार्थोंका स्वय रूप रहा है। उन ज्ञेयभूत पदार्थोंमें ऐसा स्वभाव बना हुआ है कि वह सब चित्रज्ञानमें आता है। तब चित्रताका निराकरण कैसे किया जायगा? यह बात अब शोभा नहीं देती क्योंकि चित्राद्वैतको एक अनेकात्मक मानना होगा और इसी तरह यह कथन भी शोभा नही देता कि वह एकता ही क्या होगी? उस चित्रज्ञानमें भी यदि एकाकारपना न हो तो। सो एकाकारता स्वय ज्ञानको रुच रहा है। तो एकाकारताका भी क्या खण्डन करें? ठीक है, लेकिन अपेक्षासे उन कथनोको ठीक घटित करके ही कहना चाहिए।

चित्रज्ञानमे अनेकाकारताके अभावमे अनापत्ति व एकाकारताके अभावमे आपत्ति बताकर चित्रज्ञानमे एकाकारताको ही वास्तविक सिद्ध करनेका शंकाकारका विफल प्रयास—अब शंकाकार कहते हैं कि एक ज्ञानमें नानाकारताका अभाव हो भी जाय तो भी उस ज्ञानसे ज्ञानमात्रपनेका सद्भाव यदि रहता है तो सब कुछ व्यवस्थित रहता है क्योंकि स्वरूपकी गति अपने आपसे निराकृत नही होती। ज्ञानमे अपना स्वरूप तो रहना ही चाहिए और वह स्वरूप है अपने एकरूप, सो एकताका तो निराकरण किया ही नहीं जा सकता। भले ही उस एक चित्रज्ञानमें मान लो कदाचित कि चित्रता नही है, अनेकाकारता नही है तो न रहे। उससे कोई विरोध नहीं आता। लेकिन उस ज्ञानमे सम्वेदनमात्रका यदि अभाव मान लिया जायगा तो उस ज्ञानकी सत्ता ही नही रह सकती। इस शंकाका तात्पर्य यह है कि बात प्रसगमे यह रखी जा रही है कि देखो चित्रज्ञान एक है। लेकिन उसमे सभी तरह के पदार्थ प्रतिभाससे आ रहे तो उस ज्ञानमें आकार तो अनेक बन गए ना ? तो वह एक अनेकात्मक हो गया। यहाँ शंकाकारको यह अभीष्ट है कि उस चित्रज्ञानमें अनेक आकारोको तो अवास्तविक बता दिया जाय और एक जो उसका निजका सम्वेदन स्वरूप है उस अनेकाकारको वास्तविक कहा जाय। ऐसा ही सिद्ध करनेपर ज्ञानाद्वैत का मतव्य ठहर सकता है। तो इसकी सिद्धिमें शंकाकार यह कह रहे हैं एक ज्ञानमे मान लो कि चित्रता न रही तो भी ज्ञान तो रह जायगा। और, अपने आपका स्वरूप अपने आपसे विरुद्ध होता नही, लेकिन कोई यह मान बैठे कि उस एक ज्ञानमे ज्ञानमात्रपना तो रहा नहीं एकाकारता तो है नही तो सारी बात विरुद्ध हो जायगी। अत चित्रज्ञानमें अनेकाकारताको अवास्तविक नही कह सकते। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यह मतव्य भी समीचीन नही है, क्योंकि सम्वेदन मात्र एक चित्रज्ञानके अभावमे भी नाना पीत आदिक प्रतिभासका सद्भाव रह सकता है क्योंकि उनका कोई विरोध नही है। रहा आये कोई ज्ञान ऐसा कि जिसमें हम एक सम्वेदन मात्र ही न माने और जितने ज्ञेय हैं उन समस्त ज्ञेयोका प्रतिभास है ऐसा मानें तो वह भी ज्ञान बन जायगा। इस कारण चित्रज्ञानमे एकाकारताका विरोध ज्योका त्यो उपस्थित है।

चित्रज्ञानमे अनेकाकारोको वास्तविक माननेपर अनेकाकारोकी भी परम्परा लम्बी हो जानेका शंकाकार द्वारा प्रसगारोप—उक्त प्रसगमे अब शंकाकार कह रहे हैं कि देखिये ! ज्ञान है निरश और एक। तब अनेकाकारताकी वास्तविकता लानेका प्रसग दोगे तो सुना नीलाकारका जो सम्वेदन किया है उस सम्वेदनमें भी उस नीलके प्रत्येक परमाणुओंका भेद होनेसे एक सम्वेदन नहीं, किन्तु नील अणुओ के सम्वेदन अनेक हैं और तब उस एक नील पदार्थके अनेक अणु सम्वेदनोको भी परस्पर भिन्न हो जाना पडेगा। यहाँ माध्यमिक क्षणिकवादी कह रहे हैं कि हे स्याद्वादी जनो ! जैसे कि आपने उक्त प्रकार अनेकाकारताकी भी वास्तविकता सिद्ध करनी

चाही तो इस तरह यदि एक चित्रज्ञानमें अनेक पदार्थोका ज्ञान होनेसे अनेकाकारता मान लेंगे तब तो एक पदार्थमें भी परमाणु तो हैं अनेक, उन सबका भी सम्वेदन हुआ है तब तो एक ही पदार्थके अनेक अणु सम्वेदनोको भी परस्पर भिन्न बन जाना होगा। उनके मध्यमें जो एक नील परमाणुका सम्मेदन है उसमे भी चूँकि नाना प्रतिभासोका सद्‌भाव है, अर्थात् वेद्याकार, वेदकाकार और सम्वेदनाकार ये तीन भेद पडे हुए है। तो वहाँपर भी ज्ञान तीन हो जाना चाहिए। यदि एक चित्र ज्ञानमें अनेक पदार्थोंका ज्ञान आ जानेसे उन अनेकाकारोको वास्तविक सिद्ध करनेपर हो तुले हो तो उन अनेकोमेंसे जो एक नील सम्वेदन है उसमें भी नीलके अनेक परमाणुओका सम्वेदन है और उस एक अणु सम्वेदनमें भी तीन आकार हैं वे जाने जा रहे हैं सो हुआ वेद्याकार और चूँकि ज्ञानको उत्पन्न करने वाला पदार्थ होता सो हो गया वेदकाकार, और चूँकि सब कुछ ज्ञानमय ही तो है इस दृष्टिसे हो गया सम्विदाकार इस प्रकार उस एक अणु सम्वेदनको भी तीन प्रकारमें मान लेना चाहिए और फिर उन तीन सम्वेदनोमेंसे प्रत्येक को अन्यके द्वारा सम्वेद्याकार होते हैं तब तीन सम्वेदन और मान लेना चाहिए, क्योंकि ज्ञान तो होता है अस्वसम्विदित। तो वे तीन आकार अन्यसे जाने जायेंगे ना, और फिर वे भी तीन आकार अन्यसे जाने जायेंगे। तब किसी भी जगह एक ज्ञानकी सिद्धि नहीं हो सकती उनके यहाँ जो ज्ञानाद्वैतसे विद्वेष रखते हैं अतः चित्रज्ञानमे अनेकाकार को अवास्तविक मानना चाहिए और एकाकारका वास्तविक मानना चाहिये।

मेचक ज्ञानमे चित्राकारताका अपाय होनेपर भी ज्ञानका अपाय न होनेसे अनेकाकारता अवास्तविक व एकाकारताको वास्तविक सिद्ध करनेका प्रयास—देखिये बाह्य अर्थमे अथवा ज्ञानमें किसीमें भी एकात्मकता न मानने पर फिर नानापनकी भी व्यवस्था कैसे बन सकती है? एक चित्रज्ञानमें अन्य एक वस्तुकी अपेक्षासे ही तो अनेकपनेकी व्यवस्था बना करती है अर्थात मुकाबलेमें जब कोई एक हो तब तो एकपनेकी व्यवस्था बनेगी और कहीं एकपना माना नहीं तब किसी भी प्रकार नानापनकी व्यवस्था नहीं बन सकती। यदि कहीं एकता मान लेते हो बाह्य अर्थमें अथवा ज्ञानमे तब फिर चित्रज्ञानमें एकाकारता कैसे अविरुद्ध हो जायगी। चित्रज्ञानमें तो चित्रकारका अभाव होनेपर भी विनाश होनेपर भी सद्‌भाव रहता है, इससे चित्रज्ञानमे एकाकारता वास्तविक है और अनेकाकारता अवास्तविक है।

मेचकज्ञानमे अनेकविशेषात्मकताको अवास्तविक कहनेकी शकाओंका समाधान—उक्त शकाओंके समाधानमे अब स्याद्वादी कहते हैं कि चित्रज्ञानमें अनेकाकारताको अवास्तविक, बाह्य अर्थको अवास्तविक और एक मेचकज्ञान मात्रको एकाकारको वास्तविक कहनेकी बात विवेक पूर्वक कही हुई नहीं कही जा सकती है, क्योंकि जैसे कि बताया है शकाकारने कि नानाकारका अपाय होनेपर भी उस चित्रज्ञानकी सम्भवता तो रहती ही है आदि बात शकाकारकी बात माननेपर यह भी तो कहा जा

सकता है कि चित्रज्ञानमें ज्ञानाकारकी तरह पीताकार नीलाकार आदिक अनेकोंका सद्भाव सिद्ध होनेके कारण परस्पर अपेक्षासे अनेकत्वकी सिद्धि हो जाती है। जैसे कि अनेकपना एककी अपेक्षा रखकर होना बताया है उसी प्रकार यह चित्रज्ञानका एकपना भी तो अनेकाकारकी अपेक्षा रखकर बनेगा। तब सिद्ध हुआ ना, कि चित्रज्ञान एकाकार है और अनेकाकार भी है अर्थात् चित्रज्ञान असंकीर्ण विशेषात्मक एकात्मक है। तो जब चित्रज्ञानमें एकानेकात्मकता सिद्ध हुई तो नीलपीतादि प्रतिभासरूप अनेक चैतन्यमें व्याप्त अनेकाकार चित्रज्ञानका भी अन्तस्तत्त्वकी एकानेकात्मकपनेके सिद्ध करनेमें उदाहरण दिया है वह उदाहरण पूर्णतया युक्त होता है। प्रकरण यह था कि लोकमें कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो रूपान्तर विकल हो, अर्थात् प्रत्येक पदार्थ सदसदात्मक नित्यानित्यात्मक आदिक अनेकात्मक पाये जाते हैं और उसके लिए उदाहरण दिया गया था चित्रज्ञान। सो यह बात बिल्कुल युक्त सिद्ध होती है कि जैसे चित्रज्ञान असंकीर्ण विशेषात्मक एकात्मक है इसी प्रकार ये सुख आदिक चेतन अन्तस्तत्त्व भी असंकीर्ण विशेषात्मक एकात्मक हैं।

अनेक सुखादिकोंकी एक चैतन्यमें व्याप्ति न हो सकनेकी शंकाकार द्वारा कथन—अब यहाँ शंकाकार कहते हैं कि सुख आदिकका चैतन्य व्यापक होता हुआ क्या एक स्वभावसे हो रहा है या अनेक स्वभावसे हो रहा है? याने एक आत्मामें सुख ज्ञान, दर्शन आदिक जो अनेक गुण माने हैं उतने ही वे चैतन्य हुए तो उनका वह चैतन्य जो एकमें व्यापक बन रहा है तो क्या एक स्वभावसे व्यापक बन रहा है या अनेक स्वभावसे? यदि कहो कि एक स्वभावसे व्यापक बन रहा है तब तो उन समस्त सुख आदिकका एक स्वरूपपना बन जायगा। फिर अनेकात्मकता कैसे सिद्धकर पावोगे? यदि कहो कि अनेक स्वभावसे सुख आदिकका चैतन्य व्यापक हो रहा है तब तो वे अनेक स्वभाव भी कैसे अन्य अनेक स्वभावसे व्यापक हो पायेंगे? और इस तरहसे प्रश्न बढ़ाते जाइये। अनवस्था दोष होगा। यदि कहो कि एक सदृश स्वभावसे सुख आदिक चैतन्यके साथ व्यापते हैं तब अनेक सजातीय स्वभावसे व्यापे गये यही तो कहनेका मतलब निकलता है। तो वहाँ भी उस ही प्रकार अनवस्था दोष आता है कोई उपाय नहीं है जिससे कि सुख आदिकमें व्यापक एक चैतन्य सिद्ध हो सके।

सुखादिकोंकी एक चेतनमें अव्याप्ति बतानेकी शंकाका समाधान—उक्त शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि ये सब बातें तो चित्रज्ञानमें भी समान रूपसे कह सकते हैं। बतलावो कि पीत आदिक आकारमें जो चित्रज्ञानमें व्यापक बन रहे हैं तो क्या एक स्वभावसे बन रहे हैं अथवा अनेक स्वभावसे याने चित्रज्ञान तो माना है एक और उसमें पीत नील आदिक आकार हैं अनेक। तो उन अनेकाकारोंका एक मेचक ज्ञानमें जो व्यापना बन रहा है सो क्या एक स्वभावसे व्यापना बन रहा है या अनेक स्वभावसे? यदि कहो कि एक स्वभावसे ही व्यापना बन रहा है तो उसमें सर्वथा एक

स्वरूपता ही आयी, फिर चित्रज्ञान ही क्या रहा ? यदि कहो कि अनेक स्वभावसे बन रहा है तो वे अनेक स्वभाव भी अन्य अनेक स्वभावसे व्यापक बनेंगे। तब अनवस्था हो जायगी। एक सदृश स्वभावसे भी कहेंगे तो वही अनवस्था। तो वहाँ भी कोई उपाय ऐसा न बन सकेगा कि जिससे पीत आदिक आकारोंमें व्यापक एक चित्रज्ञान सिद्ध हो सके। शकाकार कहता है कि व्यापक चित्रज्ञानमें पीतादिक आकारोंमें जो व्यापक है उसका तो स्वय सम्वेदन हो रहा है, एक स्वभावसे होता है या अनेक स्वभावसे होता है, इसके बिना वह स्वय ही उसका सम्वेदन हो रहा अतएव कोई दोष नही है। तो उत्तरमें कहते हैं कि यो हो तो सुख आदिकमे व्यापी चेतनका भी एक साथ और क्रमसे स्वय ही सम्वेदन हो रहा है, वहाँ पर भी कोई उपालम्भ कैसे दिया जा सकता है ? देखिये ! सुख आदिकोंमे व्यापी चेतन बराबर अनुभूत हो रहा है, फिर अनुभूत पदार्थमें अनुपपन्नताकी बात ही क्या रह सकती ? सुख आदिकका चेतन में व्यापकपनेका सम्वेदन भ्रान्त नहीं है, अर्थात् सुख आदिक सब चेतनमें व्याप्त हैं और ऐसा सम्वेदन चल रहा है वह भ्रान्त नही है, क्योकि सुख आदिककी अचेतनताको सिद्ध करने वाला कोई प्रमाण नहीं है वे सब सुख आदिक चेतनात्मक हैं और उन सबका सम्वेदन स्वय हो रहा है।

सुखादिभावके चेतन धर्मत्वकी प्रसिद्धि—शकाकार कहता है कि सुख चेतन नही हैं, अचेतन है। उसकी सिद्धि अनुमानसे होती है। सुख आदिक अचेतन है उत्पत्तिमान होनेसे घट पट आदिक पदार्थोंकी तरह। जैसे घट पट आदिक पदार्थ उत्पन्न होते है इस कारण वे अचेतन हैं। तो इसी तरह सुख आदिक भी उत्पन्न होते हैं अतएव अचेतन हैं। यह अनुमान सुख आदिकी अचेतनताको सिद्ध करने वाला हो गया [illegible]रमें [illegible] हैं कि यह बात युक्तिसगत नहीं है यह बात निर्दोष नही है। सुख आदिककी अचेतनता प्रत्यक्षसे वाधित है। चेतनसे सम्विदित हो स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष का सदैव प्रतिभास होता है। प्रतिभासनेवाले तो चेतन ही हैं और यह चेतन पदार्थ शरीर सुख आदि [illegible] जो प्रतिभास करता है वह सुख आदिककी अचेतनता प्रत्यक्षसे वाधित है। चेतनमे सम्विदित ही स्वसम्वेदन प्रत्यक्षका सदैव प्रतिभासने वाले तो चेतन ही हैं और यह चेतन पदार्थ शरीर सुख आदिकका जो प्रतिभास करता है यह सुख आदिक चेतनसे समन्वित होते हुए ही प्रतिभासमे आता है। और, सीधे सरल शब्दोंमें समझिये तो यह जान सकते हैं कि सुख है क्या ? एक सुख होनेकी पद्धतिका ज्ञान बनना उस हीको तो सुख चाहते हैं तो सुख चेतन समन्वित ही तो हुए अत. सुख आदिकको अचेतन सिद्ध करनेकी बात बिल्कुल असगत है। साथ ही शकाकार के अनुमानमें दी गई प्रतिज्ञा, पक्ष अनुमानसे बाधा आ जाती है सुख आदिक चेतन है स्वसम्वेद्य होनेसे पुरुषकी तरह। जैसे पुरुष तत्त्व चेतन है क्योंकि वह स्वसम्वेद्य है इसी प्रकार सुख आदिक भी चेतन हैं क्योंकि चेतनके द्वारा स्वसम्वेद्यपना बन रहा है वह तो पुरुष तत्त्वके ससर्गसे बन रहा है अतएव सुख आदिकका स्वसम्वेद्यपना प्रसिद्ध

है। इसके उत्तरमें कहते हैं कि यह बात युक्त नहीं है। कभी भी सुख आदिककी अस्वसम्वेद्यता प्रतीत नहीं होती और इस ही कारण यह सब कुछ नहीं कहा जा सकता कि पुरुषके संसर्गसे सुख आदिकमे स्वसम्वेद्यता आती है। अर्थात् यदि हठप अडे रहेंगे कि सुख आदिकमें सम्वेदनता पुरुषके संसर्गसे आती है। सुख आदिक हैं कोई, वे हैं भिन्न तत्त्व और पुरुष हैं भिन्न तत्त्व। उन सुख आदिककी स्वसम्वेद्यता पुरुष नामक तत्त्वके संसर्गसे आती है। इस हठमें तो यह भी कह सकते हैं कि पुरुषमें स्वसम्वेद्यता स्वसम्वेद्य सुख आदिकके सम्बन्धसे आती है, स्वतः नहीं आती। इस प्रकार कोई कहे तो उसका निराकरण करना अशक्य है। साथ ही चेतन विशेषके साथ हेतुका व्यभिचार बताया गया है। जो हेतु दिया है कि उत्पत्तिमान होनेसे अचेतन हैं सुख आदिक तो उत्पत्तिमान तो चेतन विशेष भी है। लेकिन चेतन विशेष अचेतन तो नहीं माना गया। तो उत्पत्तिमान हेतुमे चेतन विशेषके साथ व्यभिचार भी आया है इस कारण सुख आदिकमें अचेतनताकी सिद्धि नहीं होती। और, सुख आदिक से चेतनत्वकी सिद्धि करनेपर स्याद्वादियोंके यहाँ अपसिद्धान्त भी नहीं बनता, क्योंकि चेतनजीवके द्रव्यार्थिक दृष्टिसे सुख आदिकमे चेतनताकी प्रसिद्धि है, सुखादिक चेतन हैं, क्योंकि वे एक चेतनात्मक जीवद्रव्यके ही तो अभिन्न तत्त्व हैं, समस्त औपशमिक आदिक भावोंको सुख ज्ञान आदिक प्रतिनियत पर्यायार्थिक दृष्टिसे ज्ञान दर्शनसे भिन्न भी कहा है, इस कारण यह भी शंका न करना कि इस तरह ज्ञान और सुख आदिकमें सर्वथा अभेद हो जायगा।

ज्ञानाभिन्न हेतुजन्य हेतु देकर सुखादिको ज्ञानात्मक ही सिद्ध करनेका शंकाकारका प्रयास व उसका समाधान—सुखादिक भाव और ज्ञान भाव इन दोनोंका लक्षण जुदा जुदा है। सुख तो है आल्हाद स्वरूप और ज्ञान है जानन स्वरूप तो चूंकि स्वरूप इनका भिन्न-भिन्न है इस दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि सुखादिक ज्ञान स्वरूप नहीं हैं। और, जब सुखादिक ज्ञानस्वरूप नहीं है तब सुखादिकका चेतन आत्माके साथ कथंचित् अभिन्नपना और कथंचित् भिन्नपना बन जाता है। यह बात सुनकर शंकाकार कहता है कि तो भी सुखादिक तो ज्ञानात्मक ही है क्योंकि ज्ञानसे अभिन्न हेतुओंसे सुखआदिककी उत्पत्ति होती है, अर्थात् जो कारण ज्ञानकी उत्पत्तिके हैं वे ही कारण सुखकी उत्पत्तिके हैं। सो ज्ञानसे जो बनता है वह ज्ञानस्वरूप ही तो बनेगा। जैसे अन्य ज्ञान जितना बनता है वह ज्ञानात्मक ही तो है। जैसे अन्य ज्ञान ज्ञानसे अभिन्न कारणसे उत्पन्न हुए हैं अतएव ज्ञानात्मक हैं, इसी प्रकार सुखादिक भी ज्ञानसे अभिन्न कारणसे हुए हैं इस कारण सुखादिक भी ज्ञानात्मक है। इस शंकाके उत्तरमे कहते हैं कि यह कहना युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि सुख आदिक सर्वथा विज्ञान से अभिन्न हेतुवोंसे उत्पन्न हुए हैं, यह बात असिद्ध है। देखो! सुख आदिकके तो कारण साता वेदनीयके उदय आदिक और ज्ञानकी उत्पत्तिका कारण है ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम, अन्तराय कर्मका क्षयोपशम, तब सुख आदिकके कारण भिन्न हुए और ज्ञान

कारण भिन्न हुए, तब यह कहना कैसे संगत रहेगा कि सुख आदिककी ज्ञानोके अभिन्न हेतुओंसे उत्पत्ति हुई, और तब यह सिद्ध न हो सका कि सुख आदिक ज्ञानके अभिन्न हेतुओंसे उत्पन्न हुए सुख आदिकको सर्वथा ज्ञान स्वरूप नही कह सकते।

कथंचिद्विज्ञानाभिन्न हेतुजत्वसे सुखादिको ज्ञानात्मक ही माननेपर हेतुमे रूप आलोकादिके साथ व्यभिचारका प्रसग—यदि कहो कि सुख आदिक सर्वथा विज्ञानसे अभिन्न हेतुओंसे नही उत्पन्न हुए। इस शकाके समाधानमे यही कह देना पर्याप्त है कि यदि कथचित् विज्ञानके अभिन्न कारणोसे उत्पन्न होनेके कारण सुखादिकको यदि ज्ञानात्मक मान लेते हो तो देखिये विज्ञानके कारण तो रूप और प्रकाशको माना है क्षणिकवादमे। तो जैसे रूप और प्रकाशसे विज्ञानकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार रूपसे अन्य रूप क्षणकी उत्पत्ति भी मानी है और प्रकाशसे अन्य प्रकाश क्षणकी भी उत्पत्ति मानी है। तो शकाकारके सिद्धान्तके अनुसार देखिये। रूपसे विज्ञानकी उत्पत्ति हुई है और रूपसे ही अगले रूपकी उत्पत्ति हुई है। तो चूंकि ज्ञानका और रूपका कारण एक है रूप इसलिए विज्ञान भी रूपात्मक हो जाय और रूप तो रूपात्मक है ही यो शकाकारके सिद्धान्तका भी विघात हो जाता है, ऐसे ही प्रकाशकी बात समझिये प्रकाशसे विज्ञानकी उत्पत्ति मानी है क्षणिकवादियोने, और प्रकाशसे अगले समयके प्रकाशकी भी उत्पत्ति मानी है। तो जब प्रकाशसे ज्ञान भी उत्पन्न हुआ और प्रकाशसे अन्य प्रकाश भी उत्पन्न हुआ तो प्रकाशसे जो भी उत्पन्न हो वह तो प्रकाशात्मक ही माना जायगा। तो प्रकाशसे उत्पन्न हुए प्रकाशको प्रकाशात्मक तो माना ही है, पर प्रकाशसे उत्पन्न हुए ज्ञानको भी प्रकाशात्मक मानना पडेगा। तब यह कहना कि सुख आदिक विज्ञानके अभिन्न कारणोसे उत्पन्न हुए हैं इस कारण सुख आदिक ज्ञानात्मक है यो कहनेमें रूप और प्रकाश आदिकके साथ हेतुका व्यभिचार होता है।

सुखादिकी कथंचित् ज्ञानरूपता होने व ज्ञानरूपता न होनेसे चेतनकी एकानेकात्मकताकी प्रसिद्धि—यहा परस्वरूप दृष्टिसे यह सिद्ध किया जा रहा है कि स्वरूपत ज्ञान ही ज्ञानात्मक है। सुखका स्वरूप जानन नही है, किन्तु सुखका स्वरूप तो सुख है आल्हाद है, उस आल्हादको ज्ञान जानता है, यह तो सम्बध है सुख भी आत्मासे हुआ है। ज्ञान भी आत्मामें हुआ है यों दोनोका आधार तो स्पष्ट एक है लेकिन दोनोंका स्वरूप अलग—अलग और दोनोकी उत्पत्तिके कारण भी निमित्त दृष्टिसे अलग अलग है। किन्तु क्षणिकवादी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जैसे ज्ञान ज्ञानात्मक है ऐसे ही सुखादिक भी ज्ञानात्मक है। और, ऐसा सिद्ध कर देनेका उनका प्रयोजन यह है कि आत्मा अनन्त धर्मात्मक न सिद्ध हो सके, एकात्मक ही सिद्ध हो सके, एकात्मक ही सिद्ध

होती है और एकता भी सिद्ध होती है। यहाँ यह सिद्ध किया गया कि सुखका कारण तो साता वेदनीय कर्मका उदय है और यथायोग्य अंतरायका क्षयोपशम आदिक है। और ज्ञानके विकासका कारण ज्ञानावरण कर्मका क्षयोपशम और वीर्यान्तराय क्षयोपशम आदिक है। अतएव सुख आदिकमे विज्ञानरूपता सिद्ध नहीं है। तो जब सुख आदिकमें विज्ञानरूपता सिद्ध नही है, तो जब सुख आदिक है ज्ञानरूपता सिद्ध न हुई तब क्षणिकवादियोने जो यह कहा है कि तद्रूपी भाव तद्रूप हेतुसे उत्पन्न होते हैं, याने जो भाव जिस रूप है जिस स्वरूपमे तन्मय है वह भाव उस ही जातिके रूपसे होगा और जो भाव अतद्रूप है वह अतद्रूपसे होगा। तब सुख आदिक ज्ञानात्मक है क्योकि वे ज्ञानसे अभिन्न हेतुसे हुए हैं। यह सब कहना उनका निराकृत हो जाता है बल्कि शंकाकारने भी अपने सिद्धान्तमें यह कहा है कि सुख तो होता है आल्हादस्वरूप और ज्ञान होता है ज्ञेय पदार्थके जाननरूप और इस प्रकारका सुख और ज्ञानकी शक्ति है इसका अनुमान होता है क्रियासे। जैसे भोजन किया और उसमें सुखका अनुभव हुआ तो वहा जो आल्हाद हुआ है वह तो है सुख ज्ञेय और पदार्थका, भोजनका जो बोध हुआ है, उसका जो परिज्ञान हुआ है वह है विज्ञान। और ऐसी सुख ज्ञान की शक्ति है इस जीवमें इस शक्तिका अनुमान होता है उसकी क्रियासे। चूंकि वह ज्ञानमे लग रहा है और सुख मान रहा है तो उनसे प्रमाणीकता होती है कि इसमे सुख और ज्ञानकी शक्ति है। ऐसा जब स्वय कहा है तो उससे भी यह सिद्ध हो गया कि सुख आदिक ज्ञानस्वरूप नही हैं। सुखादिक हुए आनन्दस्वरूप और ज्ञान हुआ ज्ञेय के जाननरूप। अत यह स्पष्ट बन जाता है कि आत्मा एकरूप भी है, अनेक रूप भी है। एकरूप तो पदव्यार्थिकनयसे है और अनेकरूप पर्यायार्थिकनयसे है। अथवा भेददृष्टिसे एकरूप है, सुख है ज्ञान है, दर्शन है शक्ति है, यो अनेक भाव ये दृष्टिसे जाने गए सो तो हुआ आत्मा अनेकरूप। और चूंकि आत्मा एक स्वभावरूप है इसलिये एक स्वभावकी दृष्टिसे आत्मा है एकरूप। तो सिद्ध हो गया कि यह ज्ञान तत्त्व एकानेकात्मक है सर्वथा किसी भी एकान्तरूप नहीं है।

अभिन्न हेतुजत्वसे तद्रूपताकी सिद्धिका अनियम— अब शंकाकारसे पूछा जा रहा है कि सुख आदिकको अचेतन सिद्ध करनके लिए जो यह युक्ति दी जा रही है कि सुख आदिक ज्ञानात्मक हैं विज्ञानके अभिन्न हेतुओसे, उत्पन्न होनेसे। तो यहाँ विज्ञानके अभिन्न हेतुसे उत्पन्न होनेकी जो बात कही जा रही है वह उपादानकी अपेक्षा से है, या सहकारी कारणकी अपेक्षासे है? यदि कहो कि उपादान कारणकी अपेक्षा से सुखादिको विज्ञानाभिन्नहेतु कह रहे हैं याने जिस कारणसे विज्ञानकी उत्पत्ति होती है उस ही कारणसे सुख आदिककी भी उत्पत्ति होती है अतएव सुख आदिक ज्ञानात्मक हैं, ऐसा माननेपर तो सब ही पदार्थोंमें सबके ही उपादानपनेका दोष आयगा। याने अतद्रूपको तद्रूपोपादान माननेपर सबके सब उपादान बन जायेंगे। अत. सुख आदिक विज्ञान भिन्नोपादान नही हैं। यदि कहो कि विज्ञानसे अभिन्न सहकारी

कारणपनेकी बात सुख आदिकमें कही जा रही है तो ऐसे अभिन्न हेतुकी बात रूप और आलोकमे भी पायी जाती है। तो जैसे सुख आदिकको विज्ञानाभिन्नहेतुज कहकर विज्ञानात्मक सिद्ध करना चाहते हो, इस ही प्रकार रूपादिकको भी विज्ञानात्मक मानना होगा। अथवा विज्ञानादिकको रूपात्मक आलोकात्मक मानना होगा। अब शंकाकार कहते हैं कि विज्ञानके अभिन्न होनेसे उत्पन्न होना है उसका अर्थ यह है कि सुख आदिक इन्द्रिय और मनके कारणसे होते हैं। जैसे कि इन्द्रिय और मनके कारण से विज्ञान उत्पन्न होता है उसी प्रकार इन्द्रिय और मनके कारण सुखादिक भी उत्पन्न होते हैं। अतएव सुख आदिक विज्ञानाभिन्नहेतुज बन गए और तब सुख आदिक ज्ञानात्मक सिद्ध हो जाते हैं। उत्तरमें कहते हैं कि इतनेपर भी सुख आदिकमें ज्ञानस्वरूपता सिद्ध नहीं होती। अन्यथा द्रव्येन्द्रिय और मनके साथ व्यभिचार दोष आयगा। देखिये पूर्व द्रव्येन्द्रिय और मन उत्तर द्रव्येन्द्रिय और मनके प्रति कारण है तब उत्तर द्रव्येन्द्रिय जो नई बनी है और उत्तरमन, इनके ज्ञानके साथ अभिन्न हेतुजपना होनेसे अनैकान्तिक दोष आयगा, फिर तो ये इन्द्रिय और मन भी विज्ञानात्मक बन जायेंगे। अतः एकान्तसे सर्वथा सुख आदिकको ज्ञानात्मक नहीं कह सकते।

सुखादि भावोमे चैतन्याचैतन्यात्मकताकी सिद्धि—लाक्षणिक दृष्टिसे भेददृष्टिसे सुखादिमें ज्ञानात्मकता नहीं है, हाँ द्रव्यार्थिकनयसे सुखादिकमें चेतनता मानी जायगी, क्योंकि सुख आदिक भी चैतनद्रव्यसे, आत्मासे अभिन्न है। और, जो परिणति चेतनकी है, चेतनसे अभिन्न है वह सब चेतनरूप कही जाएगी। तो द्रव्यार्थिकनयसे सुखादिक चेतनस्वरूप हैं ज्ञानस्वरूप हैं। पर उनका स्वयका जो लक्षण है उस लक्षणकी दृष्टिसे ज्ञान ज्ञानस्वरूप है और सुख ज्ञानात्मक नहीं है। तो निर्णय यह हुआ कि द्रव्यार्थिकनयसे सुख आदिक ज्ञानात्मक हैं, क्योंकि चेतन द्रव्यसे अभिन्न होनेसे। किन्तु भेदनयसे पर्यायार्थिकनयसे सुखादिक ज्ञानात्मक नहीं हैं क्योंकि सुखका स्वरूप है आल्हाद और ज्ञानका स्वरूप है ज्ञेयबोध। इस आत्माके अनेकात्मकतासे यह सिद्ध होता है कि जो लोग सुख आदिकको सर्वथा चेतन अथवा ज्ञानात्मक मानते हैं वे भी कुछ भूल करते हैं, और जो लोग सुख आदिकको सर्वथा अचेतन ही मानते हैं वे लोग भी भूल करते हैं। ज्ञानसे भिन्न होनेके कारण सुख आदिकमे अचेतनता ही है ऐसा कहने वाले नैयायिक आदिक भी निराकृत हो जाते हैं। सुख आदिक चेतन आत्मासे अभिन्न होनेके कारण कथंचित् चैतन्यस्वरूप हैं।

आत्मामें स्वभावतः चैतन्यस्वरूपताकी सिद्धि—अब यहाँ कोई शंकाकार पूछते हैं कि आत्मामें चेतनता किस तरह सिद्ध होती है? तो उत्तरमें कहते हैं कि आत्माका चेतनपना प्रत्यक्षसे प्रसिद्ध है। सो सब लोग समझते ही हैं। अपने अपने अनुभवसे पहिचान रहे हैं कि आत्मा चेतन है स्वसम्वेदनज्ञानसे सबको अनुभव हो रहा है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। और, फिर अनुमानसे भी समझिये। आत्मा

चेतन है प्रमाता होनेसे। जो अचेतन होता है वह प्रमाता नहीं होता। प्रमाताका अर्थ है जाननहार प्रमाण करने वाला। जैसे घट आदिक पदार्थ अचेतन हैं तो वे प्रमाता, जाननहार इस कारण आत्मा चेतन है इस अनुमानसे भी आत्माका चेतनपना प्रमाणसे सिद्ध है। यहा शकाकार कहते हैं कि आत्मामें चेतनपना स्वभावसे नहीं है। स्वभावसे तो आत्मा एक द्रव्य है। उसमे प्रमिति स्वभावरूप चेतनाका समवाय होनेसे आत्मामे चेतनता सिद्ध होती है, सो ठीक है। आत्माको इस तरह चेतन माननेपर जो हम मानते हैं सो ही माना गया है।-समाधानमें कहते हैं कि आत्मा चेतनासमवायसे चेतन हो यह बात नहीं है। आत्मा स्वरूपसे स्वय ही सामान्यतया चेतन प्रसिद्ध हैं। यदि आत्मामें स्वभावत· चेतन न हो तो चेतनाका विशेष जो प्रमितिभाव है उसके समवायकी सगतता नही हो सकती है घट आदिककी तरह। बताइय कि उस चेतनाका समवाय आत्मामे ही क्यो होता है ? घट पट आदिक पदार्थमे क्यो नही हो जाता ?

सुखादि भावकी चेतनमे भिन्नप्रतिभासता व अभिन्न प्रतिभासताकी प्रसिद्धि—अब शकाकार कहते हैं कि मानलो कदाचित् कि आत्मा चेतन है, परन्तु चेतन होनेपर भी आत्मासे सुख आदिक भिन्न कहलायेंगे। यदि सुख आदिक चेतन आत्मासे अभिन्न हो जायें तो फिर इसमे भिन्न प्रतिभास न रहना चाहिए। और प्रतिभास भिन्न भिन्न रूपसे हो ही रहा है। यह सुख है यह ज्ञान है यह बात समझमें भिन्न-भिन्न रूपसे आती ही है। इससे यह विदित होता है कि आत्मा चाहे चेतन भी हो लेकिन सुख आदिक आत्मासे अभिन्न अर्थात् एक रूप नही है। समाधानमें कहते हैं कि आत्मामे सुख आदिक सर्वथा भिन्न रूपके प्रतिभासमे आते हों यह बात प्रसिद्ध है। आत्मा अलग हो और सुख आदिक किसी अलग जगह हो रहे हो ऐसा तो नहीं होता। सुख आदिक किसी अलग जगह हो रहे हो ऐसा तो नही होता। सुख आदिक भाव आत्माके आधारमे ही आत्मामे ही समझे जाते हैं। हाँ कथचित् भिन्न प्रतिभास की यदि बात कहते हो तो हम मानलें लेकिन कथचित् भिन्न प्रतिभास होना अभेदका विरोध नहीं करता। सो सुख आदिक आत्मासे कथचित् भिन्न है, कथचित अभिन्न हैं। सो चित्रज्ञानकी तरह ही सुख आदिक भावसे तन्मय एक चेतन पुरुष सिद्ध हो जाता है। जैसे कि चित्रज्ञानको क्षणिकवादियोने एकानेकात्मक माना है वह ज्ञान एक है। पर उसमे नील प्रतिभास पीत प्रतिभास आदिक अनेक पदार्थ प्रतिबिम्बित होनेसे जो अनेक प्रतिभास चित्रज्ञानमे हो रहे हैं तो वहाँ भी चित्रज्ञान अनेकात्मक है। तो जैसे चित्रज्ञान एकरूप है और अनेकरूप है इसी प्रकार आत्मा भी एकरूप है और अनेकात्मक है। और, केवल आत्माकी ही बात नहीं, समस्त पदार्थ कथचित् एकस्वरूप और अनेकस्वरूप हैं। सर्वथा एकान्तकी बात कहना युक्तिसे विरुद्ध है, तब इस तरह यह सिद्ध हुआ कि जैसे चित्रज्ञानको क्षणिकवादी दार्शनिक एकानेकात्मक रूपसे देखा करते हैं इसी प्रकार सुख आदिक चेतन अर्थात् एक आत्मा जिसमें सुखज्ञान आदिक

अनेक गुण तादात्मकरूपसे हैं। सो यह आत्मा अनेक विषयोंमें तन्मय है और स्वयं एक द्रव्य है।

अतस्तत्त्व व बहिस्तत्त्वरूप समस्त पदार्थोंमें असंकीर्णविशेषात्मकत्व व एकात्मकत्वकी सिद्धि—उक्त विवरणसे यह सिद्ध हुआ कि अतस्तत्त्व एकानेकात्मक है और इसी प्रकार समस्त बहिस्तत्त्व भी एकानेकात्मक है। जो सामने कुछ नजर आ रहा है स्कंध, कोई वस्तु जो दिख रही है वह एक पिण्डमें है अतएव तो एकरूप है लेकिन वर्ण न्यारा-न्यारा है, संस्थान जुदा जुदा है कोई चौकोर है कोई गोल है। कोई नाना आकारमें है इस तरह ये समस्त बाह्य तत्त्व भी एकानेकात्मक हैं। एक सामान्यरूपसे तो एकस्वरूप है यों जो कुछ भी सत् हैं वे सब एकानेकात्मक हैं। यान द्रव्य गुण पर्यायात्मक हैं जो भी है है ना वह प्रतिक्षण नियमसे परिणमता रहता है। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है कि वह 'है" तो है लेकिन उसका व्यक्तरूप अथवा परिणमन कुछ भी न हो। प्रत्येक सत् परिणमनशील है। तो परिणमन दृष्टिसे तो पदार्थमें अनेकात्मकता सिद्ध होती है। और, वह स्वयं एक ध्रुव द्रव्य है इस दृष्टिसे उसमें अनेकात्मकता सिद्ध होती है यों सभी पदार्थ एकात्मक हैं। चाहे चेतन हो चाहे अचेतन हों उनमें केवल ज्ञानलक्षण आदिको ही तत्त्व मानना अथवा नील पीत आदिक भावोंको ही तत्त्व मानना युक्तिसंगत नहीं है। उनके आधारभूत भी कुछ होना ही चाहिए। निराधार यह भाव सत्त्व नहीं रख सकता है। तो जो इन अनेक भावोंका आधार है वह तो एकरूप है और जो यह, तत्त्व है परिणमन है इसके स्वरूपकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह अनेकरूप है। मूल प्रसंग यह चल रहा है कि सर्वथा एकान्तवादी दार्शनिकोंके यहाँ अपना ही मन्तव्य प्रत्यक्ष और युक्तियोंसे बाधित होता है। अत अनेकान्तका शासन जिसका है ऐसे वीतराग सर्वज्ञ अरहंत ही आप्त हो सकते हैं।

अन्तस्तत्त्वकी भांति स्कन्धादिक बहिस्तत्त्वमें भी असंकीर्णविशेषात्मकपने व एकात्मकपनेकी सिद्धि—जिस प्रकार अतस्तत्त्व अर्थात् चेतन असंकीर्ण विशेषात्मक होकर एकात्मक है इसी प्रकार ये समस्त बहिस्तत्त्व पुद्‌गल स्कंध आदिक असंकीर्ण विशेषात्मक होते हुए एकात्मक हैं। जैसे चेतनमें यह समझमें आता है कि यह एक अखण्ड द्रव्य है अतएव एकरूप है, फिर भी भेददृष्टिसे ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक अनेक गुण इसमें विदित होते हैं, और ये सब गुण अपना-अपना लक्षण लिये हुए हैं। अतएव असंकीर्ण हैं। ऐसे असंकीर्ण अपने अपने स्वरूपको रखने वाले अनेक विशेष भी विदित होते हैं। ऐसे ही इन पुद्‌गलोंमें जो कि एक एक अखण्ड परमाणु हैं वे एकरूप हैं फिर भी उनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिक विदित होते हैं तो ये पुद्‌गल स्कंध भी वर्ण आकार आदिक अनेक विशेषोंसे युक्त हैं फिर भी एकस्वरूप हैं। यों सभी तत्त्व चेतन अथवा अचेतन एकानेकात्मक हैं। उनमें सर्वथा एकान्त नहीं माना जा सकता है। स्कंधोंमें कोई ऐसी कल्पना करे कि वहाँ तो केवल वर्णादिक

ही देखे जाते हैं—वर्ण, रस, गंध, स्पर्श ये ही विदित होते हैं प्रत्यक्ष बुद्धिमें, किन्तु स्कधका ज्ञान नही होता । स्कध कहते हैं परमाणुओंकी स्थूल परिणतिको तथा क्षणिकवादसिद्धान्तके अनुसार स्कध कहा गया है परमाणुओंके ढेररूपको । तो वहाँ क्षणिकवादको कल्पनामे यह आता है कि प्रत्यक्ष बुद्धिमें तो रूपक्षण, रसक्षण आदिक ही विदित होते हैं स्कध कोई नही है । ऐसी कल्पना करना युक्त नही है क्योकि यदि रूपादिकका ही ग्रहण प्रत्यक्ष बुद्धिमें मानकर स्कधको अवास्तविक कह दिया जाय या स्कधका प्रत्यक्ष बुद्धिमें ग्रहण ही नही होता ऐसा मान लिया जाय, केवल रूपादिकका, सबका ग्रहण हो ही नही सकता । जब स्कधका ग्रहण नहो, एक स्थूलका जब प्रत्यक्ष नही हो पा रहा तो उस हीमे तो रूप, रस आदिक हैं, उनका ग्रहण कैसे हो जायगा ? स्कधको छोडकर वर्णादिक और कुछ उपलब्धिमे नही आते । जैसे कि क्षणिकवादी कहते हैं कि रूप, रस आदिकको छोडकर स्कधकी कोई उपलब्धि नही होती । रूप रस आदिकके रूपसे वही स्कध उपलब्धिमे आ रहा है । तब यह कल्पना करना युक्त न रहा कि प्रत्यक्षज्ञानमें केवल रूप, रस आदिकका ही निरखन हो रहा है और स्कधका नही । स्कध तो पिण्डरूप पदार्थ है और रूप रस आदिक ये भिन्न भिन्न उसके परिणमनरूप हैं ।

रूपादि परमाणुओंकी सत्ता होनेसे स्कन्धकी असिद्धिका शकाकार द्वारा कथन अब क्षणिकवादी शका करते हैं कि रूपादिक परमाणु जोकि प्रत्यासन्न हैं, अतीव निकट-निकट हैं, किन्तु असम्बद्ध हैं वे प्रत्यक्ष होते हैं । रूप, रस, गध ये स्वतन्त्र परमाणु हैं और एक दूसरेसे असम्बद्ध हैं रूपका रसमें क्या काम ? रूपका लक्षण जुदा, रसका लक्षण जुदा, सबका अपना अपना लक्षण है और अपनी-अपनी अपने क्षणमे सत्ता है । तो ऐसे रूपादिक परमाणु जो प्रत्यासन्न हैं और असम्बद्ध हैं वे ही प्रत्यक्ष हैं अपने प्रतिभासके कारणके वशसे प्रत्यक्षज्ञानको उत्पन्न कर सकें ऐसे ही समर्थ रूपादिक परमाणुओंकी उत्पत्ति हुआ करती है । रूपादिक परमाणु प्रतिक्षणमे नवीन-नवीन उत्पन्न होते रहते हैं और वे प्रत्यक्ष ज्ञानको उत्पन्न करते हैं उनमे यह सामर्थ्य है । जब चेतन प्रमाता उसपर उपयोग देते हैं और साधन जब सही मिल जाता है तब ये रूपादिक परमाणु प्रत्यक्ष ज्ञानको उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं । और उन ही कारण सामग्रीसे जैसे चक्षु आदिक इन्द्रियाँ हुई, प्रकाश आदिक मिले, ऐसे ही कारणसमूहसे ही अन्य जन जो नैयायिक स्याद्वादी आदिक अन्य दार्शनिक भी स्कधको प्रत्यक्ष माना करते हैं । तो रूपादिक परमाणु जो प्रत्यक्षमें आते हैं सो कारण सामग्री मिले तब आते हैं । रूप हो चक्षु हो, प्रकाश हो तो इन सामग्रियोंके प्रत्यक्षमें आया करते हैं । अन्यथा अर्थात् अपने कारणके वशसे ही स्कध प्रत्यक्ष ज्ञानको उत्पन्न करनेका सामर्थ्य स्वभाव न रखे, ऐसी बात माननेपर फिर तो सर्व स्कधोंमें प्रत्यक्षपनेका प्रसग आ जायगा । जो स्कध दृश्य है अन्य दार्शनिकोंकी दृष्टिसे और जो स्कध अदृश्य हैं वे सभीके सभी प्रत्यक्ष हो जाने चाहियें । क्योंकि

स्कधपना तो उन सबमे मौजूद है। और यदि स्कधपनेकी अविशेषता होनेपरे भी किन्हीं स्कधोंमें तो प्रत्यक्ष स्वभाव मान लिया जाय और कुछ स्कधोंमें प्रत्यक्षत्व स्वभाव न माना जाय तो जो पिशाच शरीरादिक स्कध है वे परमाणुरूप अपने कारण से ही तो उत्पन्न हैं सो अपने े स्वभावकी ओरसे उन परमाणुओंमें कोई प्रत्यक्षमें आवे कोई प्रत्यक्षमें न आवे यह बात बन जायगी क्योंकि स्कधोंकी भांति परमाणुओं में भी प्रत्यक्षाप्रत्यक्षस्वभाव मान लिया जाना चाहिए तो जैसे अन्य दार्शनिकोंने स्कधोंमें अपनी कारण सामग्रीके वशसे किन्हीं स्कधोंको प्रत्यक्ष होने योग्य माना है और किन्ही स्कधोको प्रत्यक्ष न होने योग्य समझा है ऐसी ही बात परमाणुओंमें समझ लेना चाहिए कि पुञ्जीभूत कुछ परमाणु तो प्रत्यक्षमें आ जाते हैं और जो पुञ्जीभूत नहीं हैं, अथवा पिण्डरूप नही हैं ऐसे परमाणु प्रत्यक्षमें नहीं आ पाते हैं। यह बात जैसे स्कधमें प्रत्यक्ष स्वभाव और अप्रत्यक्ष स्वभावसे मान लिया करते हैं ऐसे ही इन परमाणुओमे भी कुछ परमाणु प्रत्यक्ष हो पाते हैं, कुछ परमाणु प्रत्यक्षमें नहीं आते हैं, यह विभाग बन जायगा। फिर अवयवीकी कल्पना करना व्यर्थ है। पदार्थमें ही ऐसा स्वभाव पडा हुआ है कि वे कोई तो प्रत्यक्षमे हो ऐसा स्वभाव पडा हुआ है कि वे कोई तो प्रत्यक्षमें आ जात हैं और कोई प्रत्यक्षमें नही आ पाते। जिन जिनके कारण सामग्री पूर्ण मिल जाती है वे तो प्रत्यक्ष ज्ञानमें साफ आ जाते हैं और जिनके कारण सामग्री पूर्ण नहीं मिल पाती वे प्रत्यक्षज्ञानमें नहीं आ पाते।

प्रत्यक्षमे स्वसमर्पण न होनेसे स्कन्धकी अमूल्यदानक्रियताका शकाकार द्वारा कथन—जब परमाणु ही प्रत्यक्षगोचर होते हैं तब वहाँ अवयवीकी स्कध की कल्पना करना व्यर्थ है, क्योंकि अब तो यहाँ अवयवी बिना मूल्य दिए ही खरीदे हुए की तरह हो गया। प्रयोजन अवयवीका कुछ नहीं है। काम कुछ आ नहीं रहा है। प्रत्यक्ष बुद्धिमें अवयवीका कोई हाथ नहीं है और कुछ भी मूल्य चुकाये बिना अवयवीको मान रहे हो ग्राह्य अर्थात् वे ज्ञानमें आते हैं सो यह तो एक मुफ्त -ही खरीद लेने जैसी बात हुई। याने मुख्य प्रत्यक्षमें तो परमाणु हीं अपना आकार समर्पण करते नहीं, फिर भी स्कधको प्रत्यक्षगोचर मानना चाहते हो। स्कध तो विकल्प बुद्धिमे ही प्रतिभासमें आया करते हैं। और विकल्प बुद्धि है अवास्तविक निर्विकल्प, वास्तविक प्रत्यक्ष है, जो अन्यापोह वाली विकल्प बुद्धि है, जिसमें किसी पदार्थ का विकल्परूपसे ग्रहण होता है। जिस ग्रहणकी रूप रेखा यह है कि यह और अन्य कुछ नहीं है। जैसे गाय पशु आदिक विकल्पबुद्धिमें आये तो इस ढगसे ही तो आये कि यह अगो नहीं है अर्थात् घोडा भैंस आदिक अन्य समस्त पदार्थ नहीं है। इस तरहका विकल्प बुद्धिमें ही वह स्कध प्रतिभासमें आयगा सो स्कध प्रतिभासमें आयगा। स्कंध का यदि पूर्वापर विचार किया जाता है तो युक्तिसगत नहीं बैठता। जब स्कधके सम्बन्धमें यह विचार करने बैठते हैं कि स्कध अर्थात् अवयवी यदि कुछ है तो वह बतलाइये कि अवयवी अवयवोंमें सर्वथा एक स्वभावसे रहता है या अवयवी अवयवोमे

सर्वथा एक स्वभावसे रहता है या अवयवी अवयवोंमें सर्वात्मकरूपसे रहता है। दोनों विकल्पोंका विचार करनेपर कोई समाधान नहीं मिलता तो ये स्कंध विचार किए जानेपर युक्तिसंगत नहीं होते। अतः रूपादिक परमाणु ही वास्तविक पदार्थ हैं। जैसे कि एक-एक असम्बद्ध परमाणु वास्तविक है। स्कंध वास्तविक नहीं है, ऐसे ही एक प्रदेशी ही तत्त्व वास्तविक है। अनेक प्रदेशोंको घेर सकने वाला कोई एक पदार्थ हो सो नहीं है तथा एक ही समयमें जिसकी सत्ता है वह ही पदार्थ वास्तविक है। अनेक समयोंमें कोई रहे ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने अपने ही लक्षणको रखने वाला है स्वलक्षणसे अतिरिक्त अन्य कुछ भी मुद्रा और स्वरूप किसी पदार्थका नहीं है। तो इस सिद्धान्तके अनुसार जो दिख रहे हैं पिण्डरूप स्कंध वे तो सब मायारूप हैं और विकल्प बुद्धिसे आये हुए हैं। वास्तविक तो रूपक्षण रसक्षण आदिक परमाणु ही हैं। स्कंध कोई वस्तु नहीं है।

क्षणिकवादियोंकी स्कंध न माननेकी कल्पनाका निराकरण - शंकाकार की उक्त शंकाकी सारी योजना असंगत है—स्कंध निर्विकल्प बुद्धिमें ही प्रतिभासमान होता है और उसके विकल्पों द्वारा विचार करनेपर संगतपना नहीं बैठता है अथवा प्रत्यक्षमें अपने आपका तो समर्पण नहीं करता और प्रत्यक्ष स्वीकार कहलनेकी चाह कि जा रही है आदिक बातें सब असंगत हैं क्योंकि प्रत्यासन्न अर्थात् अत्यन्त निकट ठहरे हुए और असम्बद्ध ऐसे परमाणुओंका भिन्न-भिन्न रूपसे किसी भी पुरुषको कभी भी निश्चय नहीं हो रहा है अतएव ऐसे परमाणुओंका प्रत्यक्ष नहीं बन सकता है। स्कंध का ही स्थूलरूपसे प्रत्यक्षमें प्रतिभास होता है और, स्कंधरूपसे ही इन सब पदार्थोंका निश्चय हो रहा है। अतएव स्कंधका ही प्रत्यक्ष होना घटित होता है, परमाणुओंका जैसा कि असम्बद्ध माना गया है इन दृष्टिगोचर पदार्थोंके बीच उनका प्रत्यक्ष नहीं होता। यह भी नहीं कह सकते कि स्कंधका प्रत्यक्ष नहीं होनेपर सभी स्कंधका प्रत्यक्षपना हो जाय अर्थात् दृश्य और अदृश्य पिशाच शरीरादिक भी प्रत्यक्षभूत हो जायें यह दोष नहीं दिया जा सकता, क्योंकि परमाणुओंकी तरह सारे स्कंध समान परिमाण वाले नहीं हैं। जैसे कि परमाणु जितने भी हैं वे सब एक प्रदेशी परिमाण वाले हैं इसी प्रकार स्कंध सब समान परिमाण वाले नहीं होते, स्कंधोंमें नाना स्वभाव नाना परिमाण पाये जाते हैं और, इसी कारण यह बात नहीं कह सकते कि यदि कुछ स्कंध प्रत्यक्ष ज्ञानमें आ रहे हैं तो सारे स्कंधोंको प्रत्यक्ष ज्ञानमें आ जाना चाहिए सभी स्कंधोंमें प्रत्यक्ष स्वभावता बन जाय यह आपत्ति नहीं दी जा सकती, स्कंधोंमें अणु महान आदिक परिमाणका भेद पाया जाता है कोई सूक्ष्म है कोई स्थूल है ऐसे अनेक तरहके स्कंध पाये जाते हैं, इस कारण उन स्कंधोंमें अदृश्य स्वभाव और दृश्य स्वभाव का भेद पाया जाता है। कोई स्कंध अदृश्य स्वभाव है और कोई स्कंध दृश्य स्वभाव है, इसलिए किन्हीं स्कंधोंके प्रत्यक्षभूत हो जानेपर सारे स्कंध प्रत्यक्षभूत हो जायें, यह आपत्ति नहीं आती।

स्कन्धोकी अमूल्यदानक्रयिताकी शकाका समाधान और वर्तमान प्रसग का निष्कर्ष—इस प्रसगमें यह भी नहीं कह सकते कि स्कधोका विदम परिमाण यदि हैं तो रहो अर्थात् कोई स्कध स्थूल है, कोई सूक्ष्म है यो नाना प्रकारके परिमाण वाले स्कध होते हों तो हों लेकिन इन स्कधोंका विकल्प बुद्धिमें ही प्रतिभास होनेसे अहेतु पना है और इसी बातको लेकर बिना मूल्य दिए खरीदनेकी तरह अर्थात् निर्विकल्प मुख्य प्रत्यक्षमें स्कध आत्मसमर्पण नही करते और फिर उन्हें प्रत्यक्ष बताया जा रहा ये सब दोष नही आते। क्योंकि स्कधोंने प्रत्यक्षमें स्वका समर्पण किया है। सब लोग अपने ज्ञानमें समझ रहें हैं कि हमारे ज्ञानमें ये स्थूल पिण्डभूत स्कध आ रहे हैं न कि हमारे ज्ञानमें ये स्थूल पिण्डभूत स्कध आ रहे हैं न कि एकप्रदेशी असम्बद्ध परमाणु आ रहे हैं। तो प्रत्यक्षमें इन स्कधोंने स्वका समर्पण किया है तब हम प्रत्यक्षताकी बात कह रहे हैं। भली प्रकारसे स्कधसे सम्बन्धमें विचार किया जाय तो किन्हीं भी विकल्पों में स्कधोका खण्डन नहीं होता। ये सब आगेकी इस कारिकामें कि "सतान समुदायश्च साधर्म्यं च निरकुश। प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिह्नवे, जो द्वितीय परिच्छेदमें कहा गया है उस कारिकामें स्कधकी सिद्धिमे बहुत विस्तारसे विचार किया जायगा। निष्कर्ष यह है कि जैसे अन्तस्तत्त्वके सम्बन्धमें एकात्मकता और अनेक विशेषात्मकता है-याने चेतन्य स्वरूपसे अखण्ड है एक है और भेद दृष्टिसे उसमें ज्ञान दर्शन आनन्द आदिक अनेक गुण विदित होते हैं तो यो अनेक विशेषोसे युक्त होकर यह चेतन एक रूप है इसी प्रकार ये सब बाह्य तत्त्व भी पुद्गल भौतिक स्कध पिण्ड भी ये सब अनेक विशेषात्मक होकर एक रूप हैं, और स्कधोकी भी बात यह है और परमाणुओंकी भी बात यह है। परमाणु भी अपने आपमें एक अखण्ड स्वरूप रखते हैं और रूप, रस, गध, स्पर्श ये गुण भी पाये जाते हैं। स्कधोंमें ये विशेष स्पष्ट विदित हो जाते हैं, परमाणुमे विदित नही हो पाते। तो यों समस्त सत् चाहे वह अन्तस्तत्त्व हो अथवा बाह्यतत्त्व हो, सबका सब अनेक विशेषात्मक होकर अपने अपने स्वरूपसे एकात्मक है अत॰ सर्वथा एकान्तवादियोका माना गया तत्त्व प्रत्यक्षसे ही बाधित हो जाता है।

स्कन्धको ही वास्तविक व रूपादिको अवास्तविक माननेकी एक शका—अब यहाँ सांख्यसिद्धान्तानुयायी कहते हैं कि स्कध प्रत्यक्षके विषयभूत हैं तो ठीक है, सही बात है। सब स्कधको ही सत्य मानो, वर्णादिकको सत्य मत मानो। वर्णादिक स्कधसे अलग और कुछ नहीं है स्कध ही चक्षु आदिक कारणके भेदसे ज्ञान के साधनके भेदसे वर्णादिक रूपमें भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतिभासित हुआ करते हैं। अर्थात्-है तो एक स्कध लेकिन उस स्कधको जब चक्षुइन्द्रियसे जाना जाता है तब उसमें रूप प्रतिभात होता है उसे जब रसना इन्द्रियसे जाना जाता है तो रस प्रतिभात होता है। घ्राणइन्द्रियसे जाननेपर उसमें गध प्रतिभात होता है स्पर्शन इन्द्रियसे जाननेपर उसमें स्पर्श प्रतिभात होता है तो स्कध तो है एक किन्तु जाननेके जो साधन हैं उन साधनोके भेदसे उनमें वर्णादिकके भेद प्रतिभात होते हैं। जैसे कि थोडी अगुलीसे

नेत्रको ढाक दिया जाय तो नेत्रमें भी विशेष (भेद) पड जाता है। चन्द्रमा अथवा दीपककी लौ वह एक है तो भी नेत्रको कुछ एक ओर अगुलिसे ढकने वालोंके वह अनेक प्रतिभासमें आती है। तो अनेक वास्तवमे हैं ता नही, चन्द्र तो एक है। अथवा एक दीपक रखा है उसकी लौ तो एक है लेकिन जब कुछ अगुलीसे नेत्रको दबाकर निरखते हैं तो वे अनेक प्रतिभासमें आते है। तो यह साधनभेदसे ही तो भेद प्रतिभास हुआ। इसी प्रकार स्कध तो एक है मगर चक्षु आदिक इन्द्रियके भेदसे उनमें वर्णादिकके भेद प्रतिभासमें आते हैं। वस्तुत. स्कध ही है। स्कधसे अतिरिक्त रूप, रस गध आदिक नही हैं ?

स्कन्धमात्र तत्त्व माननेकी शकाका समाधान - अब उक्त शकाके समाधानमें करते हैं कि यह बात भी युक्त नही है कि स्कध ही मात्र तत्त्व है। वर्णादिक कुछ है नहीं, क्योंकि ऐसा माननेपर फिर तो सत्ता आदिकके अद्वैतका भी प्रसग आ सकता है जो कि साख्यको स्वय इष्ट नही है। वहाँ भी यह कहा जा सकता है कि विश्वमें केवल एक सत्ता ही है, द्रव्य, गुण आदिक कुछ नही है, सत्तासे पृथग्भूत कहीं द्रव्य गुण आदिक हो ऐसी बात तथ्यभूत नही है। कल्पनाके भेदसे ही उस एक सत्तामे भेदका प्रतिभास होता है, ऐसा कहकर एक सत्ता आदिकके अद्वैत माननेका प्रसग आ जाता है। यहाँ कोई कहे कि फिर तो एक सत्ता द्वैत ही मान लिया जाय तो भी बात नही है क्योंकि सत्ताद्वैतके सम्बधमे कोई प्रमाण नही है। इस प्रकरणके बाबत आगे कारिकामें खुद विस्तारसे वर्णन किया जायगा।

पदार्थके अनेकान्तात्मकत्वकी सिद्धिका समर्थन - यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि जैसे चित्रज्ञान अनेक विशेषात्मक होता हुआ एकात्मक माना गया है क्षणिकवादियोने, क्योंकि उसमें नील पीत आदिक प्रतिभास अनेक है, अतएव अनेकात्मक है। और, वह ज्ञान एक अपने स्वरूपमे है अत: एकात्मक है। तो जैसे चित्रज्ञानको अनेकात्मक एकस्वरूप माना है ऐसे ही चेतन भी सुखाद्यात्मक एक स्वरूप है अर्थात् उसमे सुख, ज्ञान, दर्शन आदिक अनेक गुण हैं। फिर भी अपने स्वरूपसे एक है। सो केवल अतस्तत्त्वको ही यो न निरखना कि यह अनेकात्मक एक स्वरूप है, किन्तु वर्ण सस्थान आदिक स्वरूप स्कध भी एकात्मक हैं। स्कध अपने स्वरूपसे एक पिण्डरूप हैं किन्तु उनमे वर्ण गध, रस आकार आदिक अनेक बातें हैं। तो यो बहिस्तत्त्व भी एकानेकात्मक है। अन्तस्तत्त्व भी एकानेकात्मक है। विश्वमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो सर्वथा किसी एकान्त स्वरूप हो। और इसी कारण यह बात जो कही गई है वह पूर्णतया युक्त है कि विश्वमें ऐसा कुछ भी नही है जो रूपान्तरसे विकल हो अर्थात् किसी पदार्थमें सत्त्व समझा जा रहा हो तो वह असत्त्वसे विकल नही है। सत्त्व है तो साथ ही वहाँ असत्त्व भी है। किसी अपेक्षासे अस्तित्त्व भी है तो अन्य अपेक्षासे नास्तित्त्व भी है। सो जैसे न कोई केवल सत्त्वरूप है न कोई केवल असत्त्वरूप है, इस ही

प्रकार कोई भी पदार्थ न केवल नित्यरूप है और न केवल अनित्यरूप है। जैसे पदार्थ एकानेकात्मक है, सद्सदात्मक है इसी प्रकार नित्यानित्यात्मक है। इसी तरह यह भी जानना कि कोई भी पदार्थ अद्वैत एकान्तरूप नहीं है और साथ ही द्वैतादिक एकान्त, रूप भी नहीं है। चाहे अन्तस्तत्त्व हो, सम्वेदनात्मक पदार्थ हो, चाहे बहिस्तत्त्व हो, कोई भी सर्वथा एकान्तस्वरूप दार्शनिकोंने प्रतिज्ञा की है कि पदार्थ केवल क्षणिक है, केवल नित्य है, केवल अद्वैत है अथवा द्वैत है, यो किसी भी प्रकारसे एकान्तस्वरूप कुछ भी नहीं है।

सामान्यविशेषात्मक पदार्थका सम्वेदन होनेसे एकान्तवाद कल्पनाकी अस्तगतता—सामान्य विशेष ही है एक आत्मा जिसका इस प्रकार अथवा सामान्य और विशेषोंसे उपलक्षित है एक स्वरूप जिसका इस प्रकारसे प्रत्येक वस्तुका अनेकान्त स्वरूप है, सामान्य विशेषात्मक एक अखण्ड द्रव्यकी जो सम्यक् जानकारी है व एकान्तकी अनुपलब्धि है वह भली भाँति अनेक प्रमाणोंसे सिद्धि हो चुकी है और मुख्यतया प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही सिद्धि हो गई है, सो सिद्ध होती हुई यह अनेकान्त स्वरूपकी जानकारी अनाहूत कल्पनाओंको अस्तगत कर ही देती है। जो कोई कुछ भी ज्ञान वाले हैं जिनको चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे स्पष्ट बोध हो रहा है उनके चित्तमें अनाहूत कल्पनायें नहीं ठहर सकतीं। तो जब एक प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही एकान्तवादियोंका इष्ट मन्तव्य बाधित हो जाता है तो अन्य प्रमाणोंके कहनेका फिर मतलब ही क्या रहा? जब एकान्तकी उपलब्धि ही नहीं हो रही प्रत्यक्ष प्रमाणसे भी, तब विशेष युक्तियाँ देनेकी आवश्यकता नहीं रहती। देखिये! सामान्य एकान्तकी उपलब्धि नहीं हो रही है क्योंकि वस्तुमें विशेषकी भी उपलब्धि हो रही है। इसी प्रकार केवल विशेष एकान्तकी उपलब्धि नहीं हो रही है क्योंकि वस्तुमें सामान्यका भी निरखना हो रहा है सामान्य एकान्तको मानते हैं सत्त द्वैतवादी। सत्ताद्वैतवादियोंका मन्तव्य है कि विश्वमें केवल एक सत्तामात्र ही है सो यह बात यों निराकृत होती है कि रूपादिक विशेष ये बराबर प्रत्यक्षसे उपलब्ध हो रहे हैं। कुछ लोग मानते हैं विशेष एकान्त केवल रूपक्षण, रसक्षण आदिक ही पदार्थ हैं। उनका मन्तव्य भी प्रत्यक्षसे निराकृत होता है। रूप रस आदिकका आधारभूत एक सामान्य पदार्थ प्रत्यक्षसे भी जाननेमें आ रहा है। कोई पुरुष सामान्य एकान्त और विशेष एकान्त दोनोंको मानता है और मानता है परस्पर निरपेक्ष। उनके भी मन्तव्यकी सिद्धि नहीं होती क्योंकि अनेक विशेषात्मक होकर एकात्मक वस्तु देखी जा रही है। जो वस्तु स्वयं सामान्यात्मक है और विशेषात्मक है, इस प्रकार सामान्यविशेषात्मक होकर भी एकस्वरूप है, यह वस्तुमें बराबर तत्त्व देखा जा रहा है। कोई पुरुष जो भेद नहीं मानते, एक अभेदको ही स्वीकार करते उनका यह सामान्य विशेष दोनोंको मानकर भी एक ही वस्तुमें कुछ हिस्से तक सामान्य है। कुछ हिस्से तक विशेष है। इस प्रकार सामान्यात्मक और विशेषात्मक मानते हैं, सो उनका भी इस तरह सामान्य विशेषरूप एक आत्मा सिद्ध नहीं होता।

क्योंकि ऐसे जुदे-जुदे सामान्य और विशेष भाग वाले विकल्पोंसे परे जात्यन्तरभूत सामान्य विशेषात्मक एकरूप वस्तुकी जानकारी हो रही है समस्त वस्तु सामान्यकी अपेक्षा सामान्य है, विशेषकी अपे ।। विशेष है वस्तु है वही एक, पर जिस नयकी विवक्षामे निरखा जाता है उस प्रकारसे वस्तुमे तत्त्वका दर्शन होता है। स्वरूपसे युगप देखो ता वस्तु एक अवक्तव्य है। जिसे सामान्य विशेषात्मक कहा जा रहा है। उस सामान्य विशेषात्मक एक-एक अखण्ड द्रव्यका सम्वेदन ज्ञाननेत्र वाले विवेकी पुरुषोंको जिनको स्पष्ट इन्द्रिय बोध है उनको बराबर जच रहा है तो उनके चित्तमे अनाहत्व कल्पना नही ठहर सकती है। जो चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे रहित हो, अध हो, अविवेकी हो उनमे ही वस्तुस्वरूपसे विरुद्ध कल्पनायें सम्भव हो सकती है। सो वे कल्पना मात्र है। कल्पना कर लेने मात्रसे तत्त्व उस ही प्रकारका हो जाय सो नही होता तो यो पदार्थ सामान्य विशेषात्मक हो जाने जा रहे है इस कारण एकान्तवाद की कल्पना युक्त नही है।

स्वाभावविरुद्धोपलब्धि व स्वभावानुपलब्धि हेतुसे एकान्तका प्रतिषेध

अब वस्तुस्वरूपको दूसरे पहलूसे देखिये वस्तुके एकान्त धर्मकी उपलब्धि नहीं हो रही है। अतएव यह एकान्तकी अनुपलब्धि अनाहंत कल्पनाका अस्त कर देती है। किस प्रकार सो सुनो—अनुमान प्रयोगसे भी जाना जाता है जो प्रत्यक्षसे सिद्ध करने वाला है। सर्वथा एकान्त नही है, क्योकि सर्वथा एकान्तकी उपलब्धि होनेसे। तो यह स्वभाव विरुद्धोपलब्धिनामका हेतु सर्वथा एकान्तके निषेधको करता है सर्वथा एकान्तस्वभावसे विरुद्ध है। अनेकान्तस्वभाव, और उसकी उपलब्धि हो रही है। अत सर्वथा एकान्तका प्रतिषेध युक्तिसगत है। अथवा दूसरा प्रयोग-देखिये सर्वथा एकान्त नही है एकान्तकी ही अनुपलब्धि है अतएव यह हेतु स्वभावानुपलब्धि है। जिस बातको हम सिद्ध करना चाहते हैं उस स्वभावका ही पता नहीं है। तो यो सर्व ओरसे, विधिद्वारसे प्रतिषेध द्वारसे चक्षु आदिक इन्द्रियोंसे बराबर सम्वेदन हो रहा है कि सर्व वस्तु अनेकात्मक हैं तब एकान्तवाद युक्तिसगत न ठहरा और जो एकान्तवादी हैं और अपनेको आप्त मानते हैं वे आप्तके अभिमानसे दग्ध हैं और उनका मतव्य तो स्पष्ट प्रत्यक्षसे हीं बाधित हो रहा है। हम जब इन स्थूल पदार्थोंको निरखते हैं तो ये सब सामान्यविशेषात्मक नजर आते है। मिट्टीका घडा बना, घडा बनना सो हुआ मगर मृत्पिण्डका विनाश भी हुआ। तो मृतपिण्ड और घट ये विशेष परिणतियाँ है, उन विशेषोंकाभी दर्शन हो रहा है और यह भी दिख रहा है कि घट और मृत्पिण्डमें उपस्थित जो मिट्टी सामान्य है वह तब भी थी अब भी है, घटके फूट जानेपर भी कपाल पर्यायका उत्पाद होगा तब भी मिट्टी रहेगी। इस तरह सामान्य तत्त्वकी तो सदा उपलब्धि है और विशेष तत्त्वकी अपने-अपने अवसरमें उपलब्धि है, यह तो हुई द्रव्य पर्यायके सम्बन्धकी बात। अब द्रव्य और गुणके सम्बन्धमें भी समझें तो द्रव्य है शाश्वत एक स्वरूप अखण्ड और उसमें जो शक्तियाँ पाई जाती हैं,

जिन्हें गुण शब्दसे कह सकते हैं वे हैं अनेक। जैसे आत्मामें ज्ञान दर्शन आनन्द आदि तथा इन पुद्गल पदार्थोंमें रूप, रस, गंध, स्पर्श हैं, तो ये विशेष गुण हुए और एक जो निज सामान्य स्वरूप है वह सामान्य हुआ। यों भी पदार्थ सामान्यविशेषात्मक नजर आ रहा। तो अनेकान्तस्वरूप वस्तुकी प्रसिद्धि है और इस अनेकान्त शासनको बताने वाले भगवान अरहंत देव ही हैं और उनके उपदेशमें शासनमें परस्पर कहीं विरोध नहीं है, युक्तिशास्त्रसे विरोध नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि अनेकान्त शासनका प्रणायक अर्हन्त प्रभु निर्दोष है और सर्वज्ञ है।

है का निराकरण क्या, न का निराकरण क्या इस शंकाका समाधान इस प्रसंगमें शंकाकार कहता है कि सर्वथा एकान्त क्या कभी किसी समय पाया भी गया या कभी भी किसी समय पाया ही नहीं गया? यदि कहो कि सर्वथा एकान्तवादी किसी समय पाया जाता है उसका निषेध किया गया है, तो सब जगह सब समय प्रतिषेध तो सिद्ध नहीं हुआ। पाया तो गया। जब सर्वथा एकान्त किसी जगह किसी समय पाया गया है तो विधि अपने आप सिद्ध हो गयी। कभी तो सर्वथा एकान्त सिद्ध हुआ उसका सर्वथा प्रतिषेध नहीं किया जा सकता। और, यदि कहो कि सर्वथा एकान्तकी किसी भी समय कभी भी कहीं भी उपलब्धि नहीं है तब तो जो चीज है ही नहीं उसका किसीसे विरोध हो ही कैसे सकता? याने जब एकान्त कभी भी किसी भी समय है ही नहीं तो उसका अनेकान्तसे विरोध हो ही कैसे सकता? याने जब एकान्त कभी भी किसी भी समय है ही नहीं तो उसका अनेकान्तसे विरोध नहीं हो सकता। जो वस्तु हो उसका ही तो किसी प्रकार किसीके द्वारा विरोध किया जाना सम्भव है, और, इसी कारण जब कि एकान्त कहीं किसी समय है ही नहीं तो निषेध तो विधिपूर्वक ही होता है। जो सत् हो उसीको तो हटाया जा सकता है। असत्को क्या हटाया जाय? तो यों सर्वथा एकान्तका प्रतिषेध भी नहीं हो सकता। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि सर्वथा एकान्त विकल्पमें आरोपित है। यद्यपि सर्वथा एकान्त कोई वस्तु नहीं है। सद्भूत नहीं है, असत् है। लेकिन शंकाकारके विकल्पमें तो सर्वथा एकान्त कल्पित है। सो उस कल्पित सर्वथा एकान्तका प्रतिषेध किया जा रहा है और वह प्रतिषेध किया जा रहा है विरुद्धोपलब्धिसे। अर्थात् सर्वथा एकान्तका विरोधी है अनेकान्त सो जब अनेकान्त वस्तुओंमें नजर आ रहा है तो सर्वथा एकान्त अपने आप प्रतिसिद्ध हो जाता है अथवा सर्वथा एकान्तका निषेध हो रहा है। स्वभावानुपलब्धिसे अर्थात् एकान्त स्वभावकी उपलब्धि ही नहीं हो रही है सर्वथा एकान्त है ही नहीं। इस प्रकार यदि कल्पित पदार्थका निराकरण करना न माना जाय तो कोई भी पुरुष अपने इष्ट तत्त्वको सिद्ध नहीं कर सकता और अनिष्ट तत्त्वका प्रतिषेध नहीं कर सकता। क्योंकि है का निषेध क्या किया जाय और न का निषेध क्या किया जाय यह झगड़ा सब जगह लगाया जा सकता है। इस से विकल्पित एकान्तका निराकरण किया गया जानना चाहिए।

एकान्तवादके निषेधक प्रत्यक्षप्रमाणकी ज्येष्ठता व गरिष्ठता—मुख्य बात तो यह है कि सर्वथा एकान्तवादका निषेध तो प्रत्यक्षसे ही हो जाता है। एक प्रत्यक्ष ही जो कि अनेकान्तात्मक वस्तुका ज्ञान कर रहा है सामान्य विशेषात्मक एक वस्तुको विषय करता है वही सर्वथा एकान्तकी प्रतीतिका निराकरण कर देता है। एकान्तके मानने वस्तु सामान्यात्मक ही है। इस प्रकारकी प्रतीति अथवा वस्तु विशेषात्मक है इस प्रकारकी प्रतीति इसका प्रत्यक्ष ही निराकरण कर देता है। फिर हम लोगोंको अन्य प्रमाण अनुमान आदिक देनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रत्यक्ष द्वारा बिना ही प्रयासके इष्ट तत्त्वकी विधि, और अनिष्ट तत्त्वका निषेध हो जाता है। प्रत्यक्षसे बढ़कर प्रत्यक्षसे विशेष प्रमाणोंके गरिष्ट अन्य अनुमान आदिक नहीं हैं क्योंकि यदि प्रत्यक्ष प्रमाण न हो तो अनुमान आदिक प्रमाणान्तरोंकी प्रवृत्ति ही नहीं हो सकती। जब कभी कोई अनुमान बनाया जाता है तो जिस साधनके द्वारा साध्य सिद्ध करना होता है वह साधन प्रत्यक्ष सिद्ध, प्रमाणसिद्ध तो होना ही चाहिये तो देखिये कि प्रत्यक्षके अभावमें अनुमानकी प्रवृत्ति भी घटित नहीं होती। इस कारण अनुमान आदिक प्रमाणोंसे प्रत्यक्ष प्रमाण ज्येष्ठ है, महान है। और, समारोपका विशेष रूपसे निराकरण करनेमें समर्थ प्रत्यक्ष है। इस कारण भी प्रत्यक्ष प्रमाण बड़ा है। और, जब प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही वस्तुकी अनेकात्मकता सिद्ध हो जाती है तब एकान्तवादके निषेधके लिये अन्य प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

प्रत्यक्षकी भाँति अनुमान आदिकमें भी ज्येष्ठता व गरिष्ठताकी सभावनाका शंकाकार द्वारा कथन—यहाँपर शंकाकार कहता है कि जैसे इन्द्रज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण माना गया है इसी प्रकार अनुमान आदिक ज्ञान भी प्रमाण माने गए हैं। तब यहाँ जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण ज्येष्ठ है, महान है क्योंकि यह अनुमान आदिक प्रमाणोंका अग्रेसर है, इन प्रमाणोंसे आगे याने प्रथम प्रथम चलता है, पहिले प्रत्यक्ष प्रमाणसे ज्ञान बनता है उसके पश्चात् अनुमान आदिक प्रमाण बनते हैं इस कारण प्रत्यक्षको ज्येष्ठ कहा है। तो ऐसे ही अनुमान आदिक प्रमाण भी प्रत्यक्षसे ज्येष्ठ हैं, महान् हैं, क्योंकि अनुमान आदिक भी तो प्रत्यक्षके अग्रेसर हो जाया करते हैं। किसी किसी घटनामें अनुमान आदिक प्रमाणोंके बाद प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति देखी जाती है। तब देखिये ! उस घटनामें अनुमान आदिक प्रमाण अग्रेसर हुए। प्रत्यक्ष प्रमाण पीछे हुआ। तो जैसे अग्रेसर होनेके कारण प्रत्यक्षको ज्येष्ठ (महान) मानते हो उसी प्रकार अनुमान आदिक प्रमाण भी अग्रेसर होनेके कारण महान और ज्येष्ठ मान लेना चाहिये। और, भी देखिये ! जिस प्रकार दृष्ट याने प्रत्यक्ष प्रमाणको अविसंवादक होनेसे महान और अनुमान आदिक प्रमाणोंसे ज्येष्ठ मानते हैं इसी प्रकार अनुमान आदिक प्रमाण भी तो अविसम्वादक हैं, वे भी प्रत्यक्षसे महान और गरिष्ठ हो जायेंगे, क्योंकि अविसम्वादकता सब प्रमाणोंमें मौजूद है। प्रत्यक्ष भी अविसम्वादक

है अतएव प्रमाण है, ऐसे ही अनुमान भी अविसम्वादक है अतएव प्रमाण है। फिर अनुमान आदिक प्रमाणोंसे प्रत्यक्षमें ज्येष्ठत्व और गरिष्ठत्व कैसे व्यवस्थित किया जा रहा ? प्रत्यक्ष तो अनुमान आदिकसे महान हो और अनुमान आदिक प्रत्यक्षसे महान न हो यह व्यवस्था नहीं बनती।

उक्त शंकाके समाधानमें अनेक युक्तियोंसे प्रत्यक्षकी ज्येष्ठता व गरिष्ठताका समर्थन— अब उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह शंका युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि साधन आदिकको विषय करने वाले प्रत्यक्षका अभाव होनेपर अनुमान आदिक अन्य प्रमाणोंकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। अनुमान बनाया जायगा, तो उसमें जो भी साधन बनाया जाय वह तो पहिले प्रमाण सिद्ध होना चाहिए। और चूँकि अनुमान प्रमाण बनाया जा रहा है तो अनुमान प्रमाण बनाने वाले हेतुको प्रत्यक्षका विषय बनना चाहिए। यदि उस साधनको अन्य अनुमानसे सिद्ध मान करके अनुमान प्रमाणमें भी तो साधन होगा, उस साधनकी अन्य अनुमानसे सिद्धि की जानी पडेगी। इस तरह अनवस्था दोष आयगा। तब प्रत्यक्ष ही एक ऐसा प्रमाण है जो नियतरूपसे समस्त प्रमाणोंका अग्रेसर सिद्ध होता है।। अर्थात् प्रत्यक्षज्ञानसे निर्णय किए जानेके बाद ही अन्य प्रमाणोंकी उत्पत्ति होती है अतः प्रत्यक्ष ही ज्येष्ठ प्रमाण है। प्रत्यक्ष की प्रवृत्ति तो अनुमान आदिक प्रमाणोंके बिना ही हो जाती है परन्तु अनुमान आदिक प्रमाण प्रत्यक्षके मुकाबलेमें पुरस्सर नहीं हैं अर्थात् पहिले नहीं हुआ करते। अनुमान आदिक प्रमाणोंकी प्रमाणता कायम करनेके लिए पहिले प्रत्यक्ष प्रमाण हुआ करता है, पर अन्य प्रमाणोंमें यह खूबी नहीं है कि प्रत्यक्षकी प्रमाणता कायम करनेके लिए अन्य प्रमाणोंको पहिले होना पडेगा। इस कारण अन्य प्रमाणोंमें ज्येष्ठपनेका योग नहीं मिलता। प्रत्यक्ष ही अनुमान आदिक प्रमाणोंसे गरिष्ठ (बड़ा) है। साथ ही प्रत्यक्ष प्रमाण संशय विपर्यय, अनध्यवसाय, इन तीन तीन दोषोंका विशेषरूपसे विच्छेद करता है। जिस तरह संशय आदिकका निराकरण प्रत्यक्षसे होता हुआ देखा गया है, किसी भी विशेष ज्ञेयके सम्बन्धमें प्रत्यक्षने जो जाना उस जाननेके बाद फिर वहाँ कुछ आकांक्षा नहीं रहती, सो जिस तरह प्रत्यक्ष प्रमाणसे संशयादिकका विच्छेद निर्दोष रूपसे हो जाता है उस तरह अनुमान आदिक प्रमाणोंसे संशय आदिकका व्यवच्छेद नहीं होता। यद्यपि अन्य प्रमाणोंसे भी समारोपका खण्डन तो होता है, क्योंकि यदि संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय इन दोषोंमेंसे कोई दोष रहे तो प्रमाण नहीं बनता। तो अन्य प्रमाणोंमें भी सामर्थ्य तो है यह कि अनुमानादि प्रमाण भी संशयादिक दोषका निराकरण करता है लेकिन अनुमानादिसे सामान्यरूपसे संशयादिकका निराकरण प्रत्यक्षसे होता है वैसे विशेषरूपसे अनुमानादि प्रमाणोंके द्वारा नहीं होता किन्तु अनुमानादि प्रमाणोंसे सामान्यतया संशयादिकका व्यवच्छेदक होता है। एक अन्य बात यह भी समझ लेना चाहिए इस प्रसंगमें कि प्रत्यक्ष प्रमाण इसलिए भी महान है कि वह अन्वय और व्यतिरेकका स्वभाव भेद स्पष्ट दिखा देता है। किसी पदार्थका अस्ति-

स्व समझा जा रहा हो वह तो है अन्वय और किसी पदार्थका अभाव जब रहा हो वह है व्यतिरेक। प्रत्यक्ष प्रमाणमें दोनों ही खासियत हैं कि वह विधि अर्थात् सद्भाव सिद्ध करता है और जो नहीं है उसका अभाव प्रदर्शित करता है इस कारण प्रत्यक्ष स्वय महान है। प्रत्यक्ष ही अपने विषयमे सामान्य विशेषात्मक रूप व्यतिरेकका निषेध करता है। तो इस तरह अन्वय और व्यतिरेकका स्वभावभेद दिखानेका प्रयोजन भरा हुआ है प्रत्यक्षमें, इस कारण भी प्रत्यक्ष अन्य प्रमाणोंमे ज्येष्ठ है। लोग भी प्रत्यक्षसे जाने हुए पदार्थको पूर्णरूपता मानते हैं, और कहते भी हैं कि क्या तुमने यह आँखो देखा या केवल दूसरेका सुना-सुना ही कह रहे हो ? तो एक दूसरेसे सुनकर आयी हुई बातमे प्रमाणता कम है और स्वय किसी भी इन्द्रिय द्वारा किसी भी विषयका प्रत्यक्ष करले तो उसमें प्रमाणता विशेष और निर्दोष होती है। इस कारण सब प्रमाणोंमें प्रत्यक्ष प्रमाण ही महान है और एकान्तवादका निषेध प्रत्यक्ष प्रमाणसे हो ही जाता है अतः एकान्तवादका मन्तव्य प्रत्यक्षसे जब बाधित हो जाता है तब उस दर्शनके रचने वाले कोई अपने आपको आप्त कहें यह उनका केवल अहंकार है।

अन्वयवचनसे अर्हन्तके आप्तपना कहकर व्यतिरेकवचन द्वारा अन्य के अनाप्तपनेके कथनकी अनर्थकताके प्रसंगकी शका व उसका समाधान— अब क्षणिकवादी शकाकार पूछते हैं, कि जब पहिले "स त्वमेवासि निर्दोषो" इस कारिका द्वारा अरहत भगवानका शासन अबाधित है और परमात्मापन अरहतमे ही सिद्ध है यह बात कही जा चुकी है तब फिर यह कारिका कहकर कि "त्वन्मतामृत-बाह्यानां", सर्वथा एकान्तमत प्रत्यक्षमे बाधित होता है और एकान्तवाद शासनके प्रणेता परमात्मा नहीं हैं इस तरहमे अन्य एकान्तका और अन्यको अनाप्तताका निराकरण करना यह तो सामर्थ्यसे ही बन गया था। जब भगवान अरहतको आप्त सिद्ध कर दिया है तो उससे ही यह सिद्ध हुआ कि अन्य अनाप्त है अथवा अनेकान्त को जब अबाधित सिद्ध कर दिया है तो उससे ही सिद्ध है कि एकान्तवाद बाधित है फिर अलगसे दूसरी कारिका कहकर ग्रन्थकारने अधिक वचन क्यों कहा ? इसके समाधानमें कहते हैं कि अनेकान्तकी उपलब्धि होना और एकान्तकी अनुपलब्धि होना इन दोनोंमें एकता है। अर्थात् दोनोंका सम्बन्ध है अथवा सादृश्य है यह बात दिखाने के लिये अन्वय और व्यतिरेक रूपसे दोनों कारिकाओंका वर्णन किया है। अथवा इस प्रसंगमें जो एक अन्य मतव्य है जैसे कि क्षणिकवादियोंके संतोंने कहा है कि अन्वय और व्यतिरेकमेसे किसी एकके द्वारा पदार्थके जान लेनेपर फिर दोनोका प्रतिपादन करना अथवा पक्ष, प्रतिज्ञा, निगमन आदिकको कहना भी निग्रहस्थान है। इस मतव्यके निषेधके लिये भी दोनो कारिकाओंका प्रयोग किया है। कह दिया है निग्रहस्थानका लक्षण क्षणिकवादियोंने कि अन्वय और व्यतिरेकमेंसे किसी एक उपाय द्वारा जब पदार्थ जान लिया गया तब दूसरी बात कहना निग्रहस्थान है। सो यह बात युक्त नहीं है।

स्वपक्षको सिद्ध करने वाले वादीकी वचनाधिक्यका उपालम्भ देकर पराजयपात्र कह सकनेकी अशक्यता—शकाकार पूछते हैं कि यह बात युक्त क्यों नहीं है ? बात तो जचती है कि जब एक अन्वय विधिसे किसी मतव्यका साधन कर दिया गया है तब व्यतिरेक रूपसे उसे कहनेकी आवश्यकता क्यों है ? वे तो अधिक वचन हुए। वाद समयमें तो याने विद्वानोंकी सभामें शास्त्रार्थके समय संक्षिप्त ही बोलनेमें बुद्धिमानी जचती है। उत्तरमें कहते हैं कि एक अन्वयके द्वारा पदार्थके समझ लेनेपर भी व्यतिरेकके द्वारा जो उस ही पक्षका समर्थन किया गया है वह असगत नहीं है। कारण कि भला ये शकाकार यह बतायें कि प्रतिवादी जो इसमें निग्रहस्थान बता रहा है अर्थात् वादीकी हार कह रहा है सो क्यों उस वादीको पराजयके अधिकरणकी बात कह रहा है जो साधनकी सामर्थ्यसे जिसमें कि विपक्ष, व्यावृत्तिका लक्षण निर्दोष पाया जा रहा है उस साधन सामर्थ्यसे अपने पक्षको सिद्ध कर रहा है याने सिद्ध करने वाले वादीको प्रतिवादी बता रहे हैं कि वचनोंकी अधिकता हो जानेके कारण वह पराजयका पात्र है अथवा अपने पक्षको सिद्ध न कर सकने वाले वादीके प्रति प्रतिवादी कह रहा है कि वचनाधिक्यसे वादीका पराजय है। यदि पहिली बात कहते हो कि जिस वादीने साधन सामर्थ्यसे अपने पक्षको भली भाँति सिद्ध कर लिया उस ही वादीके प्रति प्रतिवादी कह रहा है कि सिद्ध हुई बातको फिर व्यतिरेकादिक द्वारा पुनः समर्थन करनेमें वचन अधिक हो जाते हैं और वचनोंकी अधिकताके कारण वादीका पराजय है। सो यह बात तो युक्तिसगत नहीं है। जब निर्दोष साधनकी सामर्थ्यसे अपने पक्षको वादीने सिद्ध कर लिया, अब उस पक्षका साधन वादी अन्य साधनसे कर रहा है तो इसमें तो सभासदोंके सामने उसकी जीत ही हुई है। अब केवल वचनोंकी अधिकतासे उलहना देनेके बहानेसे उसका पराजय बताना युक्तिसगत नहीं है। कोई पुरुष अपने मतव्यको साधित करके यदि वह बड़ा हर्ष मनाये, नाचे भी तब भी दोष नहीं है। दोष तो तब था जब वादी अपने पक्षको सिद्ध न कर सकता होता। अन्वयसे वादीने अपने इष्ट तत्त्वकी सिद्धि कर दी। अब व्यतिरेक द्वारसे भी उस ही इष्ट तत्त्वकी सिद्धि करदे तो इसमें कोई दोष नहीं है। व्याप्ति भी दो प्रकारकी बताई गई है—अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति। दोनों व्याप्तियोंसे जब साध्य साधनका सम्बन्ध दृढ़ बता दिया जाता है तब पक्षकी सिद्धि प्रबल रीतिसे हो जाती है। यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि वादीने प्रतिवादीके पक्षका निराकरण कर दिया। अब ऐसा प्रतिवादी जिसकी बात निराकृत हो गई है वह किसी भी बहानेसे वादीके पराजयकी बात बताये यह तो हास्य जैसी बात है। जब वादीने प्रतिवादीके पक्षका निराकरण कर दिया सो प्रतिवादी ही हारका पात्र है ऐसा सभासदोंने पहिले ही निश्चय कर लिया है। अब किसी प्रकार दोषकर वादीको हरानेकी बात करना, यह तो इस प्रकार है जैसे कि कोई हारा हुआ पुरुष झुंझलाकर किसी भी बहानेसे दूसरेको चुप करना चाहता है। तो अपने पक्षको सिद्ध कर देने

वाले वादीको वचनोकी अधिकताका उपालम्भ देकर हारकी बात नही बतायी जा सकती।

स्वपक्षसिद्धि व परसाधन दूषण बताये बिना प्रतिवादीकी अन्यपराजय बता सकनेकी अशक्यता— यदि यह कहो जैसा कि दूसरे विकल्पमे पूछा गया कि अपने पक्षको सिद्ध न कर सकने वाले वादीकी हार यह प्रतिवादी वचनाधिक्य दोष दिखाकर सिद्ध कर रहा है तो इस दूसरे विकल्पके सम्बन्धमे भी शंकाकार यह बताये कि उस समय प्रतिवादी क्या अपने पक्षको सिद्ध करता हुआ वादीकी हार बता रहा है या अपने पक्षको सिद्ध न करता हुआ वादीकी हार बता रहा है ? यदि कहो कि प्रतिवादी अपने पक्षको सिद्ध करता हुआ वादीकी हार बता रहा है तब तो अपने पक्षकी सिद्धिके ही कारण वादीकी हार हुई है। उस दोनोंकी अधिकताकी बात कह कर हार बताना अनर्थक है; क्योकि वचन भी अधिक हो जायें लेकिन प्रतिवादी यदि अपना पक्ष सिद्ध नही कर पाता है तो प्रतिवादीकी जीत नही कहला सकती। यदि कहो कि प्रतिवादी अपने पक्षको सिद्ध न करता हुआ ऐसे वादीकी हार बता रहा है जो वादी अपने पक्षको भी सिद्ध नही कर पा रहा। तो इस द्वितीय विकल्पमे या तो यह कहा जायगा कि वादी और प्रतिवादी दोनोंकी एक साथ हार हुई है या यह कहा जायगा कि दोनोकी एक साथ जीत हुई है, क्योंकि वादी और प्रतिवादी दोनोमें ही अपने पक्षकी सिद्धि न कर सकनेकी समानता है।

साधन सामर्थ्यको अज्ञानसे पराजय कहनेका शंकाकार द्वारा कथन— अब शंकाकार कहता है कि अपने पक्षकी सिद्धि हुई अथवा असिद्धि हुई इसके कारण जीत हारकी व्यवस्था नही है। अपने पक्षकी सिद्धि और असिद्धि तो उन दोनोके बोलनेके ज्ञान और अज्ञानपर निर्भर है। ज्ञान है तो पक्षकी सिद्धि कर लेंगे, अज्ञान है तो अपने पक्षकी सिद्धि न कर सकेंगे। उससे लोकमे जीत हारकी व्यवस्था नहीं बनती किन्तु बात यहाँ यह है कि वादीने अन्वय सिद्धि द्वारा अपने पक्षकी सिद्धि कर दी और अब व्यतिरेक वचन द्वारा भी अपने पक्षकी सिद्धि कर रहा है, तो जो बात एक अन्वय साधनसे जान ली गई है उसको व्यतिरेक वचन द्वारा फिरसे जतानेका जो यत्न किया जा रहा है तो यहाँ उभय वचन बन गया अर्थात् अन्वय वचन भी कहा और व्यतिरेक वचन भी कहा। तो इससे यह सिद्ध होता है कि वादीको अपने पूर्वकथित साधन वचनकी सामर्थ्यका ज्ञान नहीं है। जो पहिले उपायसे उसने अपने पक्षकी सिद्धि की तो उसे स्वयं ही यह ज्ञान नहीं है कि उसका साधन इतना समर्थ है कि उस साधन के द्वारा इस पक्षके मन्तव्यकी निर्दोषरूपसे सिद्धि होती है तभी तो उसने असन्तुष्ट हो कर व्यतिरेक वचन द्वारा फिर मन्तव्यके सिद्ध करनेका प्रयास किया। तो इतना तो जाहिर हो गया कि वादीको अपने साधन वचनकी सामर्थ्यका ज्ञान नहीं है। परन्तु प्रतिवादीने इस अज्ञानको प्रकट कर दिया कि इस वादीने अधिक वचन बोला है तो

प्रतिवादीको वादीकी कमजोरीका ज्ञान हो गया ना ! तो इस ज्ञान और अज्ञानके कारण वादी और प्रतिवादीकी जय और पराजयकी व्यवस्था है यह प्रयुक्त नहीं हो सकती। इस कारण इस कारिका द्वारा अनेकान्त शासनको अबाधित कहकर फिर दूसरी कारिका द्वारा समर्थन एकान्त निराकरणको कहना यह निग्रह स्थान से पृथकभूत नहीं हो सकता है। अतः द्वितीय कारिकाका वचन कहना युक्तिसगत नहीं है।

जयपराजयकी व्यवस्थाका समाधानात्मक प्रतिपादन—उक्त शका युक्तिसगत नहीं है। यदि साधन वचनकी सामर्थ्यके अज्ञ नसे पराजयकी बात कही जाय तो फिर वादी और प्रतिवादीका पक्ष और प्रतिपक्षका कहना व्यर्थ हो जायगा। क्योंकि किसी भी पक्षमें चाहे नित्य हो, अनित्य हो, भेद हो अभेद हो, किसी भी पक्ष मे ज्ञान और अज्ञान दोनों ही सम्भव हो सकते हैं। शब्दादिकमें जब नित्यत्वके ज्ञान और अज्ञानकी परीक्षा की जा रही हो उस समयमें यदि वादीको ज्ञान है तो प्रतिवादीको अज्ञान है। तो ऐसा ज्ञान और अज्ञान जय और पराजयका कारण न बन सके, यह बात नही कही जा सकती। जैसे कि साधन सामर्थ्यके ज्ञान होनेपर जय और साधन सामर्थ्यके अज्ञान होनेपर पराजयकी व्यवस्था बनायी है तब इसी तरह किसी भी पक्षके रक्षणमें और उस पक्षके ज्ञान अज्ञानकी परीक्षा करनेमें एक को ज्ञान है तो दूसरेको अज्ञान है। वहाँ फिर जय पराजयकी व्यवस्थाका लोप कैसे कर सकोगे ? यदि कहो कि जब साधनसामर्थ्यका ज्ञान होना जयका कारण है और उसका अज्ञान होना पराजयका कारण है तब वादी प्रतिवादी दोनोंके एक साथ साधन सामर्थ्यका ज्ञान होना मान लिया जायगा, यो युगपत् दोनोके साधन सामर्थ्यका ज्ञान होना मान लिया जाय तो फिर वादी और प्रतिवादीमें किसकी जीत और किसकी हारका निर्णय बन सकेगा ? क्योंकि साधन सामर्थ्यका तो ज्ञान दोनोंके मान लिया गया। यदि कहो कि किसीका भी जय पराजय नहीं हुआ। जिस समय साधन सामर्थ्यका ज्ञान वादी और प्रतिवादी दोनोको हो रहा हो, उस समय किसीका भी जय और पराजय नहीं हुआ। तब फिर उत्तरमे कहते हैं कि स्याद्वादियोंके यहाँ वचनोकी अधिकता करने वालेको जैसे साधन सामर्थ्यका ज्ञान है उसी प्रकार प्रतिवादीको भी है कि वचनोंकी अधिकताका ही दोष बताया है प्रतिवादीने, इस कारण प्रतिवादीका उसके दोष मात्रका ही ज्ञान सिद्ध हुआ, वह गुणकी परीक्षा न कर सका। यह नियम तो नहीं है कि जो जिसके दोषको जानता है वह उसके गुणको भी जान ले। किसी प्रकारके विषसे द्रव्यमें मारनेकी शक्ति विदित हो जाय तो भी उस विषसे द्रव्यमें कोढ़ आदिकको दूर करनेकी शक्ति है इसका ज्ञान न भी हो यह भी तो सभव है। किसी वस्तुके दोषका जानकार उस वस्तुके गुणको भी जानले, ऐसा नियम तो नही बन सकता है। इस कारण साधन सामर्थ्यका दोनोंके किसीके भी ज्ञान हो अथवा किसीका भी जय पराजय न माना जाय तब उसमें वादकी बात ही क्या रही ?

वचनाधिक्यसे जय पराजयके निर्णयकी अक्षमता— अब यहाँ शंकाकार कहता है कि भाई जय-पराजयकी व्यवस्थामें तो यह तथ्य है कि वादीको तो अपना निर्दोष साधन बताना चाहिए और प्रतिवादीको जो कि दूषण निहारके लिए तत्पर है उसको उसका दूषण बताना चाहिए। अब ऐसी व्यवस्था होनेपर प्रतिवादीने सभा में वादिका असाधनाङ्ग वचन प्रकट कर दिया अर्थात् साधनको सामर्थ्यका इसके ज्ञान नहीं है यह जाहिर कर दिया, असाधनाङ्ग वचनका अर्थ यह है कि साधर्म्य वचन बोल देनेपर वैधर्म वचनकी बात परसे आप सिद्ध हो जाती है। अब उसको पुनः कहे तो इसके मायने यह है कि पहिले जो साधनकी बात बतायी थी उस वादीको उसके सामर्थ्यका ज्ञान नहीं है। इस प्रकार असाधना वचनकी बात प्रकट करनेपर यह सिद्ध हो गया कि वादीको सही साधनके प्रयोग करनेका अज्ञान है अथवा वह अपने दिए हुए साधनकी सामर्थ्यको नही जान पा रहा है तब उसका पराजय हो गया। और, यहाँ प्रतिवादीने वादीके द्वारा कहे गए साधनमे दूषण है ऐसा प्रकट किया, तो प्रतिवादीको दूषणका ज्ञान है ऐसा निर्णय होनेसे प्रतिवादीका जय हो गया है। उक्त शंका के समाधानमें कहते हैं कि यह बात भी युक्तिसगत नही है। इस सम्बन्धमें विकल्प उठाकर जब निर्णय करने लगते हैं तो शंका निराकृत हो जाती है। अच्छा बताओ कि वह प्रतिवादी क्या निर्दोष साधन कहने वाले वादीका वचनाधिक्य दोष प्रकट कर रहा है या सदोष साधन कहने वाले वादीका वचनाधिक्य दोष प्रकट कर रहा है? अर्थात् प्रतिवादी जो वादीके लिए यह दोष दे रहा है कि देखो! इस वादीने व्यर्थ ही अधिक वचन बोल डाला तो इस प्रकारका जो दोष प्रतिवादी दे रहा है? क्या निर्दोष साधन कहने वाले वादीको दोष लगा रहा है या सदोष साधन कहने वाले वादीको वचनाधिक्यका दोष लगा रहा है। यदि कहो कि निर्दोष साधन कहने वाले वादीको वचनाधिक्यका दोष लगा रहा है तो भला बताओ कि निर्दोष साधन कह रहा है वादी और उसके सम्बन्धमे प्रतिवादी यह कह रहा कि इसको साधनके स्वरूप का ज्ञान नहीं है। यह बात कैसे फिट बैठ सकती है? क्योंकि वादीके उस वचनमे प्रतिवादी ऐसा परिमाण कैसे कर सकता है कि इसको इतना ही मात्र ज्ञान है। और, साधन सामर्थ्यके सम्बन्धमें ज्ञान नही है। वह तो निर्दोष साधन कह रहा है, उसको क्या दोष लगाया जा सकता? यदि कहो कि सदोष साधन कहने वाले वादीके लिये प्रतिवादी वचनाधिक्यका दोष लगा रहा है तब देखिये व्यामोहकी बात कि यह प्रतिवादी उस सदोष साधनके दोषका तो ज्ञानी है नहीं, और वचनाधिक्यक दूषणकी बात लगा रहा है, प्रतिवादीको साधनाभासके दूषणका ज्ञान नही है क्योंकि प्रतिवादीने वचनाधिक्यका दोष प्रकट किया है। साधनाभासकी बात नही बतायी है। तब प्रतिवादीको साधनाभासके दूषणका ज्ञान तो न रहा, और साधनाभासका दूषण यदि बताते तब तो वादीकी हार थी और प्रतिवादीकी जीत थी। अब साधनका दोष यों बताया नही प्रतिवादीको साधनाभासके दोषका ज्ञान ही नही, तो अन्य-अन्य कुछ

भी बात कहता रहे, प्रतिवादीकी जीत सम्भव नहीं हो सकती।

सम्यक्साधन व साधनाभासके निर्णयसे ही जय पराजय व्यवस्थाका प्रतिपादन—शंकाकार कहता है कि वादीने जो वचनाधिक्य किया है अर्थात् प्रकृत बातकी सिद्धि सीधे सादे अन्वय वचनोंमे हो रही है अब उसे अन्वयके प्रतिषेधरूपकी व्यतिरेकरूपसे भी कह डाला है। तो ये उसके अधिक वचन हैं, बस वचनोंकी अधिकताका दोष तो प्रतिवादीको ज्ञात है ना, तो उस दोषके ज्ञानसे ही यह प्रतिवादी दूषणका ज्ञाता बन गया। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि यदि वचनाधिक्य दोषके ज्ञानके कारण ही दूषणज्ञ माना जाय प्रतिवादीको तो साधनाभासका ज्ञान न होनेसे अर्थात् प्रतिवादीने उस सदोष साधनका दूषण तो नहीं बताया। तो साधनाभासका ज्ञान न होनेसे यह प्रतिवादी दूषणज्ञ न भी रहा फिर कैसे कहा जा सकता एकान्तसे कि यह प्रतिवादी वादीको जीत हो लेगा। देखो! साधनाभासका स्पष्ट न कर सका, प्रकट न कर सका, यह घटना तो प्रतिवादीकी हारको ही प्रसिद्ध कर रही है। यदि वचनाधिक्य दोषके प्रकट करनेसे ही प्रतिवादीकी जीत मान ली जाती है और ऐसी जीत मानकर फिर साधनाभासको प्रकट न करनेसे प्रतिवादीकी हार सिद्ध हो गई और इस तरह प्रतिवादीकी हार सिद्ध होनेपर वचनाधिक्यके दोषको प्रकट कर देना प्रतिवादीकी जीतके लिए कैसे सम्भव हो सकता है? सारांश यह है कि वादीके साधनमे दूषण बताकर ही हार करायी जा सकती है। अन्य-अन्य उपालम्भ या बहाने करके जय पराजयकी व्यवस्था नहीं बनाई जा सकती है। तो ऐसे जयपराजयके मतव्यका निग्रह करनेके लिए आचार्यने दो कारिकाओंसे अनेकान्तके शासनकी प्रसिद्धि की है।

साधनाभास व वचनाधिक्य दोनोंको बताते हुए प्रतिवादीकी जयकी निश्चितताका शंकाकार द्वारा कथन व उसका समाधान—शंकाकार कहता है कि प्रतिवादी साधनाभासका भी प्रयोग कर रहा है और वचनाधिक्यका भी प्रयोग कर रहा है। दोनोंको प्रकट करता हुआ प्रतिवादी जयको प्राप्त होता ही है। इस शंकाके उत्तरमें कहते है कि देखिये! इस शंकाकारके बहुत बडी छिद्रकामिता हुई है, कैसी प्रबल द्वेषबुद्धि हुई है। पहिले तो यह साधर्म्य वचनसे ही अर्थका ज्ञान होनेपर वैधर्म्यवचन अनर्थक है, ऐसा कहकर वैधर्म्यवचनका द्वेष कर रहा था लेकिन वहांपर साधनाभासके प्रकट करनेसे ही जब वादीका तिरस्कार सिद्ध हो गया, पराजय बन गया, फिर भी उसको वचनाधिक्यका दोष और प्रकट किया जा रहा है। अनर्थक मानकर भी तो यह कितनी बडी अधिक द्वेषकी इच्छा है। निष्कर्ष यह है कि साधनाभास कहकर जब वादीका पराजय कर दिया गया तब वचनाधिक्यकी बात कहना यह क्या अनर्थक न होगा? क्या यह प्रतिवादीके लिए निग्रह स्थान न बनेगा? लेकिन इसका कुछ ध्यान न रखकर पराजयको प्राप्त हुए वादीके प्रति स्वयं बहुत

अनर्थक वचन बोल जाय और साधर्म्य वचनसे पदार्थका ज्ञान होनेपर भी वैधर्म्यवचन जो कि अपेक्षासे प्रयोजक है उसे अनर्थक बताकर उससे द्वेष किया जाय यह तो प्रतिवादीकी बहुत तीव्र द्वेषकी कामना है।

अर्थाप्तके पुनर्वचनमे द्विष्टत्वका शकाकार द्वारा पुनः कथन व उसका समाधान—अब शकाकार कहता है कि हम वचनाधिक्यमात्रसे द्वेष नही करते, किन्तु जब अयसे स्वय बात आ गई इसी प्रथम शब्द प्रयोगसे हा जो बात समर्थित हो गई उसके व्यतिरेक शब्द द्वारा फिरसे कह देना इस कथनको हम द्विष्ट समझते हैं। अर्थात् यह कथन चित्तमे दोषके विस्तारको लिए हुए है। उत्तरमें कहते हैं कि यह बात भी सगत नही है, क्योंकि इस तरह तो यह भी कहा जा सकता कि प्रतिज्ञाके कहनेमें जब दोष प्रकट कर दिया गया तो उससे ही निगमन प्रयोगके दोषको भी न प्रकट करना चाहिए, वहाँ भी द्विष्टकामिता बन जाती है। जब कि प्रकृतमे यह बात कह रहे हो कि कोई साधर्म्य वचन बोला गया, अब उससे ही निषेध किए जाने योग्य वैधर्म्य का निराकरण हो ही जाता है, स्वय अयसे सिद्ध हो जाता है, फिर उसका कहना यह है द्विष्ट दूषित। केवल वचनाधिक्य मात्रसे हम द्वेष नही कर रहे। इस शकाका यह समाधान है कि ऐसे ही काई अनुमान प्रयोग किया गया वहाँ प्रतिज्ञादोष दिखाकर फिर निगमनदोष नहीं कहना चाहिये। क्षणिकवादी केवल हेतु प्रयागको ही सत्य और सार्थक मानते हैं। प्रतिज्ञा निगमन इन बातोको अनर्थक मानते हैं और कोई प्रतिज्ञा और निगमनका प्रयोग करे तो उसका पराजय बता देते हैं यो समझिये कि अपने आपमे इतनी तीव्र बुद्धिमानीकी अहमन्यता जाहिर करते हैं कि हेतु और साध्य स ही झट समझ जाना चाहिये तब तो वह वादका पात्र माना जाता है और इतनी कुशल बुद्धि नही है तो वह वादका पात्र नही, पराजयका पात्र है। कुछ ऐसी कामना रखकर क्षणिकवादी प्रतिज्ञा और निगमन आदिकके प्रयोगको दूषित मानते हैं। तो देखिये कि जब प्रतिज्ञाके वचनोंमे दोष सिद्ध कर दिया तो प्रतिज्ञावचनका दोष साबित हो जानेसे ही निगमनके वचनका दोष अपने आप सिद्ध हो जाता है। फिर एक दोष प्रकट नहीं करना चाहिए यह प्रसग आ जायगा। निगमन कहते हैं प्रतिज्ञाके दुहराने को। और जब प्रतिज्ञाका वचन ही दूषित बता दिया तो उसके दुहरानेकी बात तो दूषित है ही। यह तो अपने आप सामर्थ्यसे जान ली गई ना, फिर प्रतिज्ञावचनके दोषको प्रकट करके निगमन वचन दोषको प्रकट करना यह क्या दूषित प्रयत्न नही है। फिर तो निगमन वचनके दोषको भी प्रकट न किया जा सकेगा।

अदोषोद्भावनके भयसे निगमनवचनका दुष्टत्व कहनेकी आवश्यकता का शकाकार द्वारा कथन व उसका समाधान—शकाकार कहता है कि यद्यपि प्रतिज्ञा वचनके दोषका जाहिर करनेसे निगमन वचन दूषित है यह बात अर्थसे आ गई अपने आप सिद्ध हो गई, फिर भी निगमन वचनके दोषका उद्भावन करना इस-

लिए जरूरी है कि यदि निगमन वचनको दूषित नहीं बताया जाता है तो फिर निगम का वचन निर्दोष हो जावेगा, यह आपत्ति आयगी। और इस भयसे कि कहीं निगमनका वचन निर्दोष न हो जाय इस ध्यानसे निगमन वचनको दूषित किया जाता है। प्रतिज्ञावचन दोषसे निगमन वचनकी दूषितता यद्यपि सिद्ध हो गयी फिर भी प्रदोषके उद्भावनके भयसे निगमन वचनकी दुष्टता फिर भी कहनी पड़ती है। इस शकाके उत्तरमें कहते हैं कि फिर यही बात तो साधर्म्य वचन कहनेपर भी जो वैधर्म्य निराकरणकी बात की जाती है वह सिद्ध हो जायगी। यहाँ भी यह मान लेना चाहिए कि यद्यपि साधर्म्य वचन कहनेसे अर्थात् किसी बातको विधिरूपमें सीधे शब्दोंमें वर्णन करनेसे यद्यपि वैधर्म्यकी बात अपने आप सिद्ध हो जाती है फिर भी वैधर्म्य वचन इसलिए कहना आवश्यक है कि यदि वैधर्म्य वचनको दूषित नहीं किया जाता है तब वैधर्म्य वचन साधनका अग हो जायगा, इस भयसे वैधर्म्य वचनको फिरसे कहा गया है इस सम्बन्धमे जो भी आप आक्षेप समाधान करेंगे वही समाधान वैधर्म्य वचनके सम्बन्ध में भी होगा, क्योंकि निगमन वचनमें अत् वैधर्म्य वचनमें कोई विशेषता नहीं है।

साधर्म्य और वैधर्म्य दोनों वचनोकी साधनाङ्गता— कहीं साधर्म्य ही साधनका अङ्ग हो या वैधर्म्य ही साधनका अङ्ग हो ऐसा एकान्त नहीं है। साधर्म्य और वैधर्म्य याने अन्वय व्यतिरेक दोनोंका कथन साधनका अग बनता है। जैसे कि अनुमान प्रयोगमें अन्वय व्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति दोनोका प्रयोग हेतुकी निर्दोषता को साबित करता है। इसी प्रकार किसी भी प्रकरणमें, कथनमें किसी तत्वका विधि रूपसे वर्णन करना और उससे विपरीत अतत्वका निषेध रूपसे वर्णन करना ये दोनो ही अन्वय और व्यतिरेक विधिसे किए जाने वाले वर्णन प्रकृत भावके साधक होते हैं, तब साधनका अग न केवल साधर्म्य ही रहा और न केवल वैधर्म्य ही रहा, किन्तु पक्षधर्मत्वकी तरह साधर्म्य और वैधर्म्य ये दोनो ही साधनके अग कहलायेंगे। जैसे क्षणिकवादियोने साधनको त्रिरूप माना है अर्थात् जहाँ पक्षधर्मत्व सपक्षसत्व और विपक्षव्यावृत्ति ये तीन धर्म पाये जायें वही साधन सत्य है, ऐसा क्षणिकवादियोने स्वीकार किया है। तो जैसे पक्षसत्व कहा तो इसमें विधिरूप बात आयी। सपक्षसत्व कहा तो इसमें भी विधिरूप बात आयगी और विपक्षव्यावृत्ति कहा तो इसमें व्यतिरेककी बात आ गई। तो देखिये, जब साधनका पक्ष तीन रूपोसे बताया जा रहा है तो उसमें भी तो अन्वय और व्यतिरेककी बात आ गई। इसी प्रकार किसी भी तत्व को बतानेके सम्बन्धमें अन्वयविधि और व्यतिरेक विधिसे उसका कथन किया जाय तो यह विरुद्ध बात नहीं होती।

स्वपक्षकी सिद्धि और असिद्धिके कारणसे ही जय पराजयकी व्यवस्था की अशक्यता— उक्त कथनसे यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान और अज्ञान मात्रके कारणसे जय और पराजयकी व्यवस्था करना सम्भव नहीं है। अर्थात् यह बताकर कि इसको

साधनकी सामर्थ्यका ज्ञान नहीं है निग्रहपात्र बता देना यह युक्त नहीं है। निरखना यह चाहिए कि वादीने जो साधन कहा है वह साधन दोषसे रहित है अथवा नहीं। यदि दोषरहित नहीं है, सदोष है वह साधन तो उसके साधनको सदोष बताना चाहिए। उसका दोष साबित करे तब तो वादीका पराजय कहलायेगा, लेकिन वादीके कहे हुए साधनमें तो कोई दोष बता नहीं सकता प्रतिवादी और वचनाधिक्य आदिक या इस साधन सामर्थ्यका अज्ञान बताकर उसके पराजयकी बात कहे यह बात युक्त नहीं है, क्योंकि ऐसे कथनमें तो पक्ष और प्रतिपक्षका कहना ही व्यर्थ हो जायगा। यदि जय और पराजयको अपने पक्षकी सिद्धि और स्वपक्षकी असिद्धिके कारणसे बताया जाय तो यह बात निर्दोष बनेगी, जाने जो पुरुष अपने पक्षकी सिद्धि कर सका वह तो है जय शील और जो पुरुष अपने पक्षकी सिद्धि न कर सकेगा वह है पराजयका पात्र। इस तरह जय और पराजयकी व्यवस्था बनाना तो निर्दोष है और ऐसे निर्णयमें पक्ष प्रतिपक्षके कहनेकी व्यर्थता भी नहीं होती है, क्योंकि वादी और प्रतिवादी इन दोनोंमेंसे किसीको किसी प्रकारसे अपने पक्षकी सिद्धि यदि हो जाती है तो दूसरेके पक्षकी सिद्धि न हुई। ये दोनो बातें बनी, इस कारणसे एक साथ वादी और प्रतिवादीका जय और पराजय न बताया जा सकेगा। तो अपने पक्षकी सिद्धिसे जय होती है और स्वपक्षकी असिद्धिसे पराजय होती है, इस कथनमें न तो पक्ष प्रतिपक्षके परिग्रहकी व्यर्थताका दोष आयगा और न दोनोंके एक साथ जय पराजय होनेका प्रसग आयगा।

स्वपक्षसिद्धि व परपक्षदूषणसे ही जय व्यवस्थाका निष्कर्ष—देखिये। वादीने सही हेतुके द्वारा अपने पक्षकी सिद्धि करली। सही हेतु कहलाता है जिसका साध्यके साथ अविनाभाव नियम रहता हो ऐसे हेतुके द्वारा जब स्वपक्षकी सिद्धि करली तब प्रतिज्ञा उदाहरण आदिक वचन अनर्थक हैं, ऐसा वचनाधिक्य नामका उपालम्भ वादीकी हारके लिए नहीं बन सकता। कारण कि जब सही हेतुके द्वारा वादीने अपने पक्षकी सिद्धि कर लिया तो प्रतिज्ञा उदाहरण आदिक उसके पक्षका हार करनेमें कारण नहीं बन सकते बल्कि प्रतिज्ञा उदाहरण आदिक वचन उस पक्षकी सिद्धिका स्पष्टीकरण ही करेंगे और इसी कारण प्रतिवादीके पक्षकी सिद्धि न हुई। जो समझने वाला शिष्य है उसका अभिप्रायके अनुरोधसे ही तो उदाहरण आदिकका प्रयोग किया जाता है और उन प्रतिज्ञा उदाहरण आदिकके प्रयोगसे उस शिष्यका ज्ञान विशेष ही बना, तो जो कुछ अधिक बोला गया है-उस सबका प्रयोजन है। इस कारण यह वादी यदि अपने पक्षकी सिद्धि कर लेता है और प्रतिज्ञा उदाहरण आदिक बताकर अपने पक्षको और स्पष्ट सुगम करदे तो इसमें वादीकी हार नहीं है। इसी प्रकार वादी यदि कोई सदोष हेतु बोलदे और प्रतिवादी उस हेतुमें विरुद्धता आदिक दोषोंको प्रकट कर देता है तो इसमें प्रतिवादीका पक्ष प्रबल हुआ, प्रतिवादीके सिद्धान्तका समर्थन हुआ। वादीके पक्षकी सिद्धि नहीं हुई। तो वादीके द्वारा कहे गये हेतुकी विरुद्धता आदिक दोष दिखाकर प्रतिवादीके जब अपने पक्षकी सिद्धि हो जाती है फिर भी प्रतिवादी दोषान्तरको

नहीं प्रकट कर पाता, जैसे कि प्रतिज्ञाका दुहराना या कोई वचन अधिक बोलना यह दोषान्तर माना गया है शंकाकारके मतमें तो ऐसे दोषान्तरोंको यदि प्रतिवादी प्रकट भी नहीं करता तो भी यह प्रतिवादीकी हारके लिए नहीं है। जीतहारका कारण तो अपने पक्षकी सिद्धि और असिद्धि है। जब प्रतिवादीने अपने पक्षकी सिद्धि करदी, वादी के कहे हुए हेतुमें दोष बता दिया तो अब प्रतिवादी यदि दोषान्तर नहीं कह पा रहा है तो प्रतिवादीकी हार नहीं है क्योंकि उस समय प्रतिवादीके पक्षका कोई घात नहीं हुआ।

आप्त व अनाप्तके सम्बन्धमें अन्यव्यतिरेक कथनकी अदोषता—उक्त सब वर्णनसे यह सिद्ध होता है कि अपने पक्षकी सिद्धि कर दी जानेपर भी परपक्षका निराकरण कर देना अथवा परपक्षका निराकरण कर देनेपर अपने पक्षकी सिद्धि की बात कहना या दुहराना अथवा अन्वयव्यतिरेक विधिसे प्रतिपादन करना यह दोषके लिए नहीं है। यह बात वादी और प्रतिवादीकी जीतके लाभमें रुकावट करने वाली नहीं है। मुख्य तो बात अपने पक्षकी सिद्धि है। परपक्षका निराकरण भी अपने पक्ष की सिद्धिमें सहयोगी है। जैसे सीपको देखकर किसीको चांदीका ज्ञान हुआ और दूसरा यह कहता है कि यह सीप ही है चांदी नहीं है। सीपके धर्मोंको बताकर सीप का अस्तित्व साबित कर रहा और चाँदीके धर्मको सुनाकर चूंकि वे पाये नहीं जाते अतएव चाँदीका नास्तित्व बता रहा तो अन्वयव्यतिरेक विधिसे अस्तित्व नास्तित्व बताना कोई दोषके लिए नहीं है। इसी नीतिके अनुसार इस प्रसंगमें समंतभद्राचार्यने साधर्म्य और वैधर्म्य इन दोनोंमें तो यद्यपि किसी एकके वर्णनसे भी पदार्थका ज्ञान हो सकता था फिर भी अन्वय व्यतिरेक दोनों पद्धतियोंसे जो विवेचन किया है वह वादीके निग्रहका आधार नहीं बन सकता। निर्दोष सर्वज्ञ अरहंत हैं क्योंकि उनके युक्ति शास्त्रसे अविरोधी वचन हैं, अनेकान्त शासन अबाधित है, ऐसा साधर्म्य वचन कहकर फिर यह जो कहा गया कि जो एकान्तवादी है उनका जो एकान्त शासन है वह प्रत्यक्षसे ही बाधित हो जाता है। यों अन्वय व्यतिरेकसे दर्शन करना यह निग्रह का आधार नहीं है।

प्रतिज्ञाप्रयोगके निग्रहस्थान होनेके सम्बन्धमें चर्चा समाधान—अब यहाँ शंकाकार पूछते हैं कि प्रतिज्ञा आदिकका कहना निग्रहस्थान है। इस मतमें क्या दोष है, यह कहना कैसे अयुक्त है? जब केवल विद्वान पुरुषोंको एक साधन मात्रके बोलनेसे ही सब कुछ बोध हो जाता है ऐसी स्थितिमें प्रतिज्ञा आदिकका कहना अयुक्त है और सभी वह निग्रह स्थान है, इस मन्तव्यमें क्या आपत्ति आती है? समाधानमें कहते हैं कि प्रतिज्ञा आदिकका वचन निग्रहके लिये नहीं हो सकता। प्रतिज्ञा अनुपयोगी चीज है यह नहीं कहा जा सकता। प्रतिज्ञाका यदि उपयोग व्यर्थ होता तो शास्त्र आदिकमें भी प्रतिज्ञाका कथन न करना चाहिए। क्योंकि वादविवादके समयमें जो

बातें होती है और शास्त्रोमें जो बातें लिखी है। बात तो दोनो जगह एक ही है। शास्त्रमे प्रतिज्ञा कही न जाती हो ऐसी बात नही है। शास्त्रमें प्रतिज्ञाका वर्णन है और अनियत कथामें भी प्रतिज्ञाका वर्णन है। अनियत कथाका अर्थ है— जल्पवितंडारूप जो कथायें होती है वे तो कहलाती हैं नियत कथा और उनसे अतिरिक्त जो कुछ भी उपयोगी व्यावहारिक कथायें हैं वे अनियत कथायें हैं वे अनियत कथायें कहलाती हैं। तो जैसे यहाँ अग्नि है धुवाँ होनेसे, यह वृक्ष है शिशपा होनेसे आदिक वचन शास्त्रोमे बराबर देखे जा रहे हैं इसलिये प्रतिज्ञा शास्त्रोमे नही बतायी, यह नही कह सकते। और भी देखिये— अनियत कथाकी बात वह हेतु विरुद्ध है। यह हेतु असिद्ध है आदिक रूपसे प्रतिज्ञाके वचन अनियत कथामें भी प्रयुक्त किए जाते है। तो यदि प्रतिज्ञा अनुपयोगी होती या प्रतिज्ञाके कहनेसे निग्रह हुआ करता होता तब प्रतिज्ञा वचन शास्त्रोमे या अनियत कथामे नही किया जाता।

शास्त्रो और कथाओंकी भांति वादकालमे भी प्रतिज्ञादिप्रयोगकी अनिग्रहायता—यहा शंकाकार कहते हैं कि शास्त्रोकी तो यह बात है अथवा अनियत कथाओंकी। जहा कि शिष्योको समझानेके लिये कोई विद्या या शिक्षा दी जा रही हो वहाँ तो यह कारण है कि जो शास्त्रकार हैं, आचार्यजन हैं उनका भाव दूसरोके उपकारका है। शिष्योके उपकारके लक्ष्यसे उनकी शास्त्ररचनामे प्रवृत्ति है। शास्त्रकार तो इस तरहसे वर्णन करेगा जिस तरहसे कि शिष्य समझ सकें। तो वहाँ तो शिष्यके समझानेकी पद्धतिके-आधीन बुद्धि है शास्त्रकारोकी। तब उन शास्त्रकारोने, आचार्योने शास्त्रादिकमें प्रतिज्ञाका प्रयोग करना बिल्कुल युक्तिसगत माना है, क्योंकि उपयोगी है। प्रतिज्ञा आदिक वचन कहनेसे शिष्य जनोको सब अर्थोको व्यवस्थित समझाया जाता है। इसलिए शास्त्रोमें प्रतिज्ञा आदिकके वचन कहनेका कोई दोष नही है। समाधानमें कहते हैं कि फिर यही बात वादविवादमे भी मान ली जानी चाहिये क्योकि वादविवादमे भी जिसको समझाना है या जो दार्शनिक जन हैं वे भी समझ जायें यह प्रयोजन हो सकता है और वादमे भी प्रवक्ता लोग दूसरेके अनुग्रहमें बुद्धि लगाये हुए हैं। वादविवादके समय भी जो विजिगीषु पुरुष हैं जिनका हृदय विचलित है असत्य बातसे हटाकर सत्य मार्गमे लगाना, उनको समझाना यह उद्देश्य तो वाद विवादमें भी हो सकता है। अत प्रतिज्ञा आदिकका वचन अनुपयोगी नही हो सकता। शंकाकार कहता है कि माना ठीक है पर नियत कथामे तो प्रतिज्ञाका प्रयोग करना युक्त नही है क्योकि प्रतिज्ञाका विषयभूत पदार्थ जो कुछ कहा गया है उस अर्थसे ही गम्यमान है। निगमन आदिक वचनकी तरह। जैसे हम शंकाकार यह मानते हैं कि जब अनुमानका प्रयोग किया गया तो उसे प्रयोग विधिमे तो निगमन आदिककी सिद्धि अपने आप हो जाती है। तो जैसे निगमन स्वय प्रसिद्ध हो गया और उसका प्रयोग नही करना पडता इसी प्रकार नियत कथामे प्रतिज्ञाका विषय अर्थसे ही गम्यमान हो गया अतएव उसका प्रयोग न करना चाहिए। समाधानमें

कहते हैं कि फिर तो इस ही कारण शास्त्रादिकमें भी प्रतिज्ञाका प्रयोग न करना चाहिए। शास्त्र होते हैं एक लिखितरूप और कथायें होती हैं एक मौखिक शब्दरूप। बात तो दोनों ही जगह एक है। कथाओंमें भी उपदेश है और शास्त्रादिकमें भी उपदेश है। शास्त्रादिकमें जिगीषु पुरुष प्रतिपाद्य न होते हों सो बात नहीं। अनेक पुरुष शास्त्रोंका अध्ययन इस दृष्टिसे करते हैं कि हम उसका खण्डन कर दें, ऐसी विजयकी चाह करने वाले पुरुष भी शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं लेकिन प्रतिपाद्य वे भी हैं। उनकी समझमें जिस तरह बैठे उस तरह वर्णन है और वचन तो दोनों जगह एक हैं। यदि वाद विवादके समय यह बात कही जाती है कि केवल हेतु जैसे साधारण शब्दों के कहने मात्रसे ही सामर्थ्यसे प्रतिज्ञाका विषय जान लिया जाता है यों ही शास्त्रमें भी साधारण वचनोंका कहकर प्रतिज्ञा आदिकका विषय सामर्थ्यसे जान लिया जा सकता है। बात दोनों जगह एक समान है। तो जब शास्त्रोंमें प्रतिज्ञा आदिकका विषय सामर्थ्यसे जान लिया जा सकता है। बात दोनों जगह एक समान है। तो जब शास्त्रोंमें प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग करना सार्थक बताया गया है तो वादविवादमें भी प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग करना सार्थक है। प्रतिज्ञा वचनसे कहीं वक्ताकी हार कल्पित नहीं की जा सकती है। जीत हारका आधार तो अपने पक्षकी सिद्धि और असिद्धि करना ही है।

शंकाकार द्वारा जय पराजयके कथनका प्रसंग—यहाँ प्रसंग चल रहा है कि आचार्य समन्तभद्रने इस कारिकासे पहिली कारिकामें यह बताया था कि निर्दोष सर्वज्ञ अरहन्त ही हैं क्योंकि उनके वचन युक्ति और शास्त्रके अविरुद्ध हैं। इसका समर्थन करनेके बाद फिर अब इस कारिकामें यह बता रहे हैं कि जो एकान्तवादी हैं उनका शासन प्रत्यक्षसे बाधित है और उनमें आप्तता नहीं है। तो इस प्रसंगमें शंकाकारने यह शंका की कि जब पहिली कारिकामें एक साथ यों वचनसे सिद्ध कर दिया कि निर्दोष सर्वज्ञ अरहन्त देव ही हैं क्योंकि युक्तिशास्त्रसे अविरुद्ध भाषण है उनका। तो इसी बातसे यह सिद्ध हो जाता है कि अन्य आप्त नहीं है और अनेकान्तवादसे भिन्न वाद एकान्तवाद दूषित है। यों कह दिया तो विधि वचनसे ही व्यतिरेककी सिद्धि हो जाती है, फिर व्यतिरेक वचन क्यों कहा? इस कारिकामें एकान्तवाद दूषित है, यह कहनेकी आवश्यकता क्यों हुई? यह तो वचनाधिक्य है। बुद्धिमान पुरुषोंमें तो संक्षिप्त वचनसे बात की जाती है और उससे ही सब सिद्ध हो जाता है फिर अन्य बात कहना अनर्थक है। इस शंकाके समाधानमें ये सब बातें चल रही हैं और निष्कर्ष यह निकाला गया है कि कोई वादी अपने पक्षकी सिद्धि करता है यह अन्वय वचनसे और व्यतिरेक वचनसे दोनोंसे ही सिद्धि करता है तो उसका कोई दोष नहीं है। वचनाधिक्य कोई दोषमें शामिल नहीं किन्तु अपने पक्षकी सिद्धि न कर सकना यह दोषमें शामिल है। इस बातको सिद्ध करते हुएमें यह कहा जा रहा है जब कि प्रतिज्ञा आदिकका जो कथन है वह भी निग्रहके लिए नहीं होता। वैधर्म्य वचन है वह भी

निग्रहके लिए नही होता। जैसे कोई कहता है कि सच बोलनेमे पुण्य है। इसका समर्थन करके फिर यह कह दे कि झूठ बोलनेमें पुण्य नहीं है। तो कोई यह दोष दे कि जब पहिले जो कहा है उससे ही अपने आप यह सिद्ध हो जाता है कि झूठ बोलनेमें पुण्य नही फिर इस बातको दुहराना यह तो अनर्थक है। सो यह दोष नहीं आता। कोई अपने पक्षकी सिद्धि अनेक युक्तियोसे करे तो इसमें दोषकी क्या बात? अनुमान प्रयोग किया जाता है तो हेतु भी बोला जाता है और प्रतिज्ञा आदिक कहना निग्रहके लिए है, क्योंकि यह वचनाधिक्य है और अनर्थक है तो शास्त्रोमे फिर प्रतिज्ञाका प्रयोग क्यों बताया गया है?

शङ्काकार द्वारा शास्त्रादिमे प्रतिज्ञावचनकी उपयोगिता व वादमे अनुपयोगिताका कथन और उसका समाधान — उक्त विषयपर शका समाधान होते होते अब शकाकार यह कह रहे हैं कि शास्त्रादिकमें अ जगीषुता अर्थात् जीत प्राप्ति करनेकी इच्छा नहीं है। केवल समझानेकी इच्छा है ऐसे लोग भी तो प्रतिपाद्य हैं, मायने समझने योग्य हैं। मद बुद्धि वाले जिज्ञासु पुरुषोके लिए तो शास्त्र बताये गए हैं। तो शास्त्रादिक उनको भी समझाते हैं इसलिए उनमे प्रतिज्ञाका प्रयोग किया जाता है। यदि शास्त्रोमे प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग न किया जाय तो जो कोई मद बुद्धि वाले पुरुष हैं वे तो प्रकरणकी बात जान ही न सकेंगे। इस कारण चाहे गम्यमान भी हो प्रतिज्ञा लेकिन उन मद बुद्धियोके समझनेके लिए शास्त्रादिकमें प्रतिज्ञाके विषयका प्रयोग किया गया है। क्योंकि शास्त्र बनाये जाते हैं मदबुद्धियोको समझानेके लिए तो मदबुद्धयोकी जानकारी करानेके वास्ते शास्त्रादिकमें प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग किया जाना युक्त है। सो उत्तरमें कहते है कि इसी तरह वादविवादके समयमे भी यद्यपि जिज्ञासु पुरुष है वह अपनी जीत हारकी इच्छा करने वाला है लेकिन क्या जिज्ञासु पुरुष मद बुद्धि वाले नही होते हैं? और जब मद बुद्धि वाले सम्भव हैं तो वादविवादके समय न भी इन मद बुद्धियोको समझानेके लिए प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग करना ही चाहिए। जैसे शास्त्रादिकमें मदबुद्धियोके समझानेके लिए प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग किया गया है इसी प्रकार वादकालमें भी मद बुद्धि जिगीषुओंको समझानेके लिए प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग किया जाता है। क्योंकि शास्त्रका प्रकरण हो या वादका प्रकरण हो दोनोमे मदबुद्धिपनेकी अविशेषता तो रहती ही है। तो मद बुद्धि दोनो जगह सम्भव है तो दोनों जगह प्रतिज्ञा आदिकका अभिधान करना चाहिए और यदि वाद कालमे प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग करना अनुचित कहते हो तो शास्त्रादिकमे भी प्रतिज्ञा आदिकका प्रयोग न करना चाहिए। इससे यह निष्कर्ष मानो कि वचनादिक अथवा प्रतिज्ञा आदिकके प्रयोग, अनेक युक्तियोसे प. को सिद्ध करनेकी बात ये सब दोषके लिए नहीं हैं। दोष करने वाला तो साधना भासका प्रयोग है। कोई खोटी युक्ति या खोटे हेतुका प्रयोग करे तो वह हारके लिए है।

शंकाकार द्वारा प्रतिज्ञाकी व्यर्थताका कथन और उसका समाधान — शंकाकार कहते हैं कि देखिये ! प्रतिज्ञाका प्रयोग करनेपर भी हेतु आदिकका वचन किए बिना साध्यकी प्रसिद्धि नहीं होती इसलिए प्रतिज्ञा व्यर्थ है। साधनका प्रयोग करना यही एक अनिवार्य और आवश्यक बात है क्योंकि हेतुके प्रयोगके बिना साध्य की सिद्धि होती ही नहीं। भले ही प्रतिज्ञाका कोई प्रयोग करे लेकिन मात्र प्रतिज्ञाके प्रयोगसे जब साध्यकी प्रसिद्धि नहीं होती तो प्रतिज्ञा व्यर्थ है और हेतु आदिकके वचनमें साध्यकी सिद्धि होती ही है अतएव निगमन आदिक सब अकिञ्चित्कर है। समर्थनमें सब अंग आ गए और इस त्रिलक्षणहेतुसे प्रतिज्ञाकी सिद्धि हो ही गई।

त्रिलक्षणत्वके समर्थनमें प्रयोगकी सिद्धि और साधनमात्रसे साध्य सिद्धि माननेपर समर्थनकी भी अकिञ्चित्करता और समर्थनप्रयोगसे क्षणिकवादियोंके पराजयका प्रसङ्ग — त्रिलक्षणपना कहते किसे हैं ? हेतुका पक्षमें रहना। तो इस त्रिलक्षणसे प्रतिज्ञा भी समर्थित हो गई और निगमन भी समर्थित हो गया। सो क्या शंकाकारने प्रतिज्ञा स्वीकार नहीं किया ? किया ही है। अपने हेतुके समर्थनके बिना हेतुका भी प्रयोग कर डाले तो भी अर्थकी प्रतिपत्ति नहीं होता। सो उनके बताये गए अनुमान प्रयोगमें यह बात सर्वत्र जाहिर है हेतु बोला गया और हेतुका समर्थन किया गया। समर्थनकी विधिमें प्रतिज्ञा निगमन सब ध्वनित होते हैं। केवल साधनमात्रसे अर्थका परिज्ञान माननेपर फिर तो समर्थनका भी प्रयास मानना चाहिए। यदि शंकाकार ऐसा अभिप्राय रखें कि हेतु मात्र ही आवश्यक है और हेतुसे ही पदार्थकी प्रतिपत्ति हो जाती है तब फिर समर्थन क्यों करते ? निगमन उनके समर्थनमें ध्वनित होता है ऐसे समर्थनकी वहाँ क्या आवश्यकता रही ? वह भी अकिञ्चित्कर बन जायगा। जब हेतु मात्रसे ही साध्यकी सिद्धि मानी है, जहाँ समर्थनकी भी आवश्यकता नहीं समझते हैं तो समर्थन तो हुआ अकिञ्चित्कर, तो अकिंचित्कर होनेसे समर्थन भी अब अतिशयवाला न रहा। उसका भी कुछ महत्त्व न रहा फिर समर्थन भी निग्रहके लिए बन गया। तो ऐसे समर्थनके प्रयोग करने वाले क्षणिकवादियोंका अपराध कैसे न हुआ ? चाहे वे हेतु आदिकको कहें या हेतुके समर्थन आदि को कहें उसमें उनका पराजय यों है कि वचनाधिक्य दोषको किसी भी प्रसंगमें लगा दिया जा सकता है। कितना वचन बोलनेसे अर्थका काम चलेगा, इसकी कोई निश्चित सीमा नहीं है। एकसे एक बुद्धिमान पुरुष हैं और उनकी दृष्टिसे कुछ भी अधिक वचन बताया जा सकता है। अतः वचनाधिक्य दोषके लिए नहीं है। जो अपने पक्षकी सिद्धिके लिए न समर्थ हो सके वह दोषके लिए माना जायगा।

प्रतिज्ञाभिधान व हेत्वभिधानकी सार्थकताके सम्बन्धमें कुछ शंका समाधान—अब यहाँ शंकाकार आक्षेप समाधानमें यह बात कह रहे हैं कि हेतुके न कहनेपर फिर समर्थन किसका किया जा सकता है तो हेतुके न कहनेकी दूषणकी

से हो तब भी समर्थन हुआ, कभी विपरीत क्रमसे हो तब भी समर्थन हुआ। व्याप्ति प्रदर्शन और पक्षमें अस्तित्व साधन इन दो बातोंके प्रयोगके क्रमका कोई नियम नहीं है, क्योंकि दोनो ही पद्धतियोंमें अर्थात् व्याप्ति दिखाकर पक्षमें अस्तित्वका साधन बता कर हेतुकी साध्यके साथ व्याप्ति दिखाना दोनो ही पद्धतियोमें इष्ट अर्थकी सिद्धि है। जो साध्य सिद्ध करना चाहते हैं वह साध्य दोनो ही कृतियोमें सिद्ध होता है, उनका विरोध नहीं है।

व्याप्तिसाधनके तात्पर्यका हेतुसमर्थनको निग्रहस्थान न होने देनेके लक्ष्यसे शकाकार द्वारा प्रतिपादन — अब व्याप्ति साधनकी बात देखिये अर्थात् हेतु को साध्यके साथ प्रबल रूपसे व्याप्ति है, यह सिद्ध किस तरीकेसे होता है, व तरीका है यह कि विपक्षमें बाधक प्रमाण दिखना। जैसे कि समस्त वस्तुओंक क्षणिकत्वको सिद्ध करनेके लिए जो सत्त्व कृतकत्व हेतु दिया है तो सिद्ध किया जा रहा है यहाँ क्षणिकपना। तो विपक्ष होगा वह, जो क्षणिक न हो अर्थात् नित्य। तो नित्य पदार्थमें बाधक प्रमाण दिखाया जाय कि जो नित्य होगा वह सत् नहीं हो सकता है। अथवा उसमे कुछ काम नही बन सकता है। इस तरह विपक्षमें बाधक प्रमाण दिखाना यह है व्याप्तिको प्रमाणीक ढगसे सिद्ध करनेकी बात। वह किस प्रकार सो देखिये यदि समस्त सत् व कृतक प्रतिक्षण विनाशीक न हो तो यही विपक्षकी बात आयी ना? सिद्ध किया जा रहा है कि समस्त पदार्थ प्रतिक्षण विनश्वर हैं। तब उसका विपक्ष वह होगा कि जो नित्य हो। सो देखिये कि सभी सत् यदि प्रतिक्षण विनाशीक न हो अर्थात् नित्य हो तो नित्यमे न तो क्रमसे अर्थक्रिया बन सकती है और न एक साथ अर्थक्रिया बन सकती है। अर्थक्रियाकी जहाँ सामर्थ्य हो वहाँ तो सत्त्व ठहर सकता अर्थविकल्पमें नहीं। जिस पदार्थसे कोई काम बनता हो। कोई उपकार होता हो, कुछ परिणतियाँ बनती हों उसका व्यक्त रूप हो तब तो उसका सत्त्व माना जायगा। लेकिन जो सर्वथा नित्य हैं उनमें अर्थक्रिया किसी भी प्रकार सम्भव नहीं होती। नित्य पदार्थमे अर्थक्रियाकी यदि कल्पना की जाय तो वहाँ दो विकल्प होते हैं—क्या नित्य पदार्थमें परिणमन एक साथ होगा ? यदि कहे कोई कि नित्य पदार्थमे परिणमन क्रमसे होगा या नित्य पदार्थमे परिणमन एक साथ होगा ? यदि कहे कोई कि नित्य पदार्थमें परिणमनन क्रमसे हो जायगा तो जब किसीमें क्रमसे परिणमन हो रहा तो वह नित्य कैसे कहलायेगा ? सर्वथा नित्य कहना और उसमें क्रमसे परिणमन बताना इन दोनो बातोका तो पूर्ण विरोध है। जो परिणमता है वह नित्य नहीं। जो नित्य है उसमें परिणमन नहीं और क्रमसे परिणमन होनेका अर्थ यह है कि अभी किसी रूप है, अब किसी अन्यरूप पदार्थ होता जायगा तो वह नित्य तो न रहा। यदि कोई कहे कि नित्य पदार्थमें परिणमन एक साथ हो जायगा तो जितने परिणमनभूत भविष्यके हैं वे सभी एक साथ आ जाने चाहिएँ। और, एक साथ परिणमन जब आ गए तो कोई एक व्यक्त रूप ही नहीं कहा जा सकता। और,

फिर अगले समयका परिणमन कुछ रहा ही नहीं किया जानेको । तो नित्य पदार्थमें न क्रमसे अर्थक्रिया बनती न एक साथ अर्थक्रिया बनती तब विपक्षमें याने अभी पदार्थोंमें सत्त्व लक्षण खतम हो जायगा । याने सत् ही न रहेगा । यदि प्रति क्षण विनाशीक नहीं मानते तो कुछ सत् ही नहीं रह सकता । तो यो विपक्षमे बाधक प्रमाण दिखानेका नाम है व्याप्ति साधन । जो कि समर्थनमें बताया जाता है । बाधक प्रमाण आदिक विपक्षमे आते हैं । तो उससे यह सिद्ध होता कि हेतु प्रबल है किन्तु विपक्षमें बाधक प्रमाण नहीं है तो हेतु प्रबल नहीं है और फिर वह साधनाभास है । जैसे कि अभी बताया गया कि प्रतिक्षण विनाशीक भी पदार्थ नहीं हैं तो उसमे अर्थक्रिया भी नहीं है । तब सजातीय अथवा विजातीय क्रियाके करनेका सामर्थ्य नहीं है तो सर्व सामर्थ्यसे रहित जो कुछ है वह नि स्वभाव कहलायेगा । और नि स्वभाव कोई पदार्थ ही नहीं है इस प्रकार साधनका साध्यके विपरीतमें अर्थात् विपक्षमे बाधक प्रमाण न दिखाया जानेपर विपक्षके साथ साधनका विरोध न रहनेसे हेतुका विपक्ष में वृत्ति न भी देखी जाय तो भी उसमें सन्देह तो होता ही है । तब शकाकी निवृत्ति न होगी । जैसे कि प्रकृत अनुमान बनाया गया कि शब्द क्षणिक है सत् होनेसे । अब यहाँ सत्त्व हेतुका विपक्षमें अर्थात् नित्यमे बाधक प्रमाण न दिखाया जाय तो विपक्षके साथ याने नित्यके साथ साधनभूत सत्त्वका विरोध तो न रहा । जब विरोध न रहा तो चाहे विपक्षमें, नित्यमें साधन दिख नहीं रहा, लेकिन विरोध न रहनेसे यह बात कल्पनामें आयगी कि कोई पदार्थ सत् भी रहो, कृतक भी रहो और नित्य भी रहो । तो यो शका न हट सकी । तब नित्यसे व्यतिरेकका याने साधनके न रहनेका, सत्त्वके न रहनेका सन्देह रहनेसे अनेकान्तिक हेत्वाभास हो जायगा यह हेतु ।

व्यतिरेकसदेहसे अनैकान्तिक हेत्वाभास होनेके कारणका विवरण -- व्यतिरेकका सदेह होनेसे अनैकान्तिक हेत्वाभास किस तरह होता है । उक्त अनुमानमे उसको बताते हैं कि विपक्षमें अर्थात् नित्यमे सत्त्व और कृतकत्व हेतुके न दिखने मात्र से साधनका विपक्षसे हटना नहीं माना जा सकता है । अर्थात् अदर्शनमात्रसे विपक्ष व्यावृत्ति नहीं मानी जा सकती है, क्योंकि जो असर्वज्ञ हैं, अल्पज्ञ हैं उन पुरुषोंको जो विप्रकर्षी अर्थात् देश विप्रकर्षी कालविप्रकर्षी अथवा स्वभाव विप्रकर्षी हैं ऐसे परोक्ष पदार्थोंका जो अदर्शन होता है जो उन पदार्थोंका दिखना नहीं हो रहा है तो उतने मात्रसे उन विप्रकर्षी पदार्थोंका अभाव नहीं माना जा सकता है जैसे कि हम आप किसी भीटका एक ओर तक रहे हैं भीटका एक ओरका भाग दिख रहा है दूसरी ओर का भाग नहीं दिख रहा इतने मात्रसे यह तो नहीं कहा जा सकता कि वह हिस्सा है ही नहीं । हमको नहीं दिख रहा लेकिन उस तरफ जो मनुष्य बैठे अथवा खड़े होंगे उनको तो दिख ही रहा । तो जैसे भाग इस भागका हिस्सा दिखनेसे और दूसरे भाग का हिस्सा न दिखनेसे कहीं उसका अभाव न मान लिया जायगा ।

विपक्षमे बाधक प्रमाणकी शक्तिके परिचयका क्षणिकवादी द्वारा

मे हो तब भी समर्थन हुआ, कभी विपरीत क्रमसे हो तब भी समर्थन हुआ। व्याप्ति प्रदर्शन और पक्षमें अस्तित्व साधन इन दो बातोंके प्रयोगके क्रमका कोई नियम नहीं है, क्योंकि दोनो ही पद्धतियोंमें अर्थात् व्याप्ति दिखाकर पक्षमें अस्तित्वका साधन बना कर हेतुकी साध्यके साथ व्याप्ति दिखाना दोनों ही पद्धतियोंमें इष्ट अर्थकी सिद्धि है। जो साध्य सिद्ध करना चाहते हैं वह साध्य दोनो ही कृतियोंमें सिद्ध होता है, उनका विरोध नहीं है।

व्याप्तिसाधनके तात्पर्यका हेतुसमर्थनको निग्रहस्थान न होने देनेके लक्ष्यसे शंकाकार द्वारा प्रतिपादन — अब व्याप्ति साधनकी बात देखिये अर्थात् हेतु को साध्यके साथ प्रबल रूपसे व्याप्ति है, यह सिद्ध किस तरीकेसे होता है, य तरीका है यह कि विपक्षमे बाधक प्रमाण दिखना। जैसे कि समस्त वस्तुओंक क्षणिकत्वको सिद्ध करनेके लिए जो सत्त्व कृतकत्व हेतु दिया है तो सिद्ध किया जा रहा है यहाँ क्षणिकपना। तो विपक्ष होगा वह, जो क्षणिक न हो अर्थात् नित्य। तो नित्य पदार्थमें बाधक प्रमाण दिखाया जाय कि जो नित्य होगा वह सत् नहीं हो सकता है। अथवा उसमे कुछ काम नहीं बन सकता है। इस तरह विपक्षमें बाधक प्रमाण दिखाना यह है व्याप्तिको प्रमाणीक ढगसे सिद्ध करनेकी बात। वह किस प्रकार सो देखिये यदि समस्त सत् व कृतक प्रतिक्षण विनाशीक न हो तो यही विपक्षकी बात आयी ना? सिद्ध किया जा रहा है कि समस्त पदार्थ प्रतिक्षण विनश्वर हैं। तब उसका विपक्ष वह होगा कि जो नित्य हो। सो देखिये कि सभी सत् यदि प्रतिक्षण विनाशीक न हो अर्थात् नित्य हो तो नित्यमें न तो क्रमसे अर्थक्रिया बन सकती है और न एक साथ अर्थक्रिया बन सकती है। अर्थक्रियाकी जहाँ सामर्थ्य हो वहाँ तो सत्त्व ठहर सकता अर्थविकल्पमें नहीं। जिस पदार्थसे कोई काम बनता हो। कोई उपकार होता हो, कुछ परिणतियाँ बनती हो उसका व्यक्त रूप हो तब तो उसका सत्त्व माना जायगा। लेकिन जो सर्वथा नित्य हैं उनमें अर्थक्रिया किसी भी प्रकार सम्भव नहीं होती। नित्य पदार्थमें अर्थक्रियाकी यदि कल्पना की जाय तो वहाँ दो विकल्प होते हैं—क्या नित्य पदार्थमें परिणमन एक साथ होगा? यदि कहे कोई कि नित्य पदार्थमे परिणमन क्रमसे होगा या नित्य पदार्थमे परिणमन एक साथ होगा? यदि कहे कोई कि नित्य पदार्थमें परिणमनन क्रमसे हो जायगा तो जब किसीमें क्रमसे परिणमन हो रहा तो वह नित्य कैसे कहलायेगा? सर्वथा नित्य कहना और उसमे क्रमसे परिणमन बताना इन दोनो बातोंका तो पूर्ण विरोध है। जो परिणमता है वह नित्य नहीं। जो नित्य है उसमें परिणमन नहीं और क्रमसे परिणमन होनेका अर्थ यह है कि अभी किसी रूप है, अब किसी अन्यरूप पदार्थ होता जायगा तो वह नित्य तो न रहा। यदि कोई कहे कि नित्य पदार्थमें परिणमन एक साथ हो जायगा तो जितने परिणमनभूत भविष्यके हैं वे सभी एक साथ आ जाने चाहिएँ। और, एक साथ परिणमन जब आ गए तो कोई एक व्यक्त रूप ही नहीं कहा जा सकता। और,

प्रतिपादन—यहाँ ऐसी आशंका न रखिये कि बाधक प्रमाण होनेसे शङ्काकी निवृत्ति हो कैसे जाती है ? देखिये ! बाधक ज्ञान एक प्रमाण है अर्थात् विपक्षमें यदि बाधक प्रमाण लगता है तो प्रकृत अनुमानकी बात एकदम प्रमाणभूत होती है। उसका उदाहरणमे विवरण सुनो देखिये ! जिसका क्रम अथवा एक साथ अर्थक्रियाका योग नहीं होता, जिस पदार्थमें न क्रमसे परिणमन चल सकता है न एक साथ परिणमन चल सकता है, उसमें कार्यकी सामर्थ्य नही है, यह बात निश्चित है और नित्य पदार्थमें क्रमसे या एक साथ अर्थक्रियाका योग हो ही नही सकता। यह बात बिल्कुल निर्णीत है। याने जो पदार्थ सर्वथा नित्य है, अपरिणामी है, कूटस्थ है ध्रुव है उसमें तो परिणमन ही सम्भव नहीं, फिर क्रमसे या एक साथ परिणमनकी बात भी क्या कही जा सकती है और नित्य होनेपर भी क्रमसे या एक साथ परिणमनकी बात लादोगे ही तो क्रमसे परिणमन माननेपर नित्यता नही रहती है। एक साथ परिणमन माननेपर त्रिकाल परिणमन एक ही क्षणमें हो बैठे, पश्चात् क्या हुआ ? यो सर्वशून्यका प्रसग होगा। तो नित्य पदार्थमें जो कि क्षणिक नहीं है ऐसी कल्पित की गई वस्तुमे न तो क्रमसे अर्थक्रियाका योग होता न एक साथ अर्थक्रिया हो सकनेका योग होता है। तब इस तरह जब ध्रुवमे असामर्थ्य प्रवर्तमान हो गया अर्थात् अर्थक्रिया करनेका सामर्थ्य न रहा, यह सिद्ध हो गया तो असत्त्वका लक्षण है। जिसमें क्रमसे या एक साथ अर्थक्रिया नहीं हो सकती उस ही को तो असत् कहते हैं। तो देखिये ! अब यह असत्त्वका लक्षण नित्य पदार्थ खिच गया। अर्थात् यदि क्षणिक कुछ नहीं मानते तो वह असत् ही है इस वर्णनसे सिद्ध क्या हुआ कि जो सत् है अथवा कृतक हैं यह अनित्य ही है, यह सिद्ध हो जाता है। यो विपक्षमें बाधक प्रमाण मात्रके देनेसे ही साधन मात्रका अन्वय अर्थात् जितने भी साधन धर्म हैं उन सबका सम्बन्ध साध्य धर्म सिद्ध हो ही जाता है और इसी कारण फिर यह सत्त्व हेतु कृतकत्व हेतु, स्वभाव हेतु नामका हेतु सिद्ध हो जाता है। यह सब कहनेका प्रयोजन हम शकाकारोका यह है कि समर्थन करनेसे निग्रह स्थान नही बनता। अनुमान बोलते हैं, उसमे हेतु दिखाते हैं तो हेतुका इस तरह समर्थन करते हैं तो वह समर्थन इस ही ढगसे तो हुआ कि विपक्षमे बाधक प्रमाण बताया गया। तो विपक्षके बाधक प्रमाण बता देने मात्रसे जब साधकका साध्य के साथ अविनाभाव सिद्ध हो गया तो अनुमान बन गया। अब इसमे प्रतिज्ञा निगमन के दिखानेकी आवश्यकता नही है। हाँ समर्थन जो यह बताया गया यह तो इष्ट मतव्य का साधक है।

बाधकप्रमाणमे भी अदर्शनकी अप्रमाणता—अब और भी बात सुनो बाधक प्रमाणमें भी अदर्शन अप्रमाण है, जिससे कि क्रम अथवा एक साथ जो अर्थक्रियाका अयोग है उसकी असामर्थ्यसे ही याने सत्त्व और कृतकत्व आदिकमें जब अर्थक्रियाके अयोगका असामर्थ्य है तो व्याप्ति सिद्ध न होनेसे पहिले कहे गए सत्त्वादिक हेतु की व्याप्ति सिद्ध नहीं होती। यहाँ भी साधनके मान लेनेपर अनवस्था दोष होगा, ऐसी

शंका न करिये। क्योंकि इष्टके अभावके साधनका न दिखना इतने मात्रके प्रमाणता का प्रतिषेध नहीं है। इष्ट मतव्यमें अभाव साधक कुछ नहीं दीखा याने दृश्यानुपलब्धि रूप साधनका अदर्शन हुआ तो इसमे प्रमाणपनेका निषेध नहीं बनता। यह किस प्रकार सो सुनो - जैसे नित्य पदार्थमे क्रमसे या एक साथ अर्थक्रियाका सम्बन्ध न दीखा तो वह विपरीत बातको सिद्ध कर देता है अर्थात् क्षणिकपनेको सिद्ध कर देता है। तब क्रमयौगपद्यायोग इस हेतुका साध्यके विपरीतमे अर्थात् सामर्थ्य रूप सत्व लक्षण में विरुद्धका उपस्थान करनेसे बाधक प्रमाण बन ही गया और इस तरह याने अदर्शन का विपक्षमें बाधक प्रमाणत्व है तब यदि वह हेतु साध्यके अभावमें न होता हुआ सिद्ध करे तो प्रमाणवान अपने विरुद्ध क्रमयौगपद्ययोगनामक हेतुसे बाधित हो जाता है। वहा हेतु यह दिया जा सकता है कि नित्य पदार्थ अर्थक्रियाका करने वाला नहीं है क्योंकि उसमें क्रमसे अथवा एक साथ किसी भी प्रकार अर्थक्रिया सम्भव नही है। यह हेतु क्षणिक स्वलक्षण वस्तुस्वरूपके सिद्ध करनेमें बराबर समर्थ हो गया है अन्यथा क्षणिकमें इसका बाधक प्रमाण असिद्ध हो जानेपर सशय हो जाना दुर्निवार हो जायगा। देखिये—सबकी अनुपलब्धि होना सत्त्वका बाधक नही है किन्तु दृश्यकी अनुपलब्धि ही सत्त्वका बाधक है याने जो दृश्य है क्षणिक है सो वह अगर न दीखे तो समझना चाहिए कि सत् नही है। मगर अनुपलब्धि साधन मात्र सत्वका बाधक नही जब दृश्यकी अनुपलब्धि ही सत्वका बाधक सिद्ध हो गया तब क्रमसे अथवा एक साथ अर्थक्रियाका सम्बन्ध हो जाना याने अर्थक्रिया कर सकनेका सामर्थ्य हो जाना सत् पदार्थमें बन जाता है। दृश्य कहते है क्षणिकको क्योंकि जो कुछ दिख रहा है वह सब क्षणिक ही तो है। क्षणिक ही दृश्य होता अर्थात् प्रत्यक्षगोचर होता। निर्विकल्प प्रत्यक्षमें क्षणिक पदार्थ ही विषयभूत हुआ करता है। तो दृश्य अर्थात् क्षणिकपना यदि नहीं है तो वह सत् नही है। इस प्रकार जो यह अनुमान बना कि जो भी सत् हैं वे सब क्षणिक हैं, यह विपक्षमे बाधक प्रमाण दे देनेसे प्रमाणभूत हो जाता है और इतने मात्रसे वह समर्थन कहलाता है। तो समर्थन करनेसे पराजय नही होती। समर्थन तो एक अनुमानका अग ही है। इस प्रकार व्यापक धर्मानुपलब्धि अक्षणिक पदार्थमे अर्थक्रियाके सामर्थ्यको बाधित कर देता है याने जो नित्य है उसमे न क्रमसे और न एक साथ किसी भी प्रकार अर्थक्रियाका सामर्थ्य न रहा तो अर्थक्रियाका व्याप्ति सत्वमें सिद्ध हो गई और इस प्रकार स्वभाव हेतुका समर्थन बन गया। इस अनुमानमें जो सत्व हेतु दिया है वह स्वभाव हेतु है और उसका समर्थन होता है। इस समर्थनके वचनसे हार नही है किन्तु वह अपनी जीतको ही प्रबल करता है।

सकाकार द्वारा समर्थनके स्वरूपके कहे जानेके प्रसगका प्रकरणसे सम्बन्ध होनेका विवरण—इस प्रसगमें क्षणिकवादियोने सर्वप्रथम यह कहा था कि जब इस कारिकासे पहिली कारिका द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि अरहन्त ही आप्त है निर्दोष होनेसे और युक्तिशास्त्रसे अविरुद्ध वचन होनेसे, फिर इस कारिकामे यह कहा

जा रहा कि जो अ हृतमतसे बाह्य हैं एकान्तवादी हैं उनका शासन प्रत्यक्षसे ही बाधित होता है, तो पहिले कथनमें जब यह बात अपने आप सिद्ध हो जाती है कि अरहंतका शासन अबाधित है अर्थात् अन्य एकान्तवाद बाधित है तो जो अपने आप अर्थसे सिद्ध हो जाता है उस बातको पुनः कहना यह तो निग्रहस्थान है अर्थात् पराजय तिरस्कार कराने वाला प्रयास है। इस शंकाके उत्तरमें यह कह कर भी समाधान किया कि अर्थसे सिद्ध होनेवाली बातको फिरसे कहना यदि निग्रहस्थान है तब क्षणिकवादी अनुमान प्रयोगमें हेतुको कहकर फिर हेतुका जो समर्थन करते है, जिस समर्थनसे प्रतिज्ञा निगमन आदिक सब वचन निग्रहस्थान कहलाने लगते हैं तो उनका समर्थन भी फिर अनुपयोगी और निग्रहस्थानके योग्य हो जायगा। इस आपत्तिको दूर करनेके लिए क्षणिकवादी यहां यह कह रहे हैं कि समर्थनका पहले स्वरूप समझिये। समर्थन का जो स्वरूप है वह विपक्ष व्यावृत्तिको सिद्ध करता है। हेतुका विपक्षमें न रहना यह एक खास प्रमाण है और हेतुके जो तीन लक्षण बताये गए उनमेंसे यह अन्तिम रूप है। तो समर्थन कोई अलग चीज न हुई किन्तु हेतुका ही अंग हुआ। हेतुके अंग तीन हैं—पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति। तो हेतुका समर्थन जिस विधिमें किया जाता है परख करके आप यह पायेंगे कि वह पद्धति विपक्ष व्यावृत्तिको जाहिर करने वाली है। और इस पद्धतिका स्वभाव हेतुमें वर्णन किया गया है।

कार्य हेतुके समर्थनको विपक्षव्यावृत्तिरूप बतानेका शंकाकारका प्रयास

क्षणिकवादमें हेतु तीन प्रकारके होते हैं स्वभाव हेतु कार्य हेतु और व्यापकानुपलब्धि हेतु। स्वभाव हेतुके सम्बन्धमें शंकाकारने काफी प्रकाश डाला है अब कार्यहेतुके सम्बन्ध में शंकाकार यह कह रहे हैं कि कार्य हेतुका भी समर्थन विपक्ष व्यावृत्तिरूप पड़ता है। वह किस प्रकार सो सुनो जिसका कार्यभूत लिङ्ग कारणकी सिद्धिके लिए बताया जाता है उस कार्यभूत लिङ्ग कारणके साथ कार्य कारणभावका दिखाना अन्वय और व्यतिरेक दोनो प्रकारोंमें होता है। जैसे कि अग्नि साध्यमें धूमके हेतु वाले अनुमानमें यह व्याप्ति बनी कि यह धूम अग्निके होनेपर होता है। यद्यपि उस समय धूमके हेतु किसी प्रकार अन्य अन्य भी रहे हैं जैसे गीला ईंधन होना, हवाका चलना आदि ये भी यद्यपि धूमकी उत्पत्तिमें कारण हो रहे हैं लेकिन अग्निसे भिन्न अन्य समर्थ धूमके कारणोंके होनेपर भी व्याप्ति बनती है इस प्रकार कि यह धूम अग्निके होनेपर होता है और अग्निके न होनेपर नहीं होता है। इस ही प्रकारकी समझसे अग्निका कार्यपना असंदेह रूपसे समर्थित होता है अर्थात् यह धूम अग्निका कार्य है क्योंकि अग्निके होनेपर धूम होता है, अग्निके न होनेपर नहीं होता है। यदि अन्वयका अभाव माना जाय और केवल व्यतिरेकसे ही समर्थन किया जाय कि अग्निके अभावमें धुवां नहीं होता है, इस प्रकार व्यतिरेक रूपसे उनका सम्बन्ध दिखाया जाय और अन्वय सम्बन्धको छोड़ दिया जाय तो देखिये, सहकारी कारण वहां अन्य भी हैं जैसे हवा ईंधन आदिक। तो इन सहकारी कारणोंका कार्यकी उत्पत्तिके समय सद्भाव है ना, तो अब धुवां नहीं है तो

कार्यकी उत्पत्तिमें कारणभूत हवा ईंधन आदिक भी नही है जब वहाँ अग्निके कारण-पनेमे सदेह हो जाता है । अग्नि धूमको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य रखती है. इस अर्थ क्रियाके सम्बन्धमे सन्देह हो जाता है, क्योंकि धूमरूप कार्यकी उत्पत्तिमे हवा आदिक कारण भी अब समर्थ सिद्ध हो गए ऐसी स्थितिमे कि हवा आदिकके अभावमें धूमरूप कार्य नही हुआ, इस शकाकी निवृत्ति अब न होगी ।

स्वसम्भवताकी दृष्टि बिना साधारण अन्वय व्यतिरेकके कथनमे भी प्रमाणताका अभाव – यहाँ कोई ऐसी जिज्ञासा रख सकता है कि अग्निके अभाव होनेपर धुवाँ का न रहना, यह देखा जा रहा है तब अग्निमे ही धूम कार्यको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य है । अन्य पदार्थमे धूम कार्यको उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य नही है यह बात बन जायगी । सो कहते हैं कि अग्निकी निवृत्ति होनेपर धुवाँकी निवृत्ति होनेपर धुवाँकी निवृत्ति बताना ऐसी हालतमे कि जब हवा ईंधन आदिककी निवृत्ति होनेपर धूमकी निवृत्ति देखी जाती है तब कुछ भी कहना वह अपना मनचाहा कहना बन गया । यह भी कह दिया जाय कि अग्निके हटनेपर धूम नही रहता है इसलिए धूम अग्निका कार्य है यह भी मनचाहा बोल देनमे शामिल होगा । युक्तिपरस्पर बात अब न रही । और ऐसी इच्छानुकूल बकवाद होगा जैसे कि जिस देशमें माताका विवाह करना उचित माना जाता हो उस देशमें उत्पन्न होते हो बहुत तादादमें पिण्ड खजूर तो उसे निरखकर कोई यों व्याप्ति बना दे कि देखो अन्य देशमें मातृ विवाह नही होता तो पिण्ड खजूर भी नही है । सो उन पिण्ड खजूरोंका होना एक मातृविवाहके कारणसे सिद्ध हुआ । इस तरह बोलना जैसे व्यर्थका बकवाद है, इच्छानुसार कहना है ऐसे ही जब धूम कार्यकी निवृत्ति अग्निकी, ईंधनकी, हवाकी निवृत्ति होनेपर देखी गई तब केवल अग्निका नाम लेकर कहना कि देखो — अग्निके अभावमे धूम न हुआ अतएव धूम अग्निका कार्य है यह तो मनचाहा बोलना हुआ ।

कार्यहेतुके समर्थनको विपक्ष व्यावृत्तिरूप कहनेका शकाकार द्वारा उपसहार — जो ऊपर बात दिखाई गई कि धूमके कारणभूत तो समग्र भी पदार्थ हुए फिर भी धूम अग्निके होनेपर होता है और न होनेपर नही होता इस तरह अन्वयव्यतिरेक रूपसे समर्थित किया गया वह धूम अग्निका कार्य सिद्ध होता है अर्थात् उत्पत्तिसे सिद्ध हुआ वह धूम अग्निके सद्भावको सिद्ध कर देता है यों यह बात प्रकट होती है कि कार्य कारणका अव्यभिचारी है । कार्य दिखे तो उसमे कारणका अवश्य अस्तित्त्व सिद्ध होता है । और, जब यहाँ धूम अग्निके प्रसगमे धूम कार्यका अग्नि कारणके साथ अव्यभिचार सिद्ध हुआ तो सभी जगह यह समझना चाहिए कि जितने कार्य होते हैं वे कार्य अपने कारणका अस्तित्व सिद्ध करते ही हैं । और सिद्ध होता है अन्वय व्यतिरेकके द्वारा । यों कार्य हेतुका समर्थन किया जाता है इससे भी यह परखलें कि इस कार्य हेतुके समर्थनमे यही तो पद्धति आयी कि यह कार्यरूप

हेतु विपक्षमें नहीं गया। तो विपक्ष व्यावृत्ति जो कि हेतुका एक अंश है उसके द्वारा समर्थन हुआ? समर्थन कोई अलग चीज नहीं है। समर्थन करना हेतुका ही कहना कहलाता है। इस प्रकार स्वभाव हेतुका समर्थन और कार्य हेतुका समर्थन हेतुका ही लक्षण है। समर्थन कोई अलग चीज़ नहीं है

अनुपलब्धिरूप हेतुका समर्थन भी विपक्षव्यावृत्तिरूप होनेका शंकाकार द्वारा प्रतिपादन— अब अनुपलब्धिरूप हेतुके समर्थनकी बात देखो—कौन सी अनुपलब्धि साध्यको सिद्ध करनेमें समर्थ है? जानने वाले पुरुषकी जानकारीमें जो चीज आ सकती है फिर उसकी ही अनुपलब्धि तो वह अनुपलब्धि वस्तुके असत्त्वको सिद्ध करती है। उपलब्धि लक्षणप्राप्त वस्तुकी अनुपलब्धि होनेसे ही उसका असत्त्व व्यवहार बनता है। जैसे किसीने कमरेमें देखा -घड़ा नहीं है और वह कहता है कि घड़ा नहीं है तो घड़ेका असत्त्व सिद्ध हो जायगा। पर कोई या कहे कि यहाँ पिशाच शरीर नहीं है, परमाणु नहीं है तो इसे कौन मान लेगा? और, केवल इस अनुपलब्धिके कहनेसे उसके नास्तित्वकी सिद्धि कैसे हो जायगी? जो चीज दृश्य हो सकती है फिर वह दृश्य न मिले तो उसका असत्त्व कहा जा सकता है। परमाणु आदिक पदार्थ अदृश्य हैं अनुपलब्धि लक्षणप्राप्त है, उनकी कभी उपलब्धि हम आप लोगोंको होती नहीं तो हम आप अल्पज्ञोंके जाननेमें परमाणु नहीं आ रहे प्रत्यक्षसे उपलब्धि नहीं हो रही तो उपलब्धि न होकर भी अर्थात् अनुपलब्धि होकर भी परमाणुके अभावकी सिद्धि नहीं की जा सकती। जैसे कोई पुरुष कहता है कि यहाँ घड़ा नहीं है अनुपलब्धि होनेसे। यों कोई यह नहीं कह सकता कि यहाँ परमाणु नहीं है अनुपलब्धि होनेसे। परमाणु तो अदृश्य है। अदृश्यकी अनुपलब्धिसे अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता। जो वस्तु दृश्य है फिर उसकी उपलब्धि न हो तो अभाव सिद्ध बन सकता है। तो यहाँपर उपलब्धि लक्षणकी प्राप्ति का ही नाम स्वभाव विशेष है और उसके जो अन्य कारण हैं चक्षु प्रकाश आदिक उनका जुट जाना वह स्वभाव विशेष है। तो जब स्वभाव विशेषकी उपलब्धि न हुई तब ही तो असत्त्व सिद्ध हो सका। तो उस अनुपलब्धिका भी समर्थन विपक्ष व्यावृत्ति रूप पड़ता है।

अविप्रकृष्ट एव अन्यापोहरूपसे प्रत्यक्ष प्रतिभासिरूपकी अनुपलब्धिसे असत्त्वके व्यवहारकी शक्यताका शंकाकार द्वारा वर्णन— अनुपलब्धि हेतुसे जो पदार्थका असत्त्व माना जाता है वह अनुपलब्धि हेतु उपलब्धिको प्राप्त हो सकने वाले पदार्थोंकी अनुपलब्धिरूप है और यह एक स्वभाव विशेष है अर्थात् उपलब्धि लक्षणसे प्राप्त होने वाले वस्तुका ही ऐसा स्वरूप है कि वह उपलब्धिमें आ जाता है। इसी प्रकार चक्षु आदिक अनेक कारणोंकी समग्रता होना सब कारणोंका जुट जाना यह भी स्वभाव विशेष है। यह स्वभाव विशेष जहाँ पाया जा सकता है फिर उसकी उपलब्धि न हो तो उससे नास्तित्व सिद्ध होता है। इसी सम्बन्धमें स्पष्टीकरण करते

हैं कि जो पदार्थ न तो देशविप्रकर्षी हो अर्थात् दूरदेशमें जो अत्यन्त दूर है, परोक्षभूत क्षेत्र है, न तो उससे सम्बन्धित हो और न कालविप्रकर्षी हो अर्थात् बहुत अतीतकालमें जो कुछ हुआ हो वह परोक्षभूत है, ऐसा न बहुत अतिकालसे सम्बन्धित हो तथा न स्वभावविप्रकर्षी हो। जैसे परमाणु आदिक स्वभावतः अतिसूक्ष्म हैं और वे परोक्षभूत हैं। ऐसे सूक्ष्म पदार्थ भी न हो, स्वभावविप्रकर्षी न हो, साथ ही जो जानने वाले पुरुषोंके प्रत्यक्षमें इस तरहसे प्रतिभात होते हों कि अन्य स्वरूपके प्रतिभासका अपोह करते हो अर्थात् अन्यापोहके रूपसे जो प्रतिभासमें आता हो। जैसे कहा कि घडा, तो वह घड़ा इस रूपसे प्रतिभासमें आ सकता है कि यह अन्य अन्य चीज नहीं है, कपडा आदिक नहीं है। इस तरह अन्यापोहके रूपमे प्रतिभासी बन रहा हो वही स्वभाव विशेष कहलाता है, ऐसा स्वभावविशेष जिसमें है फिर भी न पाया जाय तो उससे असत्त्वका व्यवहार बनता है कि यहाँ यह चीज नही है। ऐसा स्वभावविशेष, अन्य चक्षु आदिक उपलब्धिके कारणोंके होनेपर भी, यदि ऐसा स्वभावविशेष नही पाया जा रहा है तो वह असत्त्वके व्यवहारका विषय बनता है अर्थात् उससे समझा जाता है कि पदार्थ नहीं है। उदाहरणमें लीजिये—जैसे किसी पुरुषने कमरेमे निहारकर कहा कि यहाँ घडा नहीं है तो घडा न तो देशविप्रकर्षी है, न कालविप्रकर्षी है, न स्वभावविप्रकर्षी है याने घडा इस क्षेत्रमे बराबर देखा जाता है तब घडा विप्रकर्षी पदार्थ नहीं है। साथ ही प्रतिपत्ताके याने जाननहार पुरुषके प्रत्यक्षमे इस विवेकके साथ प्रतिभासमे आ रहा है कि यह कपडा, चौकी पुस्तक आदिक अन्य पदार्थ नही है। तब उसमे स्वभाव विशेष पाया गया वह कि जिसकी अनुपलब्धिसे घडा नहीं है ऐसा व्यवहार बनता है। इसका अर्थ देखिये। कोई कहे कि यहा पिशाच शरीर नहीं है तो पिशाच शरीर स्वभावविप्रकर्षी है। जैसे परमाणु स्वभावविप्रकर्षी है स्थूल पदार्थ नही है, हम आप लोगोंके दिखनेमें आ सकने योग्य नहीं है, अतएव वह स्वभावविशेष ही नही है। साथ ही उसके अन्यापोहरूपसे प्रतिभास होना ही नहीं है। तो उसकी अनुपलब्धिसे अर्थात् पिशाच शरीर हम आप लोगोंको नही दिख रहा है तो इस अदर्शनमात्रसे हम पिशाच शरीरके असत्त्वको सिद्ध नही कर सकते। वहाँ संदेह है, हो भी सकता, नही भी हो सकता। उपलब्धि लक्षणप्राप्त वस्तुकी अनुपलब्धिसे अन्य प्रकारकी अनुपलब्धि मानने पर याने अदृश्यकी अनुपलब्धिसे असत्त्वको सिद्ध करनेका प्रयास करनेपर उस लिंग में संशय हो जाता है, हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। तो सत्त्व आदिक की तरह इस जगह भी यह व्याप्ति बनती है कि सभी वस्तु ही इसी प्रकारसे असत्ताके व्यवहारका विषय बनती है याने उपलब्धिमें आ सकती हो, दिखनेमे आ सकती हो और फिर उसकी अनुपलब्धि हो, न दिख रहा हो, न मिल रहा हो तब उससे असत्ता का व्यवहार बनता है कि अमुक पदार्थ यहाँ है नहीं।

अनुपलब्धिलक्षणप्राप्तकी अनुपलब्धिसे असत्त्वके व्यवहारकी अशक्यताका शंकाकार द्वारा समर्थन— कोई यहा यदि ऐसी आशंका करे कि अनुपल-

ब्ध अर्थात् जो मिल नही रहा, न दिख रहा ऐसा पदार्थ भी तो असत्त्वके व्यवहारका कारण होता है याने अनुपलब्ध होनेसे असत्ताका व्यवहार बनता है तब उस अनुपलब्धिमें ऐसा विशेषण क्यों लगाया जा रहा है कि उपलब्धि लक्षणसे प्राप्त हुई वस्तु की अनुपलब्धि हो तब यह नही है यह व्यवहार बनेगा, यह कहना सगत है, ऐसी कोई आशका करे तो उनके प्रति यही एक सक्षिप्त समाधान है कि यदि किसी खर विषाण आदिक असत पदार्थका सवदा ही अभ्युपगम माना जाय उसको सदा ही मान लिया जाय तो घट आदिक पदार्थोंमे और खरविषाण आदिकमे कोई लक्षणकी विशेषता नही रहनी। घट भी सदा पाया जाता है और खरविषाण भी यहा सदा मान लिया गया है। तो जब कोई इसमे विशेषता न रही तब हर बातमें सशय हो जायगा घटमे, खरविषाणमे फिर तो असत्ताका व्यवहार बन ही नही सकता। उपलब्धिलक्षण प्राप्त वस्तुका असत्त्व न माननेपर अर्थात् जो चीज दिख सकती है मिल सकती है उसकी अनुपलब्धि होनेसे सत्ताका व्यवहार बनता है। यों असत्त्व न माननेका योग जायगा अर्थात् वह भी सत् हो बैठेगा पर गधेकी सीग काई सत् तो नहीं है। अथवा उसे भी उपलब्धिलक्षण प्राप्त मान लिया जायगा तो इस प्रकारकी उपलब्धि लक्षण प्राप्त खरविषाण आदिक जो कल्पित सत् हैं उनकी अन्य उपाधिके कारणोंके होनेपर भी अनुपलब्धि नही है अत जो स्वभाव विशेष बनकर, दिखने मिलनेके योग्य होकर फिर अनुपलभ्यमान हो, न पाया जाता हो, वह ही इस व्यवहारका पात्र हो सकता है कि यह पदार्थ नही है।

समर्थनको अनिग्रहस्थान कहनेका शकाकार द्वारा उपसहार—इस सब कथनका सारांश यह निकला कि अनुपलब्धि हेतुको हम नास्तित्वको सिद्ध करने वाला जो हम बताते हैं और उसका समर्थन करते हैं तो विपक्ष व्यावृत्तिके बलपर ही करते हैं। अनुपलब्धि हेतु भी असपक्षमें नही रहता अतएव वह हेतु है और उससे साध्यकी सिद्धि होती है। तब अनुपलब्धि हेतुका भी समर्थन निग्रहके लिए नहीं हैं। वह तो हेतुका लक्षण है। और ऐसी अनुपलब्धि उस पदार्थमे कही जा रही है जो पदार्थ विप्रकर्षी नही है, अन्यापोह रूप भी समझा जाता है उसकी अनुपलब्धि हो तो उससे असत्त्व सिद्ध किया जाता है। अदृश्यानुपलब्धि रूप हेतु असत्ताके व्यवहारका कारण नही बन सकता है तो इस प्रकार अनुपलब्धि हेतुमें भी यह बात सिद्ध होती है कि इस हेतुका समर्थन कोई अलग तत्त्व नहीं है, किन्तु विपक्षव्यावृत्ति ही इस समर्थनका रूप है। और यही बात तीन प्रकारके हेतुओमें पायी जाती है। कार्यहेतु, स्वभाव हेतु और अनुपलब्धि हेतु इन तीनो हेतुओंमें विपक्षव्यावृत्तिका ही समर्थन किया गया है। और, विपक्षव्यावृत्ति हेतुका तृतीयरूप है। हेतुमें तीन लक्षण होते हैं- पक्षधर्मत्व सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति। तो हेतुका जो समर्थन किया जाता है वह समर्थन विपक्षव्यावृत्ति ही है। इस तरह समर्थन यदि किया गया है तो हेतुके लक्षणका ही स्पष्टीकरण किया गया है। यदि इस प्रकारका समर्थन न किया जाय तो इसका अय

यह हुआ कि साधनका अंग जो तीन रूप है उसे नहीं कहा गया। और इस समर्थनका न होना असाधनाङ्ग वचन बनेगा। याने साधनके अंगको कहा ही नहीं गया। सो यह बात निग्रहके लिए बनेगी। और समर्थन किया जायगा तो निग्रह न बनेगा। समर्थन न करना ही निग्रह है। पराजय है, पर निगमन आदिक जो अन्य अंग हैं वे हेतुरूपसे भिन्न हैं, अतएव निगमन आदिका कहना अनर्थक है।

प्रकृत शकाके भावका उपसहार— क्षणिकवादी कह रहे हैं कि समर्थनका प्रयोग तो निग्रहके लिये नहीं है। पर निगमन आदिकका प्रयोग करना निग्रहके लिए है क्योंकि वह हेतुरूपसे अतिरिक्त बात है। जब त्रिलक्षण हेतुके द्वारा साध्य अर्थका ज्ञान बन जाता है तब निगमन आदिकका प्रयोग बन जाता है तब निगमन आदिकका प्रयोग अनर्थक है। इस कारणसे समर्थन निगमन आदिकसे कुछ अतिशयविशेषका भाव लिए हुए हैं। समर्थनके बिना अनुमानकी सिद्धि नहीं होती। यह हेहेका स्वरूप है, लेकिन निगमन आदिकके प्रयोग बिना भी अनुमानकी सिद्धि हो जाती है इस कारण यह आक्षेप देना कि साधर्म्यका वचन कहनेपर वैधर्म्यका वचन यदि निरर्थक मानते हैं वचनाधिक्य मानते हैं तब फिर हेतुका समर्थन भी वचनाधिक्य हो जायगा सो यह आक्षेप युक्त नहीं है बल्कि यह आक्षेप बराबर व्यवस्थित है कि जब एक बार विधिरूपसे उनकी आप्तता है निर्दोष होनेसे ऐसा जब व्यवस्थित कर दिया तब फिर यह कहना कि एकान्तबाधित है और उनकी आप्तता नहीं है यह वचनाधिक्य है और वचनाधिक्य होनेसे निग्रहस्थान है ऐसा वचनाधिक्यका प्रयोग नहीं करना चाहिए फिर भी आचार्यने कहा, यह उनके अज्ञानकी सिद्धि करना है।

समर्थनप्रयोगातिरिक्त अन्य निगमनादि प्रयोगको निग्रहस्थान बताने की शकाका निराकरण—अब उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि क्षणिकवादियों ने जो कुछ भी कहा है वह उन्होंने अपने दर्शनके अनुराग मात्रसे कहा है। यहाँ समाधान नैयायिक दे रहे हैं कि देखो सौगतोंने भी, क्षणिकवादियोंने भी निगमन आदिक के प्रयोग साधर्म्यका अवयव माना है। जब जब भी उनका अनुमान प्रयोग होता है उससे क्या फलित निकलता है यह तो बताया ही। और फलित बात बता देना इस हीका नाम निगमन है। न्यायशास्त्रमें कहा है कि प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण, उपनय और निगमन ये ५ अवयव होते हैं अनुमानमें। सो निगमनका प्रयोग या अन्यका प्रयोग, प्रतिज्ञाकी तरह नहीं कहते हैं तो न्यून नामका निग्रहस्थान हो जाता है। जब अनुमान सिद्ध करनेके अवयव ५ हैं तो उन ५ मेंसे कुछ कम अवयवका प्रयोग करना यह न्यून नामका निग्रहस्थान है। और, यों न्यून अवयवका प्रयोग करने वाला पराजयका पात्र है। न्यायशास्त्रमें कहा है कि अनुमानके अंगोंमेंसे यदि हीन रह जाय कोई अंग तो वह न्यून नामका दोष कहलाता है। नैयायिक यहाँ कह रहे हैं कि हे क्षणिकवादियो! यदि तुम यह कहो कि साधनका अवयव होनेपर भी निगमन आदिकका

प्रयोग करना अयुक्त है क्योंकि हेतु प्रयोगसे ही साध्यभूत अर्थका ज्ञान हो जाता है। तो ऐसा कहनेपर यह भी कहा जा सकता है कि समर्थन चाहे हेतुका स्वरूप रहे लेकिन निर्दोष हेतुके कहने मात्रसे ही जब साध्यकी सिद्धि हो जाती है तो समर्थन का कहना भी अनर्थक है और फिर ऐसी स्थितिमें समर्थन निगमन आदिकसे बढ़कर उपयोगी कैसे हो सकता है? कोई बुद्धिमान पुरुष ऐसा भी होता है कि जिसने अनुमान का प्रयोग सुना और हेतुके सुनते ही साध्यभूत अर्थका ज्ञान करले, उसे समर्थन सुनने की आवश्यकता नहीं रहती। अब देख लीजिए समर्थनको यद्यपि क्षणिकवादियोंने हेतुका ही एक रूप माना है लेकिन निर्दोष हेतुके प्रयोग मात्रसे उस हेतुके विषयमें कुछ भी समर्थन विवरण किए बिना ही जब साध्यकी सिद्धि हो जाती है तो हेतु समर्थनका प्रयोग करना अनर्थक कैसे न होगा।

अन्यथानुपपन्न हेतुके प्रयोगसे साध्यार्थकी प्रतिपत्ति होजानेके कारण पक्षधर्मत्व आदिके प्रयोगकी व्यर्थताका क्षणिकवादमें प्रसंग - अब यहां क्षणिक वादी कह रहे हैं कि विपक्ष व्यावृत्ति जिसका रूप है ऐसे हेतुका समर्थन यदि नहीं किया जाता तो पक्षधर्मत्व सपक्ष इनके रूप रहनेपर भी वह हेतु साध्यका गमक नहीं बन पाता है, लेकिन निगमन आदिकका प्रयोग न भी करे तो भी हेतु साध्यका गमक बन जाता है। हेतुके समर्थन मात्रसे यह हेतु साध्यको सिद्ध करनेमें समर्थ हो जाता है। इससे सिद्ध है कि हेतुका समर्थन निगमन आदिकके प्रयोगसे बढ़कर उपयोगी है। इस शङ्काके समाधानमें स्याद्वादी कहते हैं कि ऐसा कहकर क्षणिक सिद्धान्तानुयायी खुद अपने आप अपना विघात कर रहे हैं। यों देखा जाय तो पक्षधर्मत्व और सपक्ष-सत्व भी हेतुके अवयव नहीं बनते हैं। हेतुका लक्षण तो अन्यथानुपपन्नत्व ही प्रमाण सिद्ध होता है। अन्यथानुपपन्नत्व उसे कहते हैं कि जिसके बिना जो न हो उसके होने पर साध्यकी सिद्धि अवश्य होती है। जैसे धुवां देखकर अग्निको सिद्ध कर देते हैं अनु-मानसे तो उस धूममें अन्यथानुपपत्ति है अर्थात् अग्निके बिना धुवां हो नहीं सकता। तो ऐसे ही जितने हेतु हैं वे यदि साध्यके बिना होने वाले नहीं हैं तो उन हेतुओंके होने से साध्यकी सिद्धि हो जाती है। तो यों हेतुका अन्यथानुपपन्नत्व लक्षण है और वही अन्यथानुपपन्नत्व ही समर्थनरूप बनता है। अन्यथानुपपत्तिकी जो व्याख्या है साध्यके न होनेका जो विवरण किया जाता है वही समर्थन कहलाता है। विपक्षमें हेतुके न रहनेरूप समर्थनका विवरण भी अन्यथानुपपन्नत्वका विवरण है। ऐसे हेतुसे वास्तवमें साध्यका ज्ञान होता है। अन्यथानुपपत्वका अर्थ यह है कि साध्यके बिना नहीं हो सकता साधन सो जो साधन साध्यके बिना कभी होता ही नहीं है तो वह साधन साध्य को अवश्य सिद्ध करता है। तो हेतुमें अन्यथानुपपत्तिकी विशेषता होनी चाहिए। उस से ही देह साध्यका ज्ञान होता है। तो जब अन्यथानुपपन्नत्वके होनेपर ही हेतु अपना प्रयोजन सिद्ध कर पाता है तो पक्षधर्मत्व आदिकके प्रयोग करनेपर अब उस वादीका असाधनाङ्ग वचन बन जायगा और निग्रह स्थान बन जायगा। क्षणिकवादी हेतुके

तीन स्वरूप मानते हैं। हेतुका पक्षमें रहना हेतुका सपक्षमे रहना और हेतुका विपक्ष मे न रहना लेकिन जब हेतुके अन्यथानुपपन्नत्वकी सिद्धि की जायगी कि साध्यके बिना न हो ऐसा है वह साधन सो वह साधन साध्यका गमक हेतु कहलाता है। सो इस अन्यथानुपपत्तिरूप हेतुके प्रयोगमात्रसे अनुमानकी सिद्धि होगी तब पक्षधर्मत्व आदिक का प्रयोग करना भी वचनाधिक्य हो जायगा, और उससे पराजय हो जायगी।

प्रतिपाद्यानुरोधसे भी अतिरिक्त वचन कहनेका निग्रहस्थान माननेका आग्रह करनेपर इन आग्रहियोके सिद्धान्तवचनमे भी पद पदपर वचनाधिक्य का प्रसग यदि शकाकार यह कहे कि जिसको समझाया जा रहा है ऐसे शिष्यके अनुरोधसे पक्षधर्मत्व आदिक कहा जाता है तो उस कथनसे निग्रह नही होता, पराजय नही होता। सो उत्तरमें कहते हैं कि यह बात निगमन आदिकके प्रयोगकी भी समझ लीजिये। प्रतिपाद्य पुरुष जिसको कि समझाया जाता है उसकी बुद्धि मद है या वह कुछ समझनेकी जिज्ञासा कर रहा है तो उसके अनुरोधसे निगमन आदिकका प्रयोग भी करना निग्रहके लिए नहीं होता तब पक्षधर्मत्व आदिकके प्रयोगमें निगमन आदिक के प्रयोगसे कोई भी विशेषता नहीं रहती। जो बात पक्षधर्मत्वके सम्बन्धमें कह सकते हो वही बात निगमनके सम्बन्धमे घटित होती है। शकाकार कहता है कि हमारा तो यही आग्रह है कि प्रतिपाद्यके अनुरोधसे भी यदि अतिरिक्त वचन बोले जाते हैं, अतिरिक्त असाधनाङ्ग वचन है अर्थात् जो अनुमानका साधन करनेका अग नही है उसका कथन है और इस असाधनाङ्ग वचन होनेसे वह सब निग्रह स्थान बन जाता है। अर्थात् इस तरह चाहे शिष्य मदबुद्धि हो अथवा उसका अनुरोध हो फिर भी निग्रह आदिको यदि कोई कहता है तो वह असाधनाङ्ग वचन है और इससे उसका पराजय निश्चित है। इस शकामें उत्तरमे कहते हैं कि यदि यह ही हठ की जा रही है कि प्रतिपाद्यके अनुरोधसे भी कोई यदि अतिरिक्त वचन बोलता है तो वह असाधनाङ्ग वचन है और पराजयका साधन है, तो ये क्षणिकवादी स्वय अपने सिद्धान्तकी बात देखें कि जब सब पदार्थोंका क्षणिकादिक एक सत्त्व हेतु उन्होने अपने मनभर सिद्ध कर दिया कि सभी पदार्थोंकी नश्वरता सिद्ध कर ली गई उसके बाद फिर दूसरा हेतु देना कि सभी पदार्थ क्षणिक हैं विनाशीक हैं उत्पत्तिमान होनेसे तो क्या यह दूसरा हेतु प्रयोग वचनाधिक नही है और वचनाधिक होनेसे क्या वह असाधनाङ्ग वचन न हो जायगा। और इसके प्रयोगसे क्या पराजय न हो जायगी। इसके बाद भी और देखिये! दो हेतुवोसे भी सिद्ध कर दिया कि समस्त पदार्थ विनाशीक हैं, अब उसके बाद और हेतु देना कि समस्त पदार्थ विनाशीक हैं कृतक होनेसे। तो क्या यह तीसरा हेतु वचन प्रयोग भी अतिरिक्त वचन होनेसे असाधनाङ्ग वचन है अतएव पराजयका पात्र है। इसके अतिरिक्त और भी सुनो—जब यह अनुमान प्रयोग किया कि सभी पदार्थ विनाशीक हैं कृतक होनेसे तो कृतक शब्दका अर्थ क्या है? कृत—चाहे कृत कहो अथवा कृतक कहो। "स्वार्थे क" इस सूत्रसे क प्रत्यय कर दिया गया है अर्थात् कृतक होनेसे। इतना लम्बा

शब्द बोला इसके बजाय यह बोलना था कृत होनेसे । कृतका भी अर्थ "किया गया" है और कृतकका भी अर्थ "किया गया" है। तो यहाँ क शब्दका देना क्या वचनाधिक्य नहीं है ? इसी प्रकार इस ही अनुमान प्रयोगमें जब यह हेतु देते हैं कि प्रयत्नान्तरीयक होनेसे। अर्थात् प्रयत्नके बाद होनेसे, तो यह शब्द भी सीधा प्रयत्नान्तरीय है। अब उसमें क और जोड दिया तो क जोडना क्या वचनाधिक्य नहीं है ? वचनाधिक्य है। तो कितना असाधनाङ्ग वचन बोल दिया गया। सो यह सब वचन क्षणिकवादियोंके पराजयके लिए ही होगा। और भी सुनिये, यदि यह आग्रह किया जाय कि शिष्यके अनुरोधसे भी अतिरिक्त वचन कह देना असाधनाङ्ग वचन है और असाधानाङ्ग वचन है अतएव निग्रहस्थान है और वह पराजयके लिए है, तो देखिये किसी अनुमानमें पक्ष धर्मत्व दिखाना भी असाधनाङ्ग वचन बनेगा, क्योंकि 'और शब्द सत् है" इस प्रकार तो अपने आप ही बात सिद्ध हो जाती है विधिवत् अनुमान प्रयोगसे तब हेतुके जो तीन लक्षण कहे हैं पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति इनमें पक्षधर्मत्व भी एक वचनाधिक हो गया, अतः यह मान लेना चाहिए कि जिस प्रकारसे शिष्य समझ सके उस प्रकारसे वर्णन कर देना दोषमय बात नहीं है।

कृतकत्व उत्पत्तिमत्त्व हेतुके प्रयोगमे वचनाधिक्य न होनेका शकाकार द्वारा कथन—अब शंकाकार कहता है कि जिस अद्वैतवादी योगाचारके सिद्धान्तमे निरुपाधिसत्त्व माना गया है। निरुपाधिका अर्थ है उपाधि रहित। जिस सत्त्वके साथ कुछ भी विशेषण नहीं लगाना है, केवल अस्तित्वमात्र ऐसा सत्त्व जिन क्षणिक वादियोंके यहाँ माना गया है उनको तो शुद्ध स्वभाव हेतुका ही प्रयोग किया जाता है। जैसे कि शब्द नश्वर है सत्त्व होनेसे। यों केवल विशुद्ध सत्त्व हेतु देकर ही शब्दकी क्षणिकता सिद्ध कर दी जाती है, क्योंकि यह निर्विशेषण सत्त्वको भले प्रकार समझता है। लेकिन जिसके सिद्धान्तमें अभिन्न विशेषण वाला सत्त्व प्रसिद्ध है उनको उत्पत्तिमत्त्व हेतु देकर क्षणिक सिद्ध किया है। याने सत्त्व निर्विशेषण है इसका तो अर्थ यह है कि सत्त्व केवल अस्तित्वमात्र है। उस सत्त्वमे कुछ अन्य बात न दिखाना सो तो है निरुपाधिसत्त्व और उस सत् पदार्थमे कुछ और बात भी बताना यह कहलाता है उपाधि सहित सत्त्व। सो उपाधि है दो प्रकारकी—एक तो अभिन्न उपाधि। जो सत्त्व से अर्थान्तर नहीं है ऐसी उपाधि। और एक होती है भिन्न उपाधि—जो सत्त्वसे अर्थान्तरभूत है। जिसका विशेषण किसी अन्य पदार्थके योगसे लगाया गया है। तो इन दो प्रकारके विशेषणोंमेंसे अभिन्न विशेषणकी बात कह रहे हैं अभी कि जिसके सिद्धान्तमे अनर्थान्तरभूत विशेषण वाले सत्त्व प्रसिद्ध हैं उनके अनर्थान्तरभूत विशेषण से समझाया जाता है कि शब्द नश्वर है उत्पत्तिमान होनेसे। तो यहाँ ऐसा प्रतिपाद्य को समझाया जा रहा है कि इस अभिन्न विशेषणके द्वारा समझ सकते हैं तो वहाँ उत्पत्तिमान् हेतु कहना अतिरिक्त वचन नहीं होता। वह साधनांग वचन ही है। किन्तु, जो पुरुष अर्थान्तरभूत विशेषण वाले सत्त्वको मानते हैं जैसे नैयायिक तो उन

को अर्थान्तरभूत विशेषणसे ही समझाया जाय। जैसे कि उनको समझानेके लिए अनुमान प्रयोग किया है शब्द नश्वर है कृतक होनेसे। यहां कृतक भिन्न विशेषण वाला कहा है। इसको यों समझिये कि कृतक कहते हैं उस भावको जिसमें परका व्यापार अपेक्षित होता है। कृतकका अर्थ है किया गया होनेसे। किया गया यह बात परके व्यापारकी अपेक्षाको सिद्ध करता है। घड़ा किया गया। इसके मायने यह ही तो है कि उस घड़ेकी उत्पत्ति परके व्यापारसे हुई है। प्रसिद्धत्वने परके व्यापारकी अपेक्षा की अर्थात् दूसरेके व्यापार के आधीन है घड़ेका होना। तो जो लोग कृतक मानते हैं उनके प्रति कृतक हेतु देकरके अनुमान प्रयोग किया गया है। इस कारण कृतकत्व हेतुका प्रयोग करना भी वचनाधिक नहीं है। अतिरिक्त वचन नहीं है अतएव वह भी असाधनांग नहीं है।

क प्रत्ययसहित शब्दके प्रयोगमें और पक्षधर्मत्वके समर्थन प्रयोगमें वचनाधिक्य दोष न होनेका शंकाकार द्वारा कथन— अब कृतकत्व और प्रयत्नान्तरीयकत्वमें जो क शब्द जोड़ा गया है उस क शब्दकी बात सुनो। यह भी अतिरिक्त वचन नहीं है, क्योंकि क प्रत्यय होता है स्वार्थमें याने जिस शब्दका जो अर्थ अपने आप है उस ही अर्थको प्रसिद्ध कराने वाला है क प्रत्यय। ऐसे क प्रत्ययका कथन ऐसे पुरुषोंके प्रति किया जाता है जो क प्रत्यय याने शब्दकी प्रसिद्धि होनेसे क प्रत्ययसहित शब्दसे अर्थ जल्दी समझते हैं। याने, क शब्दकी प्रसिद्धि वाले शब्दका जो उच्चारण और अनुसरण करते हैं ऐसे वादियोंके प्रति कृतकी जगह कृतक शब्द और अन्तरीयकी जगह अन्तरीयक शब्दका प्रयोग कर देना अतिरिक्त वचन नहीं है क्योंकि क सहित प्रयोग किए बिना उन वादियोंका सन्तोष नहीं होता। जिन वादियोंकी आदत क सहित प्रयोगकी पड़ी हुई है उन वादियोंके प्रति क शब्द सहित प्रयोग किया गया है। जो जिस जिस प्रकारके वादी होते हैं, जिस जिस प्रकारके कथन कहनेसे उसके साध्य की प्रसिद्धि होती है, उनको उस ही प्रकारका प्रयोग करनेपर सन्तोष होता है। अब पक्षधर्मत्वकी बात सुनो। जो समाधानकर्ताने यह कहा है कि पक्षधर्मत्वका दिखाना भी अतिरिक्त वचन हो जायगा सो सुनो—जब यह प्रयोग किया कि जो सत् है वह सब क्षणिक है जैसे कि घट। इतने शब्दके प्रयोगसे ही शब्द नामक पक्षमें निर्विवाद रूपसे सत्वका ज्ञान हो गया। हो गया हम भी मानते हैं, फिर भी और शब्द सत् है इस तरह पक्षधर्मत्वकी बात दिखाना अतिरिक्त वचन नहीं है, क्योंकि जो पुरुष पक्षधर्मत्व को दिखाये बिना शब्दमें सत्वकी बात समझनेके लिए असमर्थ हैं उन वादियोंके प्रति पक्षधर्मत्वकी बात दिखाई गई है। और, जो पक्षधर्मत्वका प्रयोग किए बिना समझ सकते हैं उनके प्रति पक्षधर्मत्वकी बात नहीं भी कही जाती है। एक नीति है कि विद्वान पुरुषोंको उतने शब्द बोलना चाहिए कि जितने शब्द कहनेसे वह अर्थका ग्रहण कर सके। तो जो तत्त्ववेदी हैं, अनुमान प्रयोगके कथनमें अतिकुशल हैं ऐसे पुरुषोंको केवल हेतु ही कहना चाहिए तब यह सब प्रयोग किसीके पराजयके लिए नहीं बनता।

इस प्रकार शंकाकारने अपने अनुमानको प्रसिद्ध करनेके लिए जो जो भी युक्तियां और शब्दोंका प्रयोग किया था उन सबका समर्थन किया कि ये सब अतिरिक्त वचन नहीं हैं अतएव वे सब प्रयोग पराजय करनेके लिए समर्थ नहीं है।

अपने सिद्धान्तकी सिद्धिके प्रयोजनमें वचनाधिक्यको निग्रहस्थान न मानने वाले शंकाकारकी शंकाका समाधान — अब उक्त प्रकारसे शंका करने वाले क्षणिकवादियोंको समाधान दिया जाता है और उस समाधानके प्रसंगमें बड़े आश्चर्यके साथ यह बात कही जाती है कि देखिये ! प्रतिपाद्य पुरुषोंके अनुरोधसे इतनी बातें इन क्षणिकवादियोंने मान लीं कि सत्व हेतु कहनेके बाद उत्पत्तिमत्व हेतुको कह देना अतिरिक्त वचन नहीं, फिर कृतकत्व हेतुका कहना भी अतिरिक्त वचन नहीं। क का प्रयोग करना भी अतिरिक्त वचन नहीं। इतने तक वचनोंको तो प्रतिपाद्यके अनुरोधसे शंकाकारने साधनांग वचन मान लिया और इस प्रकरणमें एक बातको अन्वय विधि से साधर्म्य वचन बोला है या कहीं वैधर्म्य वचन कहनेके बाद साधर्म्य वचन बोल दिया जाय उसको नहीं चाहते, यह कितने आश्चर्यकी बात है। शिष्योंके ही समझानेके अभिप्रायसे एक ही बातको विधिरूपसे कहकर फिर निषेधरूपसे समझा देना कोई अतिरिक्त बात है क्या ? आखिर शिष्यको सत्य बात समझानेका ही तो प्रयत्न है। वह कैसे अतिरिक्त वचन हो जायगा ? और कैसे निग्रह स्थान बन जायगा ? इस नीतिसे ना इस प्रकरणमें निर्दोष वचन होनेसे अरहंत भगवान ही आप्त हैं, अनेकान्त शासन अबाधित है, ऐसा साधर्म्य वचन कहकर फिर अगली कारिकामें वैधर्म्य वचनसे तत्त्वको सिद्ध किया है कि जो एकान्तवाद है वह प्रत्यक्षसे बाधित है। एकान्तवादकी बाधितता स्पष्ट समझ आनेसे अनेकान्तकी अबाधितताका ज्ञान दृढ़ होता है। यह तो बड़ा खास प्रयोजन है। तो एक भलाईका जहाँ प्रयोजन है उसको सिद्ध करने वाला वचन क्षणिकवादी न चाहे और अपने लिए कितने ही अतिरिक्त वचनोंका साधनाङ्ग मान ले यह अचरजकी ही तो बात है। और, प्रतिपाद्यके अनुरोधसे साधर्म्य वचन बोलकर वैधर्म्य वचन मानना यदि इष्ट है फिर इस प्रकरणके निग्रहकी बात बताना अयुक्त ही है।

उपयोगी वचन होनेपर भी सर्वथा निग्रहस्थान माननेपर पक्षधर्मत्व प्रदर्शनके भी निग्रहस्थानवत्ताकी प्रसक्ति — और भी देखिये उपयोगी होनेपर भी अतिरिक्त वचनको निग्रहस्थान मानने वाले क्षणिकवादियोंके यहाँ अनुमानमें पक्षधर्मत्व दिखाना भी निग्रह स्थान बन जायगा। जैसे कि अनुमान प्रयोग किया कि समस्त पदार्थ क्षणिक हैं सत्त्व होनेसे तो इतने ही मात्र कथनसे शब्दमें सत्त्वकी प्रतीति हो जानेसे अब "शब्द भी सत है" इस प्रकार पक्षधर्मत्वका कहना व्यर्थ हो जाता है। तो हेतुका जो अंग पक्षधर्मत्व बताया है उसका भी प्रदर्शन नहीं किया जा सकता है सर्वथा वचन अतिरिक्त निग्रहस्थान माननेसे इसी प्रकार त्रिलक्षण वचनका समर्थन

भी असाधनाङ्ग वचन बन जाता है। हेतुको क्षणिकवादियोंने त्रिलक्षण माना है सो ठीक है। याने जिस अनुमानका हेतु पक्षधर्मत्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति इन तीन विशेषणोंसे युक्त है वह हेतु सही माना गया है। सो त्रिलक्षण हेतु है और त्रिलक्षण हेतुको कहना चाहिए इतना माननेके बाद भी त्रिलक्षण हेतु बोल देनेसे साध्यकी सिद्धि हो गई। जब त्रिलक्षण हेतु वचन बो देनेसे साध्यकी सिद्धि हो गई तब त्रिलक्षण वचनका समर्थन करना यह तो अतिरिक्त वचन हो जायगा और अतिरक्त वचन होनेसे असाधनाङ्ग वचन कहलाया और निग्रह स्थान बन गया और निग्रह स्थान बननेसे पराजय हो गया। यो त्रिलक्षण वचनका समर्थन करना भी अयुक्त हो जायगा। देखिये—पक्षधर्मत्व क्यों निग्रहस्थान है अतिरिक्त वचनकी हठ करने वालेके सिद्धान्तमें। क्योंकि "और शब्द सत् है" इस प्रकारका वचन कहे बिना भी हेतुके प्रयोग मात्रसे अनुमान प्रयोग कहनेसे ही शब्दमें सत्त्वकी प्रतीति हो गई। जिस बात का किसी भी शब्दसे ज्ञान हो जाता है उस बातको पुनः कहना वह अतिरिक्त वचन है और इस ही कारण यह निग्रह स्थान है। तो यो उपयोगी होनेपर भी अतिरिक्त वचनको असाधनाङ्ग वचन कहने वाले क्षणिकवादियोंके यहा पक्षधर्मत्वका समथन भी पराजयके लिए बन जायगा। अथवा प्रतिज्ञावचनकी तरह असाधनाङ्ग होनेपर भी यदि पक्षधमको निग्रह थान नही मानते, उसे शोभा और साधनाका साधक मानते हैं तो यो फिर प्रतिज्ञाका वचन आदिक भी निग्रहस्थान न बनेगा। प्रतिज्ञादि वचनको यदि असाधनाङ्ग कहते हो तो पक्षधर्मका दिखना भी असाधनाङ्ग वचन हो जायगा। तब पराजयके प्राप्त होनेसे पक्षधमत्व भी कहना अयुक्त बनगया।

सर्वथा अतिरिक्त वचनको असाधनाङ्ग वचन माननेपर त्रिलक्षण हेतुवचनके समर्थनकी निग्रहस्थानवत्ताकी प्रसिद्धि—निग्रहस्थानकी बात त्रिलक्षण वचनके समथनकी भी बन जाती है यदि अतिरिक्त वचनको सर्वथा असाधनाङ्ग मानते हैं। त्रिलक्षण हेतुको कहना यह तो युक्त मान लिया जायगा लेकिन उसका समथन किसलिये ? जब त्रिलक्षण हेतुके कहने मात्रसे साध्यकी सिद्धि हो गई तो देखिये त्रिलक्षण वचनके समर्थन करनेके बिना भी अब यहाँ हेतु साधनका अग बन गया। तो त्रिलक्षण वचनका समर्थन करना तो उपयोगी न रहा बल्कि प्रतिज्ञारूप वचनका कहना साधनका अग बन गया। कैसा भी अनुमान प्रयोग हो उसमे पक्ष और साध्य तो कहना ही पडता है। पक्षधमत्व हेतु सिद्ध करनेके लिए भी तो पक्षको कहना ही पडेगा। और साध्य जो सिद्ध करना है वह भी आवश्यक है और प्रतिज्ञा इस हीका नाम है। पक्ष, और साध्य दोनोके कहनेका नाम प्रतिज्ञा है। तो कही प्रतिज्ञा वचनके बिना भी अनुमान बन सकता है क्या ? प्रतिज्ञादि वचन भी साधनके अग सिद्ध हो जाते हैं। जो अपना इष्ट मतव्य सिद्ध करना है उसके अगको साधनाङ्ग कहते हैं। अन्यथा अर्थात् प्रतिज्ञादि वचनको साधनका अग न माननेपर त्रिलक्षण वचनका समर्थन भी प्रतिज्ञादि वचनकी तरह पराजयकी प्राप्तिका कारण हो जायगा।

इस कारण समर्थन और पक्षधर्मत्वका प्रदर्शन इनका निराकरण न पाये जाने प्रतिज्ञान्तर आदिकोंको यह मानना पड़ेगा कि चाहे प्रतिज्ञा आदिक स्ववचन भी हैं फिर भी उनके वचन पराजयाङ्ग वचन नहीं कहलाते हैं। और इस ही कारण प्रतिज्ञादिक वचन वादीके लिए निग्रहका अधिकरण नहीं बन सकता।

अप्रस्तुत नाटकादिघोषणकी अनिग्रहस्थानवत्ताकी शंका-समाधान— यह शंकाकार कहता है कि इस तरह तो कोई अप्रस्तुत जिसका भी कोई प्रकरण नहीं, ऐसा नाटक आदिककी घोषणा जिसमें कि १२ प्रकारसे प्रवर्तना चलती है उन घोषणाओंका भी निग्रहस्थानपना न बनेगा। अर्थात् जिसमें ५ इन्द्रियाँ और ५ इन्द्रियोंके विषय-भूत स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द और मानसिक ज्ञान और दर्शन आदिक ये बारह प्रकारके नाटक आदिकमें प्रदर्शित होते हैं। ऐसे नाटक आदिककी घोषणा अप्रस्तुत भी है, तो भी उसका निग्रहाधिकरण न बनेगा। उत्तरमें कहते हैं कि ऐसे ही सही। तथ्य यह है कि जैसे प्रतिज्ञा वचन आदिकके सम्बन्धमें कहा गया इसी तरह अन्य भी जो प्रस्तुतसे भिन्न हों, वादीने कहा था भी यदि प्रतिवादी अपने पक्षको सिद्ध नहीं कर पाता है तो प्रतिवादीकी विजय सम्भव नहीं है और इसी कारण वादीके प्रति निग्रह-स्थान कहना अयुक्त है। हाँ अपने पक्षको यदि सिद्ध कर लेता है प्रतिवादी तो अपने पक्षकी सिद्धिके कारण प्रतिवादीकी विजय कहलायेगी और वादीकी पराजय कहला-येगी, किन्तु अप्रस्तुत आदिक वचन कहना निग्रह स्थान न बनेगा। इसी प्रकार जो यह कहा है शंकाकारने अपने सिद्धान्तमें कि साधनाङ्गका वचन न बोलना यह भी वादी का निग्रह स्थान है अर्थात् साधन कहते हैं अपने इष्ट मंतव्यकी सिद्धिको। उस सिद्धिके अंगभूत जो प्रतिज्ञा आदिक हैं उनमेंसे यदि किसीका वचन न बोल सके तो वादीका निग्रह हो जायगा, ऐसा कहना भी निराकृत हो जाता है। अपने इष्ट मंतव्यका साधन करने वाले वचनोंको कहकर फिर विशेष बुद्धि न होनेसे, प्रतिभा न होनेसे यदि वह चुप रह जाता है तो उसे माना है शंकाकारने निग्रह स्थान, लेकिन यह कथन भी निराकृत हो जाता है। कारण यह है कि जय और पराजयकी व्यवस्था केवल अपने पक्षकी सिद्धि और असिद्धिपर निर्भर है, अन्य बातपर निर्भर नहीं है। किन्हीं अन्य कारणोंसे भी यदि जय और पराजयके निर्णयमें सहयोग मिलता है तो मूल कारण स्वपक्षसिद्धि असिद्धिका उसमें अवश्य होगा। जय होता है तो अपने पक्षकी सिद्धि है, फिर चाहे अन्य युक्तियोंसे जय सिद्ध करे। पराजय होता है तो अपने पक्षकी असिद्धि से, फिर चाहे किन्हीं अन्य बातोंसे भी पराजय बताये। इसी प्रकार यह भी कथन निराकृत हो जाता है कि प्रतिवादी यदि अदोषका उद्भावन करता है याने दोषको नहीं प्रकट कर सकता है तो निग्रह स्थान बनता है अर्थात् वादीने कोई निर्दोष साधन बोला और प्रतिवादी दोषको नहीं बता पाया तो वहाँ जय पराजयकी व्यवस्था बताना वह इतने मात्रसे न बनेगा। वह तो जो जय-पराजयका मूल कारण है उससे बनेगी।

अर्थकी विचारणा स्वपक्ष सिद्धि पर्यन्त है। तब यही सिद्ध हुआ ना कि जो विजिगीषु पुरुष है, अपने पक्षकी सिद्धि करके जयकी इच्छा रखने वाले पुरुष है उनका कर्तव्य यह है कि अपने पक्षका साधन करें और परपक्षका दूषण करें, तो किसी भी सिद्धान्तको शिक्षाके कहने वाले आचार्योंका भी यही कर्तव्य है कि वे अपने पक्षका साधन करें और विपक्षका अर्थात् अनिष्ट तत्त्वका दूषण दें।

साधर्म्य वैधर्म्य वचन द्वारा प्रकृत स्वपक्षसाधन व विपक्षबाधनके निर्देशकी उपयुक्तता— स्वपक्ष साधन व विपक्षदूषणकी कर्तव्यताकी नीतिके अनुसार ग्रन्थकार स्वामी समन्तभद्राचार्यने साधर्म्यवचन और वैधर्म्य वचन दोनोंका प्रयोग किया है। प्रथम तो साधर्म्य वचन कहकर अपने पक्षका साधन किया। जैसे कि इस कारिकासे पहिलेकी कारिकामें कहा है कि हे अरहंत ! वह तुम हो निर्दोष हो। क्योंकि युक्ति शास्त्रके अविरुद्ध तुम्हारा वचन है यो स्वपक्ष साधन करके फिर इस कारिकामें वैधर्म्य वचन द्वारा परपक्षका दूषण दिया है कि जो तुम्हारे अनेकान्त शासन रूपी अमृतसे बाह्य हैं एकान्तवादके आवेशमें हैं उनका इष्ट तत्त्व प्रत्यक्षसे ही बाधित हो जाता है। तो यों प्रथम साधर्म्य वचन कहकर यद्यपि वैधर्म्य वचनकी बात गम्यमान थी, अपने आप सिद्ध हो जाने वाली थी। फिर भी पुरुषोंके उपकारके लिए प्रवृत्ति करने वाले आचार्य साधर्म्य और वैधर्म्य दोनोंको भी कहें तो उसमें दोष नहीं आता। अब मानो प्रभुकी ओरसे यह प्रश्न हुआ कि सर्वथा एकान्तवादियोंका भी तो पुण्य पाप कर्म और परलोक सिद्ध होता है। सर्वथा एकान्तवादी भी अनेक पुण्य पापकर्म और पुण्यपाप कर्मका फल परलोक आदिक तो मानते हैं। अतएव उनमें भी आप्तपनेकी उपपत्ति होती है। फिर तो हमारा ही महत्त्व क्यों बताया जा रहा है? ऐसा मानो प्रभुकी ओरसे प्रश्न हुआ तो उसके समाधानमें आचार्य समन्तभद्र अब यह कारिका कह रहे हैं।

कुशलाकुशलं कर्म परलोकश्च न क्वचित्।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥ ८ ॥

एकान्तवादके आग्रहमें पुण्य पाप क्रिया परलोक आदिकी सिद्धिकी अनुपपत्ति— हे नाथ ! जो एकान्तवादके आग्रहसे व्यासक्त हैं ऐसे वादी एकान्ताग्रहके ही कारण अपने ही वैरी हैं और दूसरोंके भी वैरी हो रहे हैं। उन एकान्तके आग्रहियोंमें किसीके भी पुण्य पापकर्म और परलोककी सिद्धि नहीं होती। कर्म तीन प्रकारके होते हैं— शारीरिक क्रियाभूतकर्म वाचनिक क्रियाभूतकर्म और मानसिक क्रियाभूतकर्म। इसीको योग कहते हैं। और यह तीन प्रकारका योग काययोग वचनयोग, मनोयोग ये आश्रव कहलाते हैं। आश्रव उसे कहते हैं कि जिस योगसे कर्म आयें। याने कर्मोंके आनेके कारणको आश्रव कहते हैं वह आश्रव दो प्रकारका है—

एक कुशलाश्रव दूसरा अकुशलाश्रव। अर्थात् शुभ आश्रव और अशुभ आश्रव, सो यह सब व्यवस्था और परलोककी व्यवस्था एकान्तवादमें यथार्थरूपसे नहीं हो सकती। परलोक उसे कहते हैं कि मरण करके उत्पन्न होना एक भवको छोड़कर दूसरी गतिके प्राप्त करनेका नाम है प्रेत्यभाव उसे ही कहते हैं परलोक। और परलोकका कारण है धर्म अधर्म। सो धर्म अधर्मका भी नाम कारणमें कार्यका उपचार करनेसे परलोक रख दिया गया है। सो एकान्ताग्रह रखनेमें न तो शुभ अशुभ आस्रवकी सिद्धि है और न धर्म अधर्म परलोककी सिद्धि है। और न मोक्ष स्वर्ग आदिककी सिद्धि है। जो अनित्य एकान्त नित्य एकान्त आदिकके अभिप्रायके परवश हुए हैं उन पुरुषोंमें किसी भी प्रकारसे इन तत्वोंकी सिद्धि नहीं है।

एकान्तवादाग्रहियोंका स्ववैरित्व और परवैरित्व—एकान्ताग्रहके अनुरक्त पुरुष स्ववैरी भी हैं और परवैरी भी हैं। अपने आपके विरोधी तो यों है कि एकान्त वादके आग्रहमें उनके द्वारा स्वयं माने गए परलोक आदिक तत्वोंकी भी सिद्धि नहीं होती। जैसे तत्वोपप्लव मानने वाले पुरुष स्ववैरी हैं। जिनका यह सिद्धान्त है कि तत्व है ही नहीं कुछ। तो यह जगत तत्वशून्य है यह प्रमाणसे सिद्ध न हो सकेगा, क्योंकि प्रमाण भी तत्व नहीं माना। तो इस प्रकार शून्यवादी पुरुष अपने आपके स्वयं वैरी हैं। यों ही एकान्तवादी पुरुष जो कुछ परलोक आदिक कहते हैं उसको वे एकान्तवादके कारण सिद्धि नहीं कर सकते हैं। इस कारण वे स्वयंके वैरी हैं। अब यहां एकान्तवादाग्रही कोई कहे कि वे स्वयंके वैरी हैं यह बात भली प्रकार सिद्ध नहीं होती तो सुनो। एकान्तवादी पुरुष स्वयंके वैरी हैं। क्योंकि परवैरी होनेसे। एकान्तवादियोंके लिए यह सिद्धान्त है अनेकान्त। जो अनेकान्त शासनमें वैर रखते हैं वे अपने एकान्त वक्तव्यके भी विरोधी बनते हैं। इसका स्पष्टकरण सुनो! कौन तो स्व हैं और कौन पर है आप इसका विचार कीजिए। पुण्य पापकर्म, पुण्यपापकर्म का फल, सुख दुःख और शुभ अशुभके आश्रव और उस पुण्यपापसे सम्बन्ध है जिसका या धर्म अधर्मका कार्य कारण रूप है सम्बन्ध जिसका, ऐसे परलोक आदिक ये सब स्व कहलाते हैं। जो तत्व है, जिससे आत्माकी रक्षा होती हो, जिसके यथार्थ ज्ञान से आत्मा हेय उपादेयका त्याग और ग्रहण करके अपना लाभ पा सकता हो वे सब तत्व स्व हैं और उससे सम्बन्ध रखने वाले परलोक आदिक भी स्व हैं, क्योंकि इन सब बातोंको एकान्तवादियोंने स्वयं भी माना है। तो जो स्वयंको भी इष्ट हो वह स्वयंका स्व है और पर क्या है? अनेकान्त। क्योंकि एकान्तवादियोंको अनेकान्त अनिष्ट है। तो ऐसे इस अनेकान्त शासनके विरोधी होनेका नाम है परवैरी होना। तो वे परवैरी हैं क्योंकि उन्होंने अनेकान्त शासनका प्रतिषेध किया है। तो जो अनेकान्त शासनके विरोधी हैं ऐसे पुरुष अपने आपके शासनके भी वैरी हैं। यह बात सिद्ध होती है क्योंकि कर्मफल और उससे सम्बन्ध रखने वाला परलोकादिक जो एकान्तवादियोंको प्रायः इष्ट है वह सब इष्ट तत्व अनेकान्तका प्रतिषेध करनेसे बाधित हो जाता है।

अनेकान्त मतका भी समर्थन नहीं किया जा सकता है। जो अनेकान्तका निषेध करे वह कर्म परलोक आदिकको सिद्ध नहीं कर सकता इस कारण परवैरी होनेसे वे अपने आपके भी वैरी हैं यह बात सिद्ध होती है।

अनेकान्तके वादप्रतिषेधसे एकान्तवादोपकल्पित परलोकादिकी असिद्धि— शंकाकार कहते हैं कि शून्यवादियोंने और अद्वैतवादियोंने परलोक आदिकको माना ही नहीं है। तब यह कहना कैसे ठीक है कि समस्त एकान्तवादियोंको पुण्य पाप परलोक आदिक इष्ट हैं, क्योंकि शून्यवादियोंने तो कोई तत्त्व माना ही नहीं, यदि वे परलोक आदिक मान लेते हैं तो उनका शून्यवाद समाप्त हो जाता है, इसी प्रकार अद्वैतवादी भी पुण्य पाप प्रयोगादि मान लेते हैं तो वहाँ द्वैत आ जाता है, अतएव ये सब इनको अनिष्ट हैं। तो जब शून्यवादियोंको और अद्वैतवादियोंको पुण्य, पाप, कर्म परलोक आदि अनिष्ट हैं तो यह कहना युक्तिसंगत नहीं है कि एकान्तवादियोंको यह सब इष्ट है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि शून्यवादियोंने और अद्वैतवादियोंने भी किसी ढंग से प्राय करके परलोक आदिक माना है। माया कहकर माना, मिथ्यारूप कहकर माना, किसी भी रूपमें इन सबने परलोक आदिकको माना है और जब तुमने भी, क्षणिकवस्तु तत्त्ववादियोंसे भी अपने ढंगका परलोक आदिक माना है तब यह कहना संगत हो जाता है कि अनेकान्तका प्रतिषेध करनेसे एकान्तवादियोंके अपने माने हुए परलोक आदिक भी सिद्ध नहीं होते।

अनेकान्तस्वरूपके प्रतिषेधमें कर्म, परलोक आदिके प्रतिषेधकी अनिवार्यता— शंकाकार पूछते हैं कि अनेकान्तके प्रतिषेध करनेसे कर्म परलोक आदिक कैसे बाधित हो जाते हैं? समाधानमें कहते हैं कि इन शून्यवादियोंने और अद्वैतवादियोंने क्रम अथवा अक्रम दोनों ही प्रकारोंमें उस परलोकादिकका सिद्ध नहीं कर पाया है। शून्यवादमें क्रम अथवा अक्रमकी कल्पना ही कैसे होगी? अद्वैतवादमें यदि क्रमसे मानते हैं कुछ बात तो अद्वैत कैसे रहा? अक्रमसे मानते हैं तो सब कुछ एक साथ हो जानेकी आपत्ति है। सो चाहे नित्य एकान्त मानें चाहे अनित्य एकान्त मानें या शून्यवाद मानें, किसी भी एकान्तवादमें क्रम और अक्रमका निषेध है, क्योंकि क्रम और अक्रम वहीं ही समझा जा सकता है जहाँ अनेकान्तका आलम्बन हो। अनेकान्तसे ही क्रम और अक्रम व्याप्त है। और जब अनेकान्तका प्रतिषेध करते हैं एकान्तवादी तो क्रम और अक्रमका प्रतिषेध स्वयं सिद्ध हो जाता है। क्योंकि व्यापक यदि निवृत्त हो जाता है तो वहाँ व्याप्य भी नहीं ठहर सकता। व्यापक है अनेकान्त और व्याप्य है क्रम अक्रम। अनेकान्तका प्रतिषेध करनेसे क्रम अक्रम भी नहीं ठहरता। क्योंकि अर्थक्रियाके सम्बन्धमें जब यह पूछा जायगा कि बतलावो पदार्थोंमें कार्य क्रमसे होता है या एक साथ होता है? तब दोनों विकल्पोंमें समाधान नहीं। यदि क्रमसे होता है तब न नित्य एकान्त रह सका और न अनित्य एकान्त रह सका। यदि कहा जाय

कि एक साथ क्रिया होती है तो भूत भविष्यमें जितनी भी अर्थक्रियायें हो सकती हैं वे सबके सब एक साथ होने पड़ेंगी। तब भी व्यवस्था नहीं बनती। तो यों क्रम और अक्रमका निषेध हो जानेपर अर्थक्रिया भी निषिद्ध हो जाती है, क्योंकि अर्थक्रिया तो क्रम और अक्रमसे व्याप्त है कुछ भी क्रिया होती हो उसमें क्रम और अक्रमका निषेध करनेपर अर्थक्रिया न बन सकी और अर्थ क्रियाके न होनेसे पुण्य पाप या किसी भी प्रकारकी क्रिया बन नहीं सकती है क्योंकि कर्म अर्थक्रियासे व्याप्त है। कर्मका अर्थ यही है कोई परिणति होना, अर्थक्रिया होना। तो जहाँ अर्थक्रिया नहीं है वहाँ किसी भी प्रकारका कर्म नहीं हो सकता।

अनेकान्तवादके प्रतिषेधसे एकान्तवादकी सिद्धि करनेकी अशक्यता— और भी देखिये अनेकान्तके प्रतिषेध करनेसे क्षणिक आदिक एकान्तका भी पराजय होता है। अर्थात् जो लोग अनेकान्तको नहीं मानते वे अपने इष्ट क्षणिक आदिक एकान्तको भी सिद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि क्षणिक आदिक एकान्त अनेकान्तके अविनाभावी हैं किस तरह सो सुनो यह बतलावो कि कोई एकान्तवाद यदि है तो वह एकान्तवाद भी एकान्तवादके स्वरूपसे है। और, क्या वह अनेकान्तवादके स्वरूप से भी है? तब यहाँ तो कहना पड़ेगा कि एक [illegible] एकान्तवादके स्वरूपसे सत् है और अनेकान्तरूपसे असत् है। अब देखिये—इसमें अनेकान्तका प्रयोग आ गया अपने आप। कोई भी अपने मतव्यको सिद्ध करने चाहेगा तो उसे अस्ति और नास्तिका प्रयोग करना ही होगा कि इस मतव्यमें यह है अन्य मतव्यमें नहीं है। तो इस तरह एकान्तवादकी सिद्धिका प्रयोग अनेकान्तका अविनाभावी है। यदि उस एकान्तवादसे अनेकान्तके अविनाभावी रूपसे नहीं परखते हैं तो एकान्तवादकी अथवा अर्थक्रियाकी व्यवस्था नहीं बन सकती। यों यह सिद्ध हुआ कि जो शासन अनेकान्त शासनका विरोधी है वह अपने शासनका भी विरोधी है। क्योंकि अनेकान्तका विरोध करनेसे अपना इष्ट मंतव्य तत्वका भी समर्थन नहीं कर सकता और जब ये एकान्तवादी अनेकान्तके वैरी बन गए तब कर्मादिक भी हो न सकेंगे। क्योंकि कर्म क्रिया, परिणति, इनका आधार है अनेकान्त। और जब अनेकान्तके वैरी हो गए, अनेकान्त मानना ही नहीं चाहते तो कर्मकी परिणति की सिद्धि कैसे हो सकेगी?

अनेकान्त शासनके प्रतिषेधसे धर्म, जप, तप, आचरण आदिकी असिद्धि व व्यर्थता— अनेकान्तके न माननेपर कर्मादिक भी असाध्य ही रह जाते हैं और जब एकान्तवादमें अर्थक्रिया नहीं बन सकती है तब फिर जप, तप करना आदिक आचरण सब विफल हो जायेंगे क्योंकि जप, तप किए जाते हैं अपने कर्मोंके क्षयके लिए किन्तु जब परिणति ही सिद्ध नहीं हो रही तब जप तप आदिक आचरणोंका उपदेश निराधार हो गया। और इनके करने ही पर प्रतिष्ठा प्राप्त हो गया। इसका कारण यह है कि किसी भी एकान्तसे चाहे वह तत्वका एकान्त हो अथवा इसमें सबका एकान्त

हो, नित्य एकान्त हो, अनित्य एकान्त हो, किसी भी एकान्तमें कर्म आदिकका किसी भी अनुष्ठानसे किसी भी आचरणसे इस संसारी दशा मे आत्मामें प्रवृत्ति नहीं हो सकता। जैसे सर्वथा ही सत् मान लिया तब उसमे क्रियाकी उत्पत्तिका अवसर ही क्या ? उत्पत्ति तो होती ही है, जो न हो, उसकी। जहाँ सर्वथा ही सत् मान लिया वहाँ क्रिया काण्ड, अर्थ क्रियाकी उत्पत्तिका उपादान ही नही है और उपादानरहित कार्य कभी होता ही नही। जो लोग नित्य एकान्त मानते हैं वहाँ जब अपरिणामी है वह वस्तु तो परिणमनका, उत्पत्तिका अवसर ही क्या है ? जो सर्वथा अनित्य मानते हैं उनके भी कर्मकी सिद्ध नहीं होती अतएव एकान्तवादमे न अर्थक्रिया बनती है और न जप तप आदिक आचरणकी बात बनती है।

नित्यैकान्तमे परलोक व्रत तप आदिकी अनुपपत्ति व क्षणिकैकान्तमे परलोकादिकी सिद्धिका शंकाकार द्वारा कथन—अब यहाँ क्षणिकवादी योगाचार माध्यमिक जन शंका करते हैं कि यदि, पुण्य पाप नामके किसी भी कर्मका किसी अनुष्ठानसे किसी आत्मासे संसारी दशामें यदि उत्पत्ति नहीं होती तो मत हो। अनुष्ठान भी क्या ? शरीरादिकका कोई व्यापार किया गया वही तो अनुष्ठान है। ऐसे अनुष्ठानसे यदि किसी संसारी जीवमें पुण्य पाप कर्मकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। जैसे कि उक्त विवरणमें आक्षेप किया गया है तो उत्पत्ति मत हो, पुण्य और पाप मत बनो हमको कुछ अनिष्ट नही है क्योकि जो सर्वथा सत् है, अनादि अनन्त शाश्वत् सद्भूत है ऐसे सर्वथा सत्में पुण्य और पाप नामक कर्मका उत्पन्न होना घटित ही नही होता। और, इसी प्रकार कर्मका जो फल है—शुभ गति मिलना, अथवा अशुभ गति मिलना, ऐसा जो परलोक मिलनेका फल है वह कर्मफल भी मत होओ, क्योकि कर्मको भी जैनोंने नित्य माना है। कार्माण जातिका एक द्रव्य है, उस द्रव्यको शाश्वत माना है, द्रव्य तो न मिटेगा। तो यों सर्वथा सत् कर्म भी है, तो उसका भी फल मत बनो, क्योकि सर्वथा सत्मे उत्पत्ति सम्भव नही है। इसी प्रकार तत्त्वज्ञान या आचरण आदिक भी मत बनो। जो मोक्षके लिए तत्त्वज्ञानका प्रयत्न किया जाता है या तपस्याका आचरण किया जाता है वह भी नहीं बन सकता और मत बनो, क्योंकि यहा भी सर्वथा सत्त्वकी बात मानी गई है। नित्य आत्मा परलोकादिक तो क्षणिकवादमें माने ही नहीं गया है। ऐसा परलोक नहीं माना गया क्षणिकवादमे कि कुछ था पहिले और उसका ही कुछ रूप बन गया, किन्तु था कुछ नही, एकदम नया आत्मा बन गया, तो इस प्रकार असत्की तो कारणसे उत्पत्ति हो सकती है जो पहिले असत् है, पीछे उसका प्रादुर्भाव देखा जाता है, किन्तु जो सत् है पहिलेसे तब उसके प्रादुर्भावका अब ही क्या है ? अब, कर्म कर्मफल परलोक तत्त्वज्ञान ये कुछ नहीं बनते तो मत बनो, असत्रूप मान करके इसकी उत्पत्ति मानी जा सकती है। इस प्रकार यहा शंकाकार यह सिद्ध कर रहे हैं कि क्षणिक एकान्त माननेपर ही तत्त्वकी व्यवस्था बनती है अन्यथा याने नित्य सर्वथा सत् माननेपर यह सब कुछ भी नही बन सकता है।

उक्त शंकाके समाधानमें सर्वथा असत् एकान्त माननेपर कर्म परलोक आदिके जन्मकी असिद्धि व कल्पित मिथ्या प्रतिभासोंके अनुपरमके प्रसंगका प्रतिपादन शंकाकारका उक्त कथन युक्तिसंगत नहीं है कारण कि सर्वथा सत् माननेपर अथवा सर्वथा असत् माननेपर दोनों पक्षोंमें परलोक आदिककी उत्पत्तिका विरोध समानरूपसे सिद्ध होता है। अर्थात् सर्वथा सत् मानें तो वहाँ भी परलोक आदिककी उत्पत्ति नहीं बनती। और सर्वथा असत् मानें तो वहाँ भी परलोक आदिककी उत्पत्ति नहीं बनती। केवल सर्वात्मकरूपसे सबका सत्त्व माननेमें ही परलोक आदिक विरुद्ध होते हों सो बात नहीं, किन्तु सर्वथा अभाव माननेपर भी जैसे कि क्षणिकवादियोंने माना है कि असत्‌की उत्पत्ति होती है। तो यों सर्वथा अभाव माननेपर भी जन्म होना विरुद्ध रहेगा क्योंकि फिर तो जो मिथ्या प्रतिभास होते हैं उनका कभी उपरम (समाप्ति) ही न हो सकेगा। यदि सर्वथा सत् मानते हैं और फिर मिथ्या प्रतिभास माने तो उनका विराम कब होगा। इसी प्रकार सर्वथा असत् माननेपर भी परलोक (मिथ्या) प्रतिभास माननेसे उनका विराम फिर कब होगा? शंकाकार कहते हैं कि देखिये शून्यवादी माध्यमिकके सिद्धान्तमें स्वप्न दृश्यकी तरह जागृत दशामें भी जो मिथ्या प्रतिभास कर्मादिकके हो रहे हैं—पुण्यकर्म, पापकर्मादिक किए जानेके जो मिथ्या प्रतिभास होते हैं उनके यहाँ मिथ्या प्रतिभासोंके अनुपरमका प्रसंग कैसे होगा? जैसे स्वप्नदशामें मिथ्या प्रतिभास देखा जाता है। कुछ है ही नहीं और जगत, सिंह, पर्वत आदिक सब स्वप्नमें दिखा करते हैं। तो देखिये—वे मिथ्या प्रतिभास सदा तो नहीं रहते, वे तो मिट ही जाते। स्वप्नमें भी मिट जाते और जगनेपर तो मिट ही जाते हैं। तो मिथ्या प्रतिभासोंमें मिट जानेका माद्दा है तो यों ही जागृत दशामें जो असत मिथ्या प्रतिभास हो रहे हैं वे भी मिट जायेंगे। तो अब मिथ्या प्रतिभासरूप कर्मादिकका अनुपरम प्रसंग न आयगा याने ये मिथ्याप्रतिभास न मिटेंगे ऐसी नौबत न आ वेगी इस ही कारण कल्पनासे कर्मादिककी उत्पत्ति मानना अविरुद्ध नहीं होगा। याने ये कर्मादिक परलोकादिक वस्तुतः नहीं है कि पहिले रहा हो कोई और फिर उसका परलोक हुआ हो। किन्तु कल्पनासे ही यह सब उत्पत्ति मानी जाती है इसमें कोई विरोध नहीं आता। उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि यह बात युक्तिसंगत नहीं है। इस कथनमें जो उदाहरण दिया है वह उदाहरण साध्यसम ही असिद्ध है। जैसे कि स्वप्नदशामें मिथ्या प्रतिभास अहेतुक होनेके कारण कभी उपरम उनका हो जाय यह नहीं होगा, ऐसा प्रसंग आ जाता है। इसी प्रकार शून्यवादियोंके यहाँ भी जो मिथ्या प्रतिभास हुए हैं स्वप्नमें हुए हों या जागृत दशामें हुए हों वे भी अहेतुक हैं, इस कारण उनका भी अनुपरम याने बना रहना ही रहेगा ऐसा प्रसंग आता है। शंकाकारने जागृत दशामें, पुण्य पाप आदिक क्रियाओंके मिथ्या प्रतिभास स्वप्नकी तरह होनेकी बात बतायी है और उसमें उदाहरण दिया है स्वप्नका सो यह भी सिद्ध करनी कि स्वप्नदशामें जो मिथ्या प्रतिभास

होते हैं उनका उपरम भी हो सकता है। अहेतुक होनेसे स्वप्नदशामें भी जो मिथ्या प्रतिभास होते हैं, उनका भी उपरम नहीं हो सकता। और, यदि सहेतुक मान लेते तब तो कार्य कारणभाव मानना और उपादान निमित्त मानना ये सब सिद्धान्त ही न ठहरेगा। तो स्वप्नदशामें भी जो झूठ बातें ज्ञानमें आती हैं वे भी अहेतुक होनेसे कभी मिटना न चाहिए, यह प्रसग आता है। तो शकामें जो उदाहरण दिया गया है वह उदाहरण साध्यसम असिद्ध है। अहेतुक ही स्वप्नदशाके मिथ्या प्रतिभास है और अहेतुक ही जागृत दशाके मिथ्या प्रतिभास हैं तो अहेतुकपनेकी अविशेषता होने स्वप्न अवस्थामे भी मिथ्या प्रतिभासका अनुपरम होनेका प्रसग आ रहा है।

शून्यवादमे मिथ्या प्रतिभासोको अविद्याहेतुक मानकर स्वेष्टसिद्धिका अविकल प्रयास करनेका प्रतिपादन—शङ्काकार कहते हैं कि जो मिथ्या प्रतिभास है वह अहेतुक नहीं है। अविद्याकी वासनाके कारण वे हुए, तो अविद्या वासनाके कारणसे मिथ्या प्रतिभासकी उत्पत्ति होनेके कारण मिथ्या प्रतिभासको अहेतुक न कहा जायगा। इसके उत्तरमे कहते हैं कि अनादिकालीन जो अविद्या वासना है, जिसके कारणसे पहिले मिथ्या प्रतिभासोंकी उत्पत्ति कहकर उन प्रतिभासोको अहेतुक सिद्ध करना चाहते हो वह अविद्या वासना सद्भूत है या असद्भूत है पहिले यह तो बताओ अनादि कालीन अविद्या वासना जब असत्‌रूप है तो वह मिथ्या प्रतिभासोका कारण नहीं बन सकता। कारण कि जो सत् है, जिसकी सत्ता ही नही है वह किसी भी कार्य का कारण नहीं हो सकता। जैसे आकाशका पुष्प असत् है तो वह किसी भी कार्यका कारण नही हो सकता। यदि कहो कि अनादि अविद्या वासना सत्‌रूप है तो जब उस अविद्या वासनाको सत्‌रूप मान लिया तो सर्वथा शून्यवाद अब तो न रहा। अविद्या वासना तो सत् बन गया। शकाकार कहते हैं कि अविद्या वासना कल्पनासे सत् स्वरूप है इस कारणसे शून्यवादका अवतार बराबर सही रहता है क्योंकि अविद्या वासना परमार्थत सत् नहीं है, अतएव शून्यवाद ही रहा। अविद्या वासना तो कल्पनासे सत् है। तो इसके उत्तरमें कहते हैं कि यदि अनादि कालीन अविद्या वासना कल्पनासे ही सत् है, परमार्थसे सत् नहीं है तो जो वास्तवमें है ही नहीं, परमार्थसे असत् ही है वह अविद्या कैसे मिथ्या प्रतिभासका कारण हो सकता है ? क्योंकि जो स्वरूपसे सत् हो वह ही कोई मिथ्या प्रतिभास को उत्पन्न करता हुआ देखा गया है। याने जो सत्य प्रतिभास हैं उनको भी कोई सत् ही उत्पन्न कर सकता है, और जो मिथ्या प्रतिभास हैं उनको भी कोई स्वरूपसे सहित ही उत्पन्न कर सकता है। जैसे कि नेत्रमें तिमिरादिक रोग हुए तो मिथ्या प्रतिभास होने लगता है। जैसे एक चन्द्रके दो दिखने लगे या वस्तु पीली दिखने लगी आदिक कुछ भी मिथ्या प्रतिभास हो तो वह तभी तो है जब कि नेत्रमें तिमिर आदिक रोग हो रहे हैं। याने सत्‌रूप ही तिमिरादिक मिथ्या प्रतिभासोको उत्पन्न करता है इस ही प्रकार सद्‌रूप ही कोई वस्तु मिथ्या प्रतिभासोंको उत्पन्न कर सकती है। असती अविद्या मिथ्या प्रतिभासोंको उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं

हो सकती। क्या असत् खरविषाण किसी मिथ्या प्रतिभासको उत्पन्न कर सकता है ? तो जो असत् है वह मिथ्या प्रतिभासोंको उत्पन्न नहीं सकता। अविद्या मान ली गई है परमार्थसे असत् तो उसके कारणसे मिथ्या प्रतिभास नहीं हो सकता। और जब मिथ्या प्रतिभासोंका कोई कारण न बन सका तो सर्वशून्यवादियोंके यहाँ मिथ्या प्रतिभासोंके अनुपरम रहनेका प्रसग आता ही है। उसका अनुमान प्रयोग बना लीजिए। सर्वशून्यवादियोंके यहाँ मिथ्या प्रतिभासोंका उपरम नहीं हो सकता, क्योंकि मिथ्या प्रतिभास अहेतुक है।

नित्यैकान्त, शून्यैकान्त, ज्ञानक्षणैकान्त, ज्ञानार्थक्षणैकान्तादि एकान्तवादोंमे कर्म, परलोक अर्थक्रियाकी अनुपपत्ति—उक्त वर्णनोंसे यह सिद्ध होता है कि सर्वथा अभाव एकान्तमें अर्थात् शून्य एकान्तवादमें किसी भी कारणसे, किसी भी समय कहीं भी उत्पत्ति सम्भव नहीं हो सकती, क्योंकि वहाँ अनेकान्तका प्रतिषेध किया गया है। वस्तु है सद्सदात्मक अर्थात् द्रव्यदृष्टिसे सत्रूप है पर्यायदृष्टिमे अन्य पर्यायोंकी अपेक्षा असत्रूप अनेकान्तका प्रतिषेध किया है सर्वथा शून्यवादियोंने अतएव वहाँ भी परलोकादिककी उत्पत्ति सम्भव नहीं होती। जो सर्वथा सत् मानते हैं तो वहाँ उत्पत्ति कैसे बने, क्योंकि उत्पत्ति यदि मान ली जाती है तो सर्वथा सत् नहीं ठहरता। वह पहिले कुछ था अब और कुछ बन गया। और बने तो सवरूपसे सत् तो न रहा। इसी तरह जो लोग सर्वथा असत् क्षणिक मानते हैं उनके यहाँ भी कार्य नहीं बन सकता क्योंकि कार्यके लिये उपादान चाहिए। उपादानरहित कोई भी कार्य नहीं देखे गए। घड़ा भी बना तो उसका उपादान मिट्टी तो है ही। सो यदि उपादान मान लिया जाता तो सर्वथा असत् तो न ठहरता फिर और यों केवल शून्यवादमें ही कार्यके जन्म न हो सकनेका दोष नहीं है, किन्तु जो लोग निरन्वय ज्ञान मानते हैं अर्थात् केवल अतस्तत्त्वका, ज्ञान क्षणका ही सिद्धान्त मानते हैं उनके यहाँ भी कार्यजन्मकी सिद्धि न होगी और जो लोग ज्ञानक्षण और अर्थक्षण अर्थात् अतस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व दोनोंको ही निरन्वय सत् मानते हैं तो उनके सिद्धान्तमें भी कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि तीनोंके यहाँ भी याने शून्यवादी, ज्ञान तत्त्ववादी और ज्ञान तथा बाह्य अर्थके सिद्धान्त वाले इन तीनोंके यहाँ भी कार्यकी उत्पत्ति नहीं बन सकती परलोकादिक सिद्ध नहीं हो सकते। क्योंकि अहेतुकपना सबमें घटित हो रहा है। और, जहाँ अहेतुकता है वहाँ जन्म बनता नहीं। यदि अहेतुक होनेपर भी जन्म मान लिया जाय तो फिर उसके कार्यका कभी उपरम (खातमा) नहीं हो सकता है।

पूर्वक्षणसे उत्तरक्षणकी उत्पत्ति मानकर कार्यको सहेतुक सिद्ध करनेका शंकाकारका विफल प्रयास— अब शंकाकार कहते हैं कि अन्तस्तत्त्वका सिद्धान्त माननेवाले योगाचारके यहाँ तो यह बताया है कि पूर्व विज्ञानसे उत्तर विज्ञानकी उत्पत्ति होती है और जो लोग अन्तस्तत्त्व और बहिस्तत्त्व दोनोंको मानते

हैं याने ज्ञानक्षण और अर्थक्षण दोनोंको मानने वाले सौत्रान्तिक हैं उन क्षणिकवादियों के यहाँ माना गया है कि पूर्व अर्थक्षणसे उत्तर अर्थक्षणकी उत्पत्ति होती है और पूर्वज्ञानक्षणसे उत्तर ज्ञानक्षणकी उत्पत्ति होती है। उसकारण इन दोनों क्षणिक-वादियोंके यहाँ कार्यनिष्कारण कैसे कहा जासकता है? देखो! जो लोग क्षणिक ज्ञानमात्र ही सत्य मानते हैं उनके यहा तो उस ज्ञानमे पहिले जो ज्ञान हुआ था उसमे उत्तर ज्ञानक्षणकी उत्पत्ति हुई है और तो अचेतन पदार्थक्षणकी भी उत्पत्ति मानते हैं जैसे नील तो नील अब जो उत्पन्न हुआ है उससे पहिले जो नील था उससे उत्पत्ति हुई है। यों पूर्वक्षणद्वयसे उत्तरक्षणकी उत्पत्ति मानते हैं फिर योगाचार और सौत्रान्तिकोंके यहाँ क्षणसे कार्यको निष्कारण कैसे कहा जा सकता है? इस शकाके उत्तरमें कहते हैं कि जो लोग पूर्वक्षणसे याने पूर्वक्षणद्वयसे उत्तर क्षणकी उत्पत्ति मानते हैं यह बतायें कि पूर्वक्षणरूप कारण क्या कार्यके सम्बन्धको पाये बिना ही कार्य कर देता है या कार्यके सम्बन्धको पा करके कार्य किया करता है? जैसे तीसरे मिनटका कारण चौथे मिनटके कार्यको उत्पन्न करता है ऐसा जो मान रहे हैं सो वे यह बतायें कि तीसरे मिनटका कारण चौथे मिनटके कार्यको पाकर चौथा मिनट पाकर करता है या चौथा मिनट पाये बिना कर डालता है? इन विकल्पोंमेंसे यदि यह कहा जाय कि कार्यके समयको प्राप्त नहीं करता पूर्वक्षण और वह कारण कार्यको कर देता है तो यह बात बिल्कुल प्रसिद्ध है। कार्यके समयको प्राप्त न करने वाले पदार्थमे कारणपना नहीं बन सकता है। जो पदार्थ कार्यके समय रह ही नहीं सकता वह कार्यका कारण कैसे बन सकेगा, अन्यथा चिरकालके अतीत पदार्थ भी किसीका कारण बन जाय। जैसे १० मिनट पहिलेका पदार्थ १० मिनट बादके कार्यका कारण तो नहीं होता। क्यों नहीं होता कि कार्यके समयमें वह कारण ही नही है। तो यों ही तीसरे मिनटमें रहनेवाला कारण जब चौथे मिनटमें रहता ही नहीं तो चौथे मिनटके कार्यको कैसे कर सकेगा? यदि दूसरा विकल्प मानते हो कि कार्यके समयमें प्राप्त हुए कारणमें भी कारणपना देखा जाता है सो बात बिल्कुल गलत है। कार्यके समयमें जो जो पदार्थ ज्योंका त्यों उपस्थित है तो वह कारण ही नही बन सकता। जैसे बछडेके शिरमें दो सींग उत्पन्न होते हैं दाहिना और बायाँ, तो वे दोनों एक साथ हैं ना, तो समान समयमें रहने वाले उन दो सींगोंमें क्या यह निर्णय है कि दाहिने सींगकी उत्पत्ति होनेमे बायाँ सींग कारण है या बायें सींगकी उत्पत्ति होनेमें दाहिना सींग कारण है? तो जो एक समय में उपस्थित हो उनमें कार्य कारणपना कैसे बनेगा? अन्यथा अर्थात् कार्यकालमें पाये हुए पदार्थोंको बिना नियमके कारण बना दीजिए कार्यके समयमें रहने मात्रसे याने उसमें कारणपना मान लिया जाय तो समान समयमें रहने वाले विश्वमे जितने भी पदार्थ हैं वे सब कार्यमें कारण बन बैठेंगे? अत पूर्वक्षण उत्तरक्षणके कार्यका कारण है, यह बात सिद्ध नहीं होती।

यद्भावाभाव होनेपर यद्भावाभाव वाले कार्यमे कारणपनेके नियमकी

क्षणिकवादमें असिद्धि—अब शंकाकार कहते हैं कि बात यह है कि जिसके होनेपर कार्य हो और जिसके न होनेपर कार्य न हो, वही तो कारण बन सकता है। कार्यके समय सारे विश्वके पदार्थ हैं, फिर भी सब कारण न बनेंगे। कार्यके साथ जिसका अन्वयव्यतिरेक है वह ही कारण बन सकता है। इस कल्पनापर समाधान करते हैं कि देखिये! जिसको कारणरूपसे माना है क्षणिकवादियोंने अर्थात् पूर्वक्षण, सो पूर्वक्षणके होनेपर उत्तरक्षणरूप कार्य तो हुआ नहीं और उत्तर क्षणरूप कार्य स्वयं ही पूर्वक्षणरूप कारणके बिना हो गया तो इससे यह सिद्ध कि पूर्वक्षणका उत्तरक्षण कार्य नहीं है। उत्तर क्षणरूप कार्य में पूर्वक्षणका कारणपना सिद्ध नहीं होता। जैसे कि अन्य कार्य। अन्य कार्योंका पूर्वक्षण कारण तो नहीं है। क्योंकि उसके होनेपर अन्य कार्य हो नहीं रहे। और उस पूर्वक्षणके न होनेपर विश्वके सारे अन्य कार्य स्वयं हो रहे सो इस कारणसे जैसे अन्य कार्यों का कारण पूर्वक्षण नहीं है उस ही प्रकार किसी उत्तरक्षणका भी पूर्वक्षण कारण नहीं है क्योंकि अब पूर्वक्षणके अभावमें भी उत्तरक्षणकी उत्पत्ति होगयी अथवा उत्तरक्षणरूप कार्य में पूर्वक्षणका कार्य नहीं सिद्ध होता है क्योंकि पूर्वक्षणके न होनेपर भी वह उत्तरक्षणरूप कार्य बन गया। अर्थात् पूर्वक्षणके रहते सते तो उत्तरक्षण वाला कार्य हुआ नहीं, और, पूर्वक्षणवर्ती कारणके न रहनेपर अब उत्तरक्षणवर्ति कार्य होगया। इससे सिद्ध है कि पूर्वक्षण और उत्तरक्षणमें कारण कार्यपना नहीं है।

पूर्वक्षणके क्षयके अनन्तर कार्योत्पत्तिका नियम माननेकी असिद्धि—अब शंकाकार कहते हैं कि देखिये पूर्वक्षणके अनन्तर कार्य ही तो सम्भव होता है। पूर्व समयमें जो पदार्थ था अब उत्तर समयमें जो कुछ होगा वह उसका कार्य ही तो होगा, इसके समाधानमें कहते हैं कि यह बात यों सगत नहीं कि यह नियम यदि बताया जाय कि पूर्वक्षणके अनन्तर कार्य होता ही है तो फिर अन्य समयमें वह कार्य क्यों नहीं होता? जैसे कि तीसरे मिनटका पदार्थ चौथे मिनटके कार्यका कारण बनता है तो अर्थ तो यही हुआ ना कि जब तीसरे मिनटका पदार्थ न रहा तब चौथे मिनटका कार्य बना। तो ५वें ६वें आदिक मिनटमें भी वह तीसरे मिनट वाला कारणभूत पदार्थ नहीं है। तो अब ये सारे कार्य भी उस तीसरे मिनटके कार्य क्यों नहीं कहलाते हैं? क्योंकि पूर्वक्षणका अभाव तो भविष्यमें अब सदा ही बना हुआ है। तो भविष्यके सारे पदार्थ फिर कार्य कहलाने लगेंगे। अतः यह युक्ति भी ठीक नहीं है कि पूर्वक्षणके अनन्तर ही कार्य निरन्तर होता है। अब शंकाकार कहता है कि कुछ कार्य ऐसे भी होते हैं कि कालान्तरमें भी हो जाया करते हैं। जैसे चूहेका विष या पागल कुत्तेका विष, इनका असर बहुत समय बाद होता है। पागल कुत्तेने काट दिया हो किसीको तो उसके विषका असर ८-१० सालके बाद भी हो जाता है। इसी प्रकार चूहेके विषका भी तुरन्त असर नहीं होता। किन्तु कुछ महीने बाद उसके विषका विकार होता है। तो देखिये कि कारणके क्षयके महीनों वर्षों बाद भी उसका कार्य

देखा जाता है। सो यों आक्षेप करना कि पूर्वक्षणका क्षय यदि उत्तर क्षणके कार्यका कारण है तो अन्य कालमें कार्य क्यों नहीं बन जाता यह कहना आक्षेप देना ठीक नहीं है। बन भी जाते हैं कितने ही कार्य बहुत बहुत समयके बाद। और, भी देखिये हाथकी रेखायें तो आज नजर आ रही है और वे रेखायें बताती हैं कि यह पुरुष १० ५ वर्ष बाद राजा होगा। तो बहुत भविष्यके राजपदका कारण बहुत भविष्यके काम का भी कारण बन जाता है। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि अब देख लो बात यहाँ यह आ गई कि समर्थ कारणके होनेपर कार्य नहीं हुआ और फिर कालान्तरमें वह कार्य हुआ और, इस तरह कार्यकी उत्पत्ति मान रहे हो तो फिर नित्य पदार्थमें अर्थक्रिया बन सके इसके विरोधकी बात नहीं रहती है।

सर्वथा नित्यवाद और सर्वथा क्षणिकवाद दोनोंमे अर्थक्रियाकी असिद्धि—नित्यमें तो अर्थपना होनेसे अर्थात् सदा सत्त्व होनेसे कार्यकी उत्पत्ति घटित नहीं होती है। क्योंकि नित्यमें क्रियाका विरोध है, नित्य है तो क्रिया और परिणति कैसे सम्भव होती ? यह बात कहते हो तो क्षणिकसिद्धान्तमें भी असत्त्वके कारण अर्थक्रिया नहीं बन सकती। जब कुछ है ही नहीं, तो अर्थक्रिया कहाँसे बन सकेगी ? कार्यके प्रति तो सत्त्व भी अकारण है और असत्त्व भी अकारण है। सदा सत् रहे उससे जैसे कार्य नहीं मानते। इस ही प्रकार कुछ भी नहीं है और एकदम कुछ कार्य बन जाय यह भी बात नहीं बन सकती है। इस कारण पूर्वक्षणसे उत्तरक्षणकी उत्पत्ति होती है। यह कहना भी अयुक्त है। जब अपनी सत्ताके सम्बन्धसे पहिले व पीछे याने पूर्वक्षणवर्ती जो कारणभूत पदार्थ है उसकी सत्तासे पहिले या पीछे जब कारण रहा ही नहीं तो अपने ही कालमें नियतरूपसे होने वाली अर्थक्रिया उत्पन्न हो जाय और सदा रहने वाले कार्यमें अर्थक्रिया न हो यह नियम नहीं बन सकता है। जब नित्यमें अर्थ क्रियाका विरोध करते हो तो अनित्य माननेपर असत् माननेपर भी अर्थक्रिया नहीं बन सकती।

कारणसामर्थ्यापेक्षता आदि विशेषणोसे भी सर्वथा नित्यपक्षकी भांति सर्वथा क्षणिकपक्षमे भी स्वकालनियत अर्थक्रियाकी उपपत्तिकी सिद्धिका अभाव—क्षणिकवादी यहाँ कह रहे हैं कि कारणके सामर्थ्यकी अपेक्षा करने वाले फलमें कालका नियम बन जायगा अर्थात् अर्थक्रिया अपने वर्तमान कालमें नियत उत्पन्न हो जायगी अत पदार्थोंको सर्वथा क्षणिक माननेपर भी अर्थ क्रियाका विरोध नहीं होता। इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि ऐसा समाधान तो नित्य एकान्तवादमें भी दिया जा सकता है। जैसे कि क्षणिकवादियोंके मनमें क्षणिक कारण ऐसे कार्यको उत्पन्न कर देता है कि जो जिस समय जिस जगह जिस ढंगसे उत्पन्न होने वाला कार्य है उसको उस समय उस जगह उस ढंगसे कारण उत्पन्न कर देता है। कारणमें इस ही प्रकारका सामर्थ्य पड़ा हुआ है, सो कारण सामर्थ्यकी अपेक्षा करने वाले कार्यमें

स्वकालका नियम सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार क्षणिकवादी जैसे कालका नियम अपने सिद्धान्तमे मानता है इस ही प्रकार नित्य होता हुआ भी कारण जो जिस समय जिस जगह जिस प्रकार फल उत्पन्न होने वाला है उसको उस जगह उस ढगसे वह नित्य कारण उत्पन्न कर देता है क्योंकि उस नित्य कारणके सामर्थ्यकी अपेक्षा करने वाले फलमें कालका नियम बन जाता है। ऐसी कल्पना यहाँ क्या कही नही जा सकती। सो कारण सामर्थ्यकी अपेक्षा बताकर कार्यमें काल नियमकी कल्पना करना क्षणिकवादमे युक्तिसगत नही है। शकाकार कहते है कि जहाँ वस्तु नित्य मानी जारही है वहाँ उस प्रत्येक कार्यके प्रति उस नित्य वस्तुमें सामर्थ्यका भेद मानना पड़ेगा। और सामर्थ्यका भेद होनेसे वह वस्तु नित्य न रहेगी। अनित्य बन जायगी। अतएव नित्यपक्षमें अर्थक्रिया उत्पन्न नहीं हो सकती। इस शकाके समाधानमे कहते है कि इस तरह तो क्षणिकपक्षमें भी एक कारण एक साथ अनेक कार्योंको करने वाला होता है ना। तो प्रत्येक कार्यके प्रति सामर्थ्य भेद कारणमे आ जानेका प्रसग आ जायगा। क्षणिकवर्ती एक कारणमे कारण स्वभावका भेद न मानने वाले क्षणिकवादियोके यहाँ या स्वभावकार अभेद बना रहे ऐसे नाना कार्योंकी उत्पत्ति मान ली जाय तो इस तरह कूटस्थ नित्यमें भी एक ही कारण होनेपर और अभिन्न शाश्वतिक होनेपर भी नाना कार्योंकी उत्पत्ति क्रमसे क्यों न मान ली जायगी ? जैसे कि क्षणिकवादमें कारण तो एक है और वह क्षणिक है—अनेक कार्योंकी उत्पत्ति हुई है। तो अनेक कार्योंकी उत्पत्ति होनेपर भी उस कारणमे स्वभाव भेद नही माना जा रहा। तो अभेद स्वभावी एक कारणसे जैसे नाना कार्य उत्पन्न हो गए क्षणिकपक्षमे इसी तरह नित्यपक्षमे भी अभेद स्वभावी अर्थात् त्रिकाल अभेद स्वभाव रखने वाले एक कारणसे क्रमसे अनेक कार्योंकी उत्पत्ति क्यो न हो जायगी। क्योकि नित्य भी उस ही प्रकार एक स्वभाव वाला बन जायगा। जैसे कि क्षणिक पक्षमें क्षणवर्ती एक कारणको एक स्वभाव वाला मान लिया गया है।

सर्वथा नित्यपक्षकी भांति सर्वथा क्षणिकपक्षमे भी उत्पत्तिके नामकी असगतता— अब यहाँ क्षणिकवादी शका करते है कि हे स्याद्वादी जनो ! नित्यपक्षकी उत्पत्तिका ही तो नाम कैसे बन सकता है ? उत्तरमें कहते हैं कि इसी प्रकार प्रश्न क्षणिकपक्षमें भी उठाया जा सकता है, क्योंकि सर्वथा सत् अथवा सर्वथा असत् इन दोनो पक्षोमें अर्थक्रिया याने उत्पत्तिका नाम नहीं बन सकता है। सर्वथा सत् अर्थात् नित्य पदार्थमे उत्पत्तिका नाम तो यो नही बनता कि वह तो अनादि अनन्त सत् ही है, जैसे कि आत्मा अनादि अनन्त सत् है तो उसकी उत्पत्तिकी बात तो नही बनती। और सर्वथा असत् पक्षमे अर्थात् क्षणिकपक्षमे कि कुछ न था और सत् बन गया ऐसे सर्वथा असत् पक्षमें भी उत्पत्तिका नाम नही बनता। जैसे आकाश फूल असत् है तो उसकी उत्पत्तिका नाम कैसे बन सकता है। अत. नित्य कैसे उत्पन्न होगा सर्वथा सत् होनेसे नित्यपक्षकी तरह, याने आत्माकी तरह। यह प्रश्न तो उठा दिया जाय और

यह प्रश्न न उत्पन्न हो कि क्षणिक भी कैसे उत्पन्न हो सकता है, सर्वथा असत् होनेसे, आकाश पुष्पकी तरह, यह तो केवल पक्षपात मात्र है सर्वथा नित्य पक्षमें भी उत्पत्ति का नाम नहीं बन सकता और सर्वथा क्षणिक पक्षमें भी उत्पत्तिका नाम नहीं बन सकता जो नित्य है उसमें सुख दुःख आदिक अनेक गुणान्तरोंको स्वीकार करना क्रम से प्राप्त करने वाले उन सुख दुःखादिको परिणमने वालेके किस तरह विरोध हो जायगा। अर्थात् विरुद्ध नहीं हो सकता। सत् है, नित्य है लेकिन वह क्रम क्रमसे सुख दुःखादिक अनेक गुणोंका वह प्राप्त कर रहा है। फिर उसमें उत्पत्तिका, अर्थक्रियाका क्या विरोध है। पर्यायकी ही तो उत्पत्ति बतायी जा रही है।

नित्य पदार्थ मे अर्थक्रिया माननेपर एकत्वके विरोधका शकाकार द्वारा विवरण – शंकाकार कहते हैं कि देखिये परिणमनहार उस नित्यमें एकत्वका विरोध आ जाता है। वह नित्य यदि उन गुणान्तरोंको ग्रहण कर रहा है तो अब वह एक कैसे रह सकेगा? वह नित्य आत्मादि पदार्थ गुणान्तरोंके ग्रहणको जैसे एक ज्ञानसे अन्य ज्ञानके सद्भावका करना या सुख दुःखादिकका ग्रहण करना इन सब गुणान्तरोंके ग्रहणको यदि क्रमसे अनुभवता है तो यह बताओ कि वह नित्य आत्मादिक पदार्थ गुणान्तरोंके आधानको क्या एक स्वभावसे अनुभवता है या अनेक स्वभावसे अनुभवता है? यहाँ यह प्रश्न किया जा रहा है कि नित्य पदार्थ यदि अनेक गुणोंको ग्रहण कर रहा है तो वह क्रमसे ग्रहण कर रहा है या अक्रमसे ग्रहण कर रहा? क्रमसे ग्रहण कर रहा, ऐसा पक्ष स्वीकार करनेपर दो विकल्प किए जा रहे हैं कि वे नित्य आत्मादि पदार्थ गुणान्तरोंको क्रमशः जो अनुभव रहे है सो क्या एक स्वभावसे अनुभव रहे हैं या अनेक स्वभावसे? यदि कहो कि वे नित्य आत्मादिक पदार्थ ज्ञानान्तर, सुख, दुःख आदिक अनेक गुणोंको एक स्वभावसे अनुभवते हैं तब तो उन आत्मादिक नित्य पदार्थोंको एक स्वभाव माननेकी आपत्ति आ जायगी। तब फिर अनेक गुण तो न रहेंगे। और एक स्वभावसे अनुभवनेपर एक स्वभावताकी बात होनेसे फिर नित्य पदार्थ निर्हेतुक बन जायेंगे अर्थात् वे किसीके भी कारण नहीं होंगे। फिर गुणान्तरोंके अनुभव करनेका नियम नहीं बन सकता है। एक स्वभावसे गुणान्तर यदि उत्पन्न हो गए तब तो न ज्ञान, सुख दुःखादिक अनेक न रहेंगे, क्योंकि अनुभवन ग्रहण परिणमन तो एक स्वभावसे हो रहा है। यदि कहो कि अनेक स्वभावसे उसका अनुभव होता है तब नित्य पदार्थमें उस आत्मामें एक स्वभावता कैसे रहेगी। अनेक स्वभावोंका उस नित्य पदार्थमें भेद होनेसे उस नित्यका एकरूप मान लेनेकी बात कहो तो इसका अनेक स्वभाव हो कैसे रहेगा? यदि कहो कि अनेक स्वभावका उस नित्य पदार्थमें सम्बन्ध है तो उस सम्बन्धकी कल्पनासे सम्बन्ध भी नित्य स्वभावके द्वारा गुणान्तरोंके ग्रहण करनेके अनुभवका कारण होता है। तो क्या एक स्वभावसे होता है या अनेक स्वभावसे होता है। इस तरह पूर्ववत प्रश्न और अनवस्था दोष आयगा। इस कारण नित्य पदार्थमें उत्पत्ति माननेपर या गुणान्तरोंका ग्रहण क्रमसे माननेपर

एकस्वका विरोध हो जायगा। अब वह नित्य पदार्थ एक न रह सका और एक साथ गुणान्तरोंका ग्रहण माननेपर फिर दूसरे समयमें कार्य न रहेगा, और शून्यताका दोष आ जायगा।

गुणान्तरोंके आधानमें एकस्वभाव या अनेक स्वभाव आदि विकल्पों की ज्ञानक्षणमें भी उत्पत्ति होनेसे क्षणिकवादमें भी कर्मादिकी अनुपपत्ति— उक्त शंकाके समाधानमें कहते हैं कि ऐसे शंकाकार केवल दूषणाभासके ही कहने वाले हैं। क्योंकि शंकाकारने जो परपक्षका दूषण बताया है वह दूषण शंकाकारके पक्षमें भी समान बैठता है। स्वयं क्षणिकवादियोंके द्वारा माना गया जो एक ज्ञान है उस ज्ञानमें ग्राह्याकार और ग्राहकाकार मानना यह क्या एकको अनेक स्वभावात्मक नहीं माना जा रहा है। सो उक्त प्रकार जो शंका करे कि एकमें अनेकका आधान एक स्वभावसे होता है या अनेक स्वभावसे ? सो इसी तरहसे तो इस ग्राह्य और ग्राहकाकारकी नानारूपता भी एक ज्ञानमें नहीं बन सकती। क्योंकि जैसे जैसे प्रश्न शंकाकारने नित्य पक्षमें किये हैं वे ही प्रश्न इस चित्रज्ञानके सम्बन्धमें भी हो सकते हैं। अथवा चित्रज्ञानकी भी बात छोड़िये, ज्ञान स्वयं ग्राहक है और उसमें ग्राह्याकार झलकता है। तो उनसे पूछा जा सकता है कि वह एक ज्ञान जो नानारूपताको ग्रहण करता है सो क्या एक स्वभावसे करता है या अनेक स्वभावसे करता है ? एक स्वभावसे करे तब तो ज्ञान एक स्वभाव ही रह जावेगा। वहाँ ग्राह्याकार और ग्राहकाकार ये भेद न टिक सकेंगे। यदि वह अनेक स्वभावसे ग्राह्याकार व ग्राहकाकार-को ग्रहण करता है तो वह ज्ञान अनेक रूप बन जायगा तथा वे अनेक स्वभाव उस एक से भिन्न हैं या अभिन्न हैं ? ऐसा प्रश्न किया जानेपर अनेक स्वभाव, एकान्तवादमें सिद्ध नहीं होते। सो वे अनेक ही कहलायेंगे। यदि क्षणवर्ती ज्ञानके ग्राह्य और ग्राहकाकारकी विश्वरूपता न माननेकी बात कहे कोई तो मानने में तो वस्तुस्वरूप नहीं बनता। सम्विदित ज्ञानमें प्रत्येक ज्ञानमें ग्राह्याकार और ग्राहकाकारके विवेकको अर्थात् उनकी अलग-अलग रूपताको धारण करने वाले ज्ञानमें अपने आप यह प्राप्त हो जाता है कि उनमें ग्राह्याकार भी है और ग्राहकाकार भी है। इसका तात्पर्य यह है कि कदाचित् क्षणिकवादी यह कहे कि इस एक ज्ञानमें ग्राह्याकार और ग्राहकाकार रूप विश्वरूपता नहीं है। वह तो क्षणिक है, एक समयकी सत्ता वाला है हम ज्ञानमें ग्राह्य और ग्राहकाकार को न मानेंगे, उस मन्तव्यके सम्बन्धमें यह बात दिखाई जा रही है कि अपने निजके न माननेकी बात नहीं चल सकती है। यदि कोई ज्ञान है तो ज्ञानका अर्थ जानन है। उस जाननका भाव क्या रहेगा परोक्षभूत ग्राह्याकार और ग्राहकाकारके भेदको वह धारण किए हुए होगा तब ही उसमें सम्वेदनपना आयेगा। कि वह जानता है अतएव जानने वाला और जाननेमें आया हो कुछ ये दो बातें तो अपने आप सिद्ध होती ही हैं।

प्रत्यक्षपरोक्षाकाररूपसे भी ज्ञानमें अनेकरूपता की सिद्धि— ज्ञानके

अनेकस्वभावताके सम्बन्धमे दूसरी बात यह भी समझिये कि एक सम्वेदनमे प्रत्यक्ष और परोक्षाकार भी बने हुए हैं। इससे एक बातमें विश्वरूपताकी सिद्धि हो जाती है। जो भी सम्वेदन है वह अपने आपके लिए तो प्रत्यक्ष है क्योंकि ज्ञानमय स्वय पदार्थ है। और, जो कुछ जाना जा रहा है वह अपने लिये जाननेकी बात पष्ट है अतएव उस ज्ञानमें प्रत्यक्षाकार प्रसिद्ध है। वह ज्ञान जिनको जनता है वे हैं परोक्ष-भूत। तो परोक्षाकार भी उस सम्वेदनमें पड़ा हुआ है। यो सम्वेदनमें विश्वरूपता सिद्ध है। तो देखिये एक ज्ञान नानारूप बन रहा है। क्षणिकवादमें भी तो एकको नानारूपताका विरोध नही कर सकते। और, इसी नीतिके अनुसार एक नित्य पदार्थ अनेक परिणतियोंको धारण करता रहे इसमे कोई विरोध नही आता। शकाकार कहते हैं कि देखिये सम्वेदनमें सचितके रूपसे अर्थात् मात्र जाननके रूपसे तो प्रत्यक्ष-पना ही है और ग्राह्याकार व ग्राहकाकारसे पृथक होनेरूपसे भी सम्वेदनमें प्रत्यक्षता है वहां परोक्षता आती ही नही है जिससे कि उस सम्वेनको नानारूप बताया जाय और जैसा कि नित्यपक्षमें आक्षेप किया गया है उस प्रकार इस सम्वेदन ज्ञानमे भी आक्षेप किया जाय, प्रश्न किया जाय यह बात नहीं बनती है। क्योंकि जब सम्वेदन एक प्रत्यक्षरूप ही है तो उसमें ये प्रश्न नही उठ सकते कि वे ज्ञानाद्वैत क्या एक-स्वभावसे ग्राह्य ग्राहकाकारको स्वीकार करते हैं या अनेक स्वभावसे उन आकारोंको स्वीकार करते हैं ? ऐसा प्रश्न तो तब होता जब सम्वेदनमें नानारूप होते। उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि सम्वेदनको सर्वथा एकरूप बताना युक्त नही है। क्योंकि ग्राह्य ग्राहकाकारसे रहित ज्ञानका एक बार भी प्रतिभास नहीं होता। अथवा निर्विशेष जब हो जायगा ज्ञान तो उसका प्रतिभास हो ही न सकेगा। जैसे ब्रह्माद्वैत निर्विशेष है। वहां ऐसा सामान्यद्वैत माना गया है कि वहां कुछ विशेषण ही नही दिया जा सकता। तो ऐसे निर्विशेष ब्रह्माद्वैतका प्रतिभास नहीं होता। इसी प्रकार यदि निर्विशेष ज्ञान माना जाय, उसमें ग्राह्याकार ग्राहकाकार न माना जाय तो ऐसे निर्विशेष ज्ञानाद्वैतका कभी प्रतिभास ही नही हो सकता। सर्वदा ग्राह्याकारसे व्याप्त ही सम्वेदनका अनुभव हुआ करता है। ज्ञान हुआ है तो उसमें जानने वाला है कुछ और जाननेमें आया है कुछ, ये दो रूप सबको विदित होते हैं। तो जिस कारणसे कि ग्राह्य और ग्राहकाकारसे पृथकरूपसे भी सम्वेदनकी प्रत्यक्षता सम्भव नही है तब सम्वेदन एक और अनेकरूप है, वह प्रत्यक्षाकार और परोक्षाकारको धारण करने वाला है यह रहस्य स्वसम्वेदनके स्वरूपको समझनेसे स्वय ही सिद्ध हो जाता है।

शून्यरूप और सविद्रूपमे विरोध होनेसे निर्विशेष ज्ञानकी सिद्धिका अभाव—यदि ज्ञान ग्राह्याकार और ग्राहकाकारसे रहित होता हुआ एक मात्र ही निर्विशेष प्रत्यक्षाकारको धारण कर लेगा तो वहां फिर ज्ञानपनेकी बात नहीं कह सकते। क्योंकि इस हटमें जिस तरह ज्ञानका स्वरूप माना है एक शून्यवत् सो शून्यका और ज्ञानका परस्परमें विरोध है। जिस ज्ञानमें प्रत्यक्षाकार, परोक्षाकार ग्राह्याकार,

कुछ नहीं है वह तो एक शून्य जैसा मतव्य है। फिर वहाँ ज्ञानकी बात कहाँ रही ? और यदि ज्ञानकी बात रहती है तो ये सर्वाकार मानने ही पड़ेंगे। ऐसे प्रत्यक्षाकार और परोक्षाकारको धारण करता हुआ वह ज्ञान अनेकान्तात्मक यह बात सामर्थ्यमे प्राप्त है सिद्ध है, फिर भी यदि उसे नहीं माना जा रहा है तो शून्यवादका प्रसग आता है। और जब शून्यवादकी वार्ता आती है तो ज्ञानाद्वैत माना या ज्ञानकी बातको मानना विरोधको प्राप्त होता है। देखिये—ज्ञानके अभावका नाम है शून्य और ज्ञानके भावका नाम है सम्वित् चित। इन दोनोका स्वरूप बिल्कुल न्यारा—न्यारा है। वे एक जगह नहीं ठहर सकते। उनका परस्परमें विरोध है। क्षणिकवादी लोग सम्वित् स्वरूपको भी मानते और शून्यवाद उसमे उत्पन्न कराये, ये दो बातें एक साथ नहीं बन सकती हैं शून्यका अर्थ है जो ग्राह्याकार और ग्राहकाकारसे रहित हो उसको सम्वेदन मात्र वर्णन करने वाले क्षणिकवादियोके यहाँ फिर सम्वेदन मात्रकी उपपत्ति नहीं बनती और फिर अपनी कल्पनासे माने गए ज्ञान मात्रको स्वीकार करने वाले क्षणिकवादी उसे ज्ञानमात्र सिद्ध नहीं कर सकते। बात क्या है — कि यदि उस सम्वेदन की जानकारी मात्र भी स्वीकार न करें किन्तु वह असत् है इस प्रकारसे वर्णन करें तो उसके सम्वित् ज्ञान सिद्ध नहीं होता, इसी कारण शून्यमे सम्वित्में परस्पर विरोध है। यों स्वय क्षणिकवादीका अभिमत निराकृत हो जाता है। जब सर्वथा शून्यवादमे और सम्वित अद्वैतमे प्रत्यक्षाकार, परोक्षाकार अथवा नानारूपताका सद्भाव प्रकृत प्रश्नो को हटानेमें कारणभूत नहीं बनता यह समर्थित किया गया तब ये योगाचार अथवा सौत्रांतिक याने केवल ज्ञानतत्त्वको मानने वाले, ज्ञानमात्रको मानने वाले क्षणिकवादी और ज्ञानतत्त्व और अर्थतत्त्व दोनोको क्षणिक मानने वाला सौत्रांतिक ये दोनो ही क्षणिकवादी सर्वथा शून्य और एक ज्ञानमात्रको न चाहते हुए भी क्षणिक कारणको अपनी सत्तामें कार्य करने वाला मानते हुए भी क्रमसे उत्पत्तिको प्रमाणित नहीं कर सकते हैं। अन्यथा सारे ससारमें एक ही समयमे सब कार्य हो जानेका प्रसग आता है। अत यह सिद्ध है कि न तो सर्वथा नित्यमे कार्यकी उत्पत्ति बन सकती है और न सर्वथा अनित्यमें कार्यकी उत्पत्ति बन सकती है। और, जब अर्थ क्रिया न बनी तब पुण्य कर्म, पापकर्म, परलोकादिक कुछ सिद्ध नहीं हो सकते है। यों ये एकान्तवादी अनेकान्तके विरोधी होनेसे स्वय अपने आपके विरोधी हो जाते हैं।

क्षणिकवादमे कर्मोपपत्तिकी असिद्धि और असिद्धि निवारणमे शका-कारका प्रयास—यहाँ योगाचार क्षणिकवादी तो सर्वथाशून्य नहीं मानते, क्योंकि उनका सिद्धान्त है ज्ञानतत्त्वका। अर्थात् ज्ञान क्षणमात्र तत्त्व है। जो कुछ है जगतमे वह केवल ज्ञान ही ज्ञान है। और, सौत्रांतिक क्षणिकवादी ज्ञानाद्वैत नहीं मानते। उनका मतव्य है कि ज्ञान तत्त्व भी है और बाह्य अर्थ तत्त्व भी है। किन्तु है सब क्षणिक अर्थात् एक क्षणको ही अपनी सत्ता रखता है। पश्चात् असत् हो जाता है। तो इस तरह सर्वथा शून्य और सम्वित अद्वैत न मानते हुए ये कुछ मानना चाहते है

तो है ऐसी पद्धति कि कार्य उत्पन्न होते रहे। लेकिन ये कारणको मानते हैं क्षणवर्ती और अपने ही क्षणमें, अपनी ही सत्ताके समयमें रहते हुए कारण कार्यको करता है ऐसा मानते हैं तो इस मतव्यमें कार्योंके क्रमसे उत्पत्ति होती है, यह बात सिद्ध नहीं बनती। और यदि क्षणवर्ती कारण अपनी ही सत्तामे रहते हुए कार्योंको उत्पन्न कर लेगा तो सारे ससारके कार्योंका उस एक क्षणमें ही उत्पन्न होना बन जायगा। यो फिर शून्यता भी हो जायगी। यह बात सुनकर शकाकार कहते है कि कारण तो हमारा यद्यपि क्षणिक है लेकिन वह कालान्तरमें कार्यको करता है अपने क्षणमें काय को नहीं करता। जैसे कि तीसरे समयमें जो ज्ञानक्षण अथवा अर्थक्षण है वह चौथे समयके ज्ञानक्षण और अर्थक्षणरूप कार्यको किया करता है। इस कारण यह दोष न आयगा कि क्रमसे उत्पत्ति न बनेगी।

क्षणिक पदार्थकी कालान्तरमे कार्यक्षमताके अभावका प्रतिपादन— उक्त शकाके समाधानमें कहते हैं कि यह कथन भी युक्तिसगत नहीं है क्योंकि जो लोग ऐसा मानते हैं कि क्षणवर्ती भी कारण कार्यको करता है अगले समयमें तो उनसे यह पूछा जाता है कि वह क्षणिक कारण कार्यक्षणके समयमें प्राप्त होकर कार्यको करता है या उत्तरक्षणमें, कार्यकालमें प्राप्त होकर कारणकार्यको करता है। यदि कहा जाय की कार्यकालमें प्राप्त होनेपर कारण कार्यको करता है तो ऐसा माननेमें क्षण भगके सिद्धान्तका भग हो जाता है। लो अब यह कारण अपने कालमे भी था और कार्यकालमें भी पहुँच गया। अब एक समयवर्ती कारण तो न रहा। यो क्षणिक सिद्धान्तका घात हो जाता है। यदि कहो कि कारण कार्यकालमें प्राप्त न होकर कार्य कालमें याने कालान्तरमें कार्यको कर देता है ऐसा माननेपर मिथ्या कल्पनाकी बात आती है और इस कारण जैसे क्षणिकवादी कूटस्थ नित्यमें मिथ्या कल्पना वाला दोष बताकर नित्यवादका निराकरण करते हैं उसी तरह यहा भी दोष नहीं आता, कोई प्रतिषेधकी बात नहीं बनती। जैसे कि नित्य एकान्तवादी ऐसा मानते हैं कि कूटस्थ सर्वथा नित्य पदार्थ अपरिणामी है सो वह न क्रमसे न एक साथ अर्थक्रियामें समर्थ है तो किसी भी प्रकार अर्थक्रियामें असमर्थ रहने वाला भी सर्वथा नित्य कूटस्थ अपरिणामी पदार्थ मिथ्या कल्पनासे क्रम और एक साथ आ लदने वाले कार्योंकी परम्पराओं को करते हैं। तो जैसे इस नित्य एकान्तवादियोंने मिथ्या कल्पना द्वारा कार्यको करने वाला कूटस्थ मान लिया है इसी प्रकार क्षणिकवादियोने भी ऐसा स्वीकार कर लिया कि क्षणवर्ती कारण अपनी सत्ताके क्षणसे पहिले और पीछे अर्थ क्रिया करनेमें समर्थ नही है क्योंकि वह तो असत् है। कारण अपने क्षणसे पहिले भी असत् है और अपने क्षणके पश्चात् भी असत् है। तो ऐसे वे क्षणवर्ती असत् कारण सर्वथा अर्थक्रिया करने में असमर्थ हैं फिर भी कल्पनासे क्रम और अक्रमसे होने वाले कार्य समूहको रचता है तो व्यलीक कल्पना जैसे नित्य एकान्तवादियोंने मानकर कूटस्थको कार्यकारी माना है इसी प्रकार क्षणिकवादियोंने भी व्यलीक कल्पनासे क्षणवर्ती कारणको कार्य समूहका

रचने वाला मान डाला है। इस प्रकार कूटस्थ सिद्धान्तसे क्षणिकसिद्धान्तमे कोई विशेषता नही रहती।

एकान्तवादमे कर्म परलोक व अर्थक्रियाकी अनुपपत्ति होनेसे स्याद्वाद शासनकी अबाधितताके प्रतिपादनकी सुयुक्तता—जब कि एकान्तवादमें पुण्य, पाप कर्म, परलोकादिकी उपपत्ति नही बनती अतएव स्वामी समन्तभद्राचार्यने ठीक ही कहा है कि जो एकान्तवादके आगहसे रक्त हैं ऐसे पुरुषोके सिद्धान्तमें पुण्य पाप परलोकादिककी उत्पत्ति नही बन सकती है। जो एकान्तवाद है, जैसे कि सत् एकान्त, असत् एकान्त और परस्पर निरपेक्ष उभय एकान्त, नित्य एकान्त, अनित्य एकान्त, परस्पर निरपेक्ष उभय एकान्तादिक प्रकारसे जो एकान्तका प्ररूपण करते हैं उनके सिद्धान्तसे पुण्य पाप परलोकादिककी उत्पत्ति असम्भव है। जैसे कि अद्वैत एकान्तादिक मतव्योमे पुण्य पाप परलोकादिककी सिद्धि नही बनती। सद् एकान्तवाद तो इसका नाम है कि त्रिकाल एकस्वभाव अपरिणामी सत् मानना। असत् एकान्त है क्षणवर्ती पदार्थ मानना या पदार्थ कुछ माना ही नही। उभय एकान्त कहलाया कि एक ही पदार्थमे कुछ अंश नित्य ही रहते हैं। कुछ अंश अनित्य ही रहते हैं। और साथ ही इसमे उसके कुछ अंश जुदे जुदे निरपेक्ष कर दिए गए हैं। इसी तरह अन्य भी एकान्त हैं। उनमें कर्म परलोकादिककी उपपत्ति नही बनती। इस प्रकार जो सर्वथा एकान्तवादी हैं उनका सदेश, उपदेश कथन प्रत्यक्ष और आगम अनुमान आदिकसे विरुद्ध है अतएव अज्ञान रागादिक दोषोके आश्रयभूत है। और, जहाँ अज्ञान एव रागादिक भाव पाये जायें वहाँ आप्तता नही बनती। इस कारण हे अरहत! तुम ही भगवान हो। सर्वज्ञ हो, वीतराग हो क्योंकि युक्ति और शास्त्रसे अविरुद्ध वचन होनेसे निर्दोष रूपमें आप ही निश्चित किये गए हो।

शासनके व्याख्यानसे पहिले शासनके मूल प्रणेताकी स्तुतिकी युक्तता
तत्त्वार्थ महाशास्त्रके रचयिता महामुनि उमास्वामी महाराजने जो उस तत्त्वार्थ महाशास्त्रके प्रारम्भमें मगलाचरणमे कहा है कि जो मोक्षमार्गके नेता है। कर्म पहाड के भेदने वाले हैं और समस्त तत्त्वोके जानने वाले हैं उनको उनके गुणोकी प्राप्तिके लिए नमस्कार हो। उनका जो स्तवन किया है वह बिल्कुल ही युक्त है। शास्त्रके प्रारम्भमें ग्रन्थकर्ता उनका स्मरण करता है जिसका सहयोग शास्त्रमें वक्तव्य उपदेशके प्रणयनमें हुआ है। सो अनेकान्त शासनके मूल प्रणेता अरहन्त सर्वज्ञदेव हैं जिन्होने गृहस्थावस्थाको त्यागकर निर्ग्रन्थ मुनिपद धारण कर अन्तरङ्गमे अनादि अनन्त अहेतुक सहजसिद्ध चैतन्यस्वभावकी उपासना की है और इस उपासनाके प्रसादसे कर्मोंका निर्जरण किया है ऐसे महामुनि जब चार घातिया कर्मोंका नाश कर देते है। जब उन्हे अनन्त ज्ञान, दर्शन, अनन्त शक्ति अनन्त आनन्द यह रत्न चतुष्टय प्राप्त हो जाता है तब वे अरहंत कहलाते हैं। ये अरहत प्रभु अभी शरीर सहित हैं। उनका शरीर

अतिशायी है, स्फटिक मणिकी तरह निर्मल है। धातु उपधातुकी मलिनतासे रहित है। क्षुधा तृषा आदिक सर्व दोष स विमुक्त है ऐसे दिव्य शरीरमें आयुपर्यन्त विराजमान रहने वाले भगवान अरहंतदेवके चार अघातिया कर्म अभी हैं। सो उन कर्मोंमेंसे यथायोग्य प्रकृतिके विपाकसे और भव्य जीवोंके भाग्यसे दिव्य ध्वनिके उपदेश चलते हैं और उस परम्परासे गणधरदेव उसे द्वादशाङ्गमें गूँथते हैं, उससे यह परम्परा चलती है इस कारण शास्त्रके आदिमें प्रणेता सतोंने भगवान अरहंत देवका स्तवन और स्मरण किया है। कल्याणार्थी पुरुषोंको उपदेश ग्रहण करनेके लिए पहिले उसकी परम्परा और मूल प्रणेताका निश्चय कर लेना भी आवश्यक है। जब यह विदित होता है कि इस उपदेशपर चलकर वास्तवमें आत्माने कल्याण प्राप्त किया है तब स्वयको भी उस उपदेशपर चलनेके लिए सही प्रेरणा मिलती है। इसी नीतिके अनुसार तत्त्वार्थ महाशास्त्रके प्रारम्भमें मोक्षमार्गके नेता वीतराग सर्वज्ञ अरहंत देवको नमस्कार किया है।

अतिशायी है, स्फटिक मणिकी तरह निर्मल है। धातु उपधातुकी मलिनतासे रहित है। क्षुधा तृषा आदिक सर्व दोष से विमुक्त है ऐसे दिव्य शरीरमे आयु पर्यन्त विराजमान रहने वाले भगवान अरहंतदेवके चार अघातिया कर्म अभी हैं। सो उन कर्मोंमेसे यथायोग्य प्रकृतिके विपाकसे और भव्य जीवोंके भाग्यसे दिव्य ध्वनिके उपदेश चलते हैं और उस परम्परासे गणधरदेव उसे द्वादशाङ्गमे गूँथते हैं, उससे यह परम्परा चलती है इस कारण शास्त्रके आदिमें प्रणेता सतोंने भगवान अरहन्त देवका स्तवन और स्मरण किया है। कल्याणार्थी पुरुषोंको उपदेश ग्रहण करनेके लिए पहिले उसकी परम्परा और मूल प्रणेताका निश्चय कर लेना भी आवश्यक है। जब यह विदित होता है कि इस उपदेशपर चलकर वास्तवमें आत्माने कल्याण प्राप्त किया है तब स्वयको भी उस उपदेशपर चलनेके लिए सही प्रेरणा मिलती है। इसी नीतिके अनुसार तत्त्वार्थ महाशास्त्रके प्रारम्भमें मोक्षमार्गके नेता वीतराग सर्वज्ञ अरहंत देवको नमस्कार किया है।

रचन वाला मान डाला है। इस प्रकार कूटस्थ सिद्धान्तसे क्षणिकसिद्धान्तमें विशेषता नही रहती।

एकान्तवादमे कर्म परलोक व अर्थक्रियाकी अनुपपत्ति होनेसे शासनकी अबाधिततताके प्रतिपादनकी सुयुक्तता—जब कि एकान्तवादमें पाप कर्म, परलोकादिकी उपपत्ति नही बनती अतएव स्वामी समन्तभद्राचार्यने ही कहा है कि जो एकान्तवादके आग्रहसे रक्त हैं ऐसे पुरुषोंके सिद्धान्तमें पुण्य परलोकादिककी उत्पत्ति नहीं बन सकती है। जो एकान्तवाद है जैसे कि सत् , असत् एकान्त और परस्पर निरपेक्ष उभय एकान्त, नित्य एकान्त, अनित्य परस्पर निरपेक्ष उभय एकान्तादिक प्रकारसे जो एकान्तका प्ररूपण करते हैं सिद्धान्तसे पुण्य पाप परलोकादिककी उत्पत्ति असम्भव है। जैसे कि अद्वैत दिक मतव्योंमे पुण्य पाप परलोकादिककी सिद्धि नही बनती। सद् एक इसका नाम है कि त्रिकाल एकस्वभाव अपरिणामी सत् मानना। असत् एक क्षणवर्ती पदार्थ मानना या पदार्थ कुछ माना ही नही। उभय एकान्त कहल एक ही पदार्थमे कुछ अंश नित्य ही रहते हैं। कुछ अंश अनित्य ही रहते हैं साथ ही इनमे उसके कुछ अंश जुदे जुदे निरपेक्ष कर दिए गए है। इसी तरह भी एकान्त हैं। उनमें कर्म परलोकादिककी उपपत्ति नहो बनती। इस प्रका सर्वथा एकान्तवादी हैं उनका सदेश, उपदेश वचन प्रत्यक्ष और आगम आदिकसे विरुद्ध है अतएव अज्ञान रागादिक दोषोके आश्रयभूत है। और, जहाँ एव रागादिक भाव पाये जायें वहाँ आप्तता नही बनती। इस कारण हे तुम ही भगवान हो। सर्वज्ञ हो, वीतराग हो, क्योंकि युक्ति और शास्त्रसे वचन होनेसे निर्दोष रूपमें आप ही निश्चित किये गए हो।

शासनके व्याख्यानसे पहिले शासनके मूल प्रणेताकी स्तुतिकी—तत्त्वार्थ महा शास्त्रके रचयिता महामुनि उमास्वामी महाराजने जो उस महाशास्त्रके प्रारम्भमें मंगलाचरणमें कहा है कि जो मोक्षमार्गके नेता है। कर्म के भेदने वाले हैं और समस्त तत्त्वोंके जानने वाले हैं उनको उनके गुणोंको लिए नमस्कार हो। उनका जो स्तवन किया है वह बिल्कुल ही युक्त है। प्रारम्भमे ग्रन्थकर्ता उनका स्मरण करना है जिसका सहयोग शास्त्रमें वक्तव्य व प्रणयनमे हुआ है। सो अनेकान्त शासनके मूल प्रणेता अरहंत देवगुरुदेव हैं। गृहस्थावस्थाको त्यागकर निर्ग्रन्थ मुनिपद धारण कर अन्तरङ्गमें अनादि तक सहजसिद्ध चैतन्यस्वभावकी उपासना की है और इस उपासनाके प्रसादसे निर्जरण किया है ऐसे महामुनि जब चार घातिया कर्मोंका नाश कर देते है उन्हे अनन्त ज्ञान, दर्शन, अनन्त शक्ति अनन्त आनन्द यह रत्न चतुष्टय प्राप्त है तब वे अरहंत कहलाते हैं। ये अरहत प्रभु अभी शरीर सहित हैं। उन